बिहारी का काव्य

सपादक
हरिमोहन मालवीय

प्रकाशक
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर
नया बैरहना
इलाहाबाद-२

गुरुवर

श्रद्धेय डा० माता प्रसाद जी गुप्त

को सादर समर्पित

यह संकलन

महाकवि बिहारी और सतसई से सम्बन्धित लेखो का यह संग्रह ब्रजभाषा काव्य के विद्वानो और अध्येताओ के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह लेख-संग्रह वर्षों पहले ही तैयार कर चुका था किन्तु कुछ अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण इसका प्रकाशन न हो पाया। अंततः श्री व्यासनारायण भट्ट तथा डा० ललित शुक्ल की प्रेरणा से यह लेख-संग्रह अब प्रस्तुत हो पाया है।

बिहारी सतसई विषयक अनुसधान के सिलसिले मे मेरे मन मे यह बात आई थी कि बिहारी और सतसई सम्बन्धी महत्वपूर्ण विपुल सामग्री पत्र-पत्रिकाओ की सचिकाओ मे उपेक्षित सी पडी है। बहुत से विद्वानो ने सतसई का बडी सजगता और सुरुचि से अध्ययन किया था, लेकिन उनकी ये महत्वपूर्ण कृतियाँ अध्येताओ की दृष्टि से अब तक ओझल ही रही हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि बिहारी और सतसई विषयक तथ्यपरक अनुसधान-कार्य ठोस आधार पर नहीं हो पाया और अधिकांश विद्वानो ने येनकेन प्रकारेण स्व० बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की खोजो और उपलब्धियो को ही अतिम समझ कर सूक्ष्म समस्याओ की ओर इंगित करने का प्रयास नहीं किया है। बिहारी के काव्य की आलोचना पर कई ग्रथ छपे हैं, उनमे मौलिक स्थापनाएँ और बिहारी की विशेषताओ पर अच्छा प्रकाश डाला गया है किन्तु बिहारी विषयक बहुत सी सामग्री की ओर विद्वानो की दृष्टि कम ही गई है। विशेष रूप से पाण्डुलिपियो के आधार पर अध्ययन बहुत ही कम हुआ है। उसी प्रकार बिहारी-सतसई सम्बन्धी साहित्यिक चर्चाओ के प्रसग मे बहुत से तथ्य विद्वानो द्वारा सामने लाए गए थे, लेकिन उनकी उपेक्षा ही हुई है, और फलत. गलत मान्यताओ के आधार पर बिहारी और सतसई का अध्ययन अब तक प्रचलित है। इस स्थिति से मुझे सतोष नही हुआ और मैंने कई सग्रहालयो और पुस्तकालयो मे सग्रहीत पत्रिकाओ की फाइलो मे से बिहारी-सतसई विषयक लेखो को खोजने का यत्न किया है। खोज मे प्राप्त लेखो की सूची अत मे मैंने इसलिए दे दी है कि विद्वत्जन उनका उपयोग करके बिहारी-विषयक अनुसधान को आगे बढाएँ। कुछ महत्वपूर्ण लेखो की सूचना इसमे छूट भी गई होगी, यदि भविष्य मे वह मिल सकी तो अगले सस्करण मे उसे देकर सूची को और भी प्रामाणिक बना सकूंगा।

इस कार्य मे श्री ध्रुवनारायण मिश्र का योगदान मैं नही भूल सकता, जिन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय मे सग्रहीत पुरानी-नई पत्रिकाओ

से इस प्रकार के लेखो की सूची प्रस्तुत करने के कार्य मे अपना यथेष्ट सहयोग दिया था। लेखो की प्रतिलिपि करने मे श्री हरिगोपाल शर्मा तथा उन्हे टकित करने मे श्री पुरुषोत्तम मालवीय का यथेष्ट सहयोग न मिला होता तो संकलन को इस रूप मे प्रस्तुत न कर पाता। प्रूफ सम्बन्धी जटिलतर कार्य श्री विजय वर्मा ने किया है इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

अत मे मैं विद्वानो और उन बन्धुओ के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होने मेरे आग्रह पर इस सकलन के लिए अपना लेख देने की अनुकम्पा की है। यह सकलन और भी प्रामाणिक बनाने की इच्छा थी, किन्तु अपरिहार्य कारणो से यह सभव न हो पाया। यदि विद्वत्जगत और अध्ययनशील सतसई के अन्वेषको ने इस सकलन को अपनाया तो अगली बार और भी निखरे और प्रामाणिक रूप मे इसे प्रस्तुत कर सकूँगा। कुछ बन्धुओ के लेख ग्रन्थ के कलेवर की वृद्धि के कारण इस संग्रह मे नही आ पाये हैं, उसके लिये मुझे खेद है, फिर भी अधिकांश महत्वपूर्ण सामग्री का समावेश इस संकलन में हो गया है। कुछ विषयो पर लेखो को आग्रह पूर्वक लिखाना पडा है, इस दृष्टि से मैं श्री किशोरीलाल, डा० शत्रुघ्न, डा० ललित शुक्ल, डा० केदारनाथ लाभ, डा० योगेन्द्र सिंह, श्री बैरन हार्लेंड, डा० भगवानदास तिवारी तथा डा० कमलेशदत्त त्रिपाठी का आभारी हूँ।

रामनवमी, २०२६

—हरिमोहन मालवीय

६५३, महामना मालवीय नगर
इलाहाबाद-३

विषय-सूची

बिहारी-सतसई सम्बन्धित सामग्री

● हरिमोहन मालवीय

बिहारी-सतसई ब्रज भाषा की सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य-कृति है। इसकी सहस्रो प्रतिलिपियाँ देश-विदेश के सग्रहालयो मे सग्रहीत हैं। कुछ प्रतिलिपियो में प्राचीन कलाकारो ने सुघड चित्राकन भी किया है।[१] ये चित्र कागडा, बुन्देलखण्ड तथा राजपूत शैलियो के उत्कृष्ट नमूने हैं। बिहारी-सतसई सम्वन्धित साहित्य उसके मूल पाठ से प्रथक (१) टीकाओ (२) कुडलिया अथवा कवित्त के रूप मे पल्लवनो और (३) अनुवादो के रूप मे मिलता है। ये अनुवाद अब तक सस्कृत, फारसी, बंगला उर्दू और राजस्थानी मे मिलते हैं। स्व० डा० अमरनाथ झा ने अँग्रेजी मे सतसई का अनुवाद किया था, जो कि अब अप्राप्य है।

आधुनिक काल में बिहारी सतसई पर अनेक टीकाएँ लिखी गईं, किन्तु आलोचनात्मक निवन्धो के रूप मे सर्वाधिक चर्चा विहारी सतसई पर ही हुई। सर्व प्रथम आलोचनात्मक निबन्ध श्री राधाचरण गोस्वामी का भारतेन्दु पत्रिका मे जनवरी, सन् १८८६ मे 'कविवर बिहारी का इतिवृत्त' नाम से प्रकाशित हुआ। देव-बिहारी विषयक विवाद के अतिरिक्त, पं० पद्मसिह शर्मा द्वारा बिहारी की अतिरजित प्रशसा की प्रतिक्रिया स्वरूप भी संस्कृत विद्वानो के 'बिहारी की मौलिकता एवं अपहरण दोष' आदि पर अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए। कालान्तर मे प्रौढ आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकाश मे आईं।

बिहारी-सतसई पर प्रथम आलोचनात्मक पुस्तिका जून, १८६५ मे 'कविवर बिहारी लाल' लिखी गई, जिसका तृतीय सस्करण सन् १६१८ में भी प्रकाशित हुआ। इसमें वाबू राधाकृष्ण दास ने बिहारी के जीवन के अतिरिक्त उनके काल की विशेषताओ पर प्रकाश डाला था। कालान्तर मे डा० रमाशकर प्रसाद कृत 'सक्षिप्त बिहारी' इडियन प्रेस से प्रकाशित हुई। इसमे आलोचना के साथ-साथ टीका भी उपलब्ध है। सतसई पर सर्व प्रथम महत्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रन्थ प० लोकनाथ द्विवेदी शिलाकारी द्वारा लिखित 'बिहारी दर्शन' सं० १६६३ वि० मे प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् हरदयालु सिह ने स० १६६७ मे 'बिहारी-विभव' का प्रणयन किया। श्री कृष्ण बिहारी मिश्र कृत 'देव और बिहारी' तुलनात्मक आलोचना सम्बन्धी ग्रन्थ सं० १६७७ मे प्रकाशित हुआ था। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र कृत 'बिहारी की वाग्विभूति' सं० २०१० मे प्रकाशित हुई और बाद में आचार्य जी ने इसी अध्ययन के साथ शृंगार परम्परा का सुन्दर विवेचन जोड कर सुव्यवस्थित क्रम से सतसई के मूलपाठ सहित

'बिहारी' के रूप मे प्रस्तुत किया। सन् १९४७ मे डा० राम रतन भटनागर की पुस्तक 'बिहारी का एक अध्ययन' छात्रो के लिये लिखी गई। इसी प्रकार की पुस्तक श्री भारत भूषण सरोज की 'बिहारी' भी है। डा० हरवंश लाल शर्मा और श्री परमानन्द शास्त्री द्वारा लिखित 'बिहारी और उनका साहित्य' नवीन आलोचनात्मक शोधेतर प्रतिनिधि रचना है। डा० बच्चन सिंह ने नई दृष्टियो से सन् १९६४ मे 'बिहारी का नया मूल्याकन' प्रस्तुत किया। १९६६ मे प्रो० उदय भानु हस लिखित 'बिहारी की काव्य कला' आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित हुई।

बिहारी-सतसई सम्बन्धित लेखो के अनेक सग्रह भी समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं, इस दृष्टि से प० पद्मसिंह शर्मा, का 'सतसई सहार' सरस्वती के १९१० के अको मे प्रकाशित लेखो का सग्रह है। इसी भाँति 'बिहारी और देव' पुस्तिका मे 'श्री शारदा' जबलपुर-पत्रिका मे प्रकाशित लाला भगवान दीन के लेखो का सकलन है। ये लेख उस पत्रिका मे अक्टूबर, सन् १९२१ से मई १९२२ तक क्रमश' छपे थे। रत्नाकर जी के सशोधित लेखो का सग्रह 'कविवर बिहारी' श्री राम कृष्ण के सपादकत्व मे सं० १९५३ मे प्रकाशित हुआ था। रत्नाकर जी के कुछ लेख 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के स० १९८४ तथा १९८६ के अको मे छपे थे। डा० ओम्प्रकाश द्वारा सपादित 'बिहारी' विषयक लेखो का सग्रह १९६७ मे प्रकाशित हुआ है।

बिहारी-सतसई पर शोध कार्य का प्रारम्भ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया था। अब तक इस विषय पर कई शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत हो चुके हैं। डा० राम सागर त्रिपाठी का 'मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी' शोध-प्रबन्ध सन् १९६० मे स्वीकृत हुआ था। यह दो रूपो मे प्रकाशित हुआ है, एक शोध-प्रबन्ध के रूप मे (१) मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी तथा (२) 'बिहारी मीमासा'। बिहारी मीमांसा मे प्रथम पुस्तक का ही एक अंश समाविष्ट है। डा० गणपति चन्द्र गुप्त का 'शृगार परम्परा और महाकवि बिहारी', डा० रणधीर सिन्हा का 'कविवर बिहारी लाल और उनका युग,' अन्य प्रकाशित शोध-प्रबन्ध हैं। डा० रामकुमारी मिश्र कृत 'बिहारी का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' महत्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध है, इसमे 'बिहारी रत्नाकर' के पश्चात् अनेको पाण्डुलिपियो के आधार पर प्रमाणिक पाठ भी दिया गया है। अनेक शोधार्थी आज भी बिहारी-सतसई से सम्बन्धित विषयो पर कार्य कर रहे हैं।

बिहारी सतसई का टीका साहित्य

बिहारी-सतसई पर विपुल टीका-साहित्य रचा गया। यह दो रूपो मे प्राप्त है (१) हस्तलेख और (२) मुद्रित। हस्तलिखित टीकाएँ कुछ पूर्ण प्राप्त हैं और कुछ अपूर्ण। इनका विवरण क्रमश नीचे दिया जा रहा है.

१—वृन्दराय की टीका

रत्नाकर जी ने कल्पना से इसके टीकाकार का नाम कृष्ण लाल लिखा है किन्तु

वास्तव मे इसकी एक प्रति के छन्द में वृन्दराय का उल्लेख मिलता है, कृष्ण लाल नाम टीका की किसी भी प्रतिलिपि में नही मिलता। जोधपुर की एक प्रतिलिपि में लिखा है :

कहैं कवि वृंदराय छिनहूँ न छोड़्यौ जाय।
दोहरो विहारी को सिहारी को मंत्र है ॥

टीका का रचना काल सं० १७१६ है :

सम्वत् ग्रह ससि जलधि छठि तिथि वासर चंद।
चैतमास पद कृष्ण मैं पूरन आनन्द कद ॥ (७१४)

विद्वानो ने भ्रमवश इस तिथि को सतसई का रचना काल समझ लिया था, यह टीका प्राचीन राजस्थानी ब्रज भाषा मे है।

२—मानसिंह विजयगढ की टीका .

यह टीका कब लिखी गई इस पर विवाद है ? डा० मोती लाल मेनारिया ने रत्नाकर जी द्वारा स्वीकृत तिथि स० १७३४ के स्थान पर स० १७७० को टीका का रचनाकाल माना है। इसमे प्राचीन ब्रज भाषा गद्य मे छन्दो का अर्थ दिया गया है।

३—अनवर चन्द्रिका :-

शुभकरण कवि ने स० १७७१ में आश्रयदाता अनवर खाँ के नाम से इस टीका की रचना की थी। इस टीका का क्रम काव्य-शास्त्रीय आधार पर रस और नायक-नायिका भेदानुसार रखा गया है। टीकाकार ने छन्दो के अर्थ न देकर केवल काव्य-शास्त्रीय उल्लेख के साथ वक्ता-बोधव्य, अलंकार, ध्वनि, और 'नायक-नायिका भेद तथा रस सम्बन्धित उल्लेख किया है, कही-कही काव्य-दूषणो की ओर भी संकेत है।

४—अमर चन्द्रिका

सुप्रसिद्ध काव्य-शास्त्री सूरति मिश्र ने स० १७६४ मे इस टीका का प्रणयन किया था। यह टीका जोधपुर नरेश अभयसिंह के सचिव अमरसिंह के लिए लिखी गई थी। विद्वान टीकाकार ने गद्य-पद्य मे टीका की है, किन्तु अधिकाश भाग कविता मे है। अर्थ के स्पष्टीकरण के अतिरिक्त इस टीका मे अलकार आदि पर प्रश्नोत्तर करते हुए विचार किया गया है।

५—रस चन्द्रिका टीका

ईसवी खाँ ने नरवर गढ के नृपति छत्रसिंह की प्रेरणा से स० १८०६ वि० में रस चन्द्रिका टीका का प्रणयन किया था। टीका अकारादि क्रम मे है। कुछ स्थलो पर अर्थ के स्पष्टीकरण के साथ-साथ सर्वत्र टीका मे नायक-नायिका भेद एवं अलकार

सम्बन्धी लक्षणो का उल्लेख है। कुछ छन्दो मे केवल अलंकारो का ही निर्देश टीकाकार ने किया है।

६—अमृत लाल की टीका :

अकारादि क्रम पर बनी इस टीका मे भी 'अनवर चंद्रिका' की भाँति काव्य शास्त्रीय लक्षणो का संकेत है। टीका में अर्थ का स्पष्टीकरण नही किया गया है। इसकी सं० १८२४ की एक प्रति प्राप्त है जिसमे टीका काल का उल्लेख नही है।

७—प्रताप चन्द्रिका :

यह टीका सं० १८४२ मे मनीराम कवि द्वारा जयपुर नरेश प्रतापसिंह के संरक्षण में लिखी गई थी। टीकाकार ने टीका के प्रणयन मे अमर चन्द्रिका एवं अनवर चन्द्रिका टीकाओ का सहारा लिया था।

८—रणछोड़ राय दीवान की टीका :

अनवर चन्द्रिका के क्रम पर बनी यह टीका सं० १९८४ मे पूर्ण हुई। इसके टीकाकार रणछोड जी जूनागढ़ के दीवान थे। टीकाकार ने बिहारी के छन्दो के अनेक अर्थ किए हैं।

९—सतसैया-वर्णार्थ :

असनी के ठाकुर द्वारा सं० १८६१ मे यह टीका सविस्तार लिखी गई थी। टीकाकार ने विस्तार के साथ अर्थ-सम्बन्धी समस्याओ पर प्रश्नोत्तर रूप मे विचार किया है और छन्दों के अनेक अर्थ भी किए हैं।

१०—हरिरस त्रिवेनी टीका :

कपूरथला (पंजाब) के महाराज फतेहसिंह के यहाँ यह टीका कविराय ने लिखी थी। अब तक प्राप्त टीकाओ मे यही टीका सबसे विस्तृत है, किन्तु खेद है कि इसकी पूर्ण प्रति प्राप्त नही है।

११—'बिहारी सतसैया' टीका :

इस टीका को रत्नाकर जी ने कर्ण कवि (पन्ना) कृत साहित्य-चन्द्रिका माना था, किन्तु खोज विवरण मे उल्लिखित साहित्य-चन्द्रिका के प्रारम्भिक छन्दो का मिलान करने पर ज्ञात होता है कि यह टीका पृथक् है। उसका टीकाकार सभवत: शिव राम है और रचनाकाल है स० १८८१। बिहारी के सम्पूर्ण छन्दो पर सुविचारित गद्य मे इसमे अर्थ लिखा गया है। टीका अनवर चद्रिका के क्रम पर है।

१२—श्रुत बोधाख्या सस्कृत टीका .

यह टीका नान्हा व्यास द्वारा लिखी गई थी। इसकी प्राप्त प्रतिलिपि का रचना काल सं० १८०५ वि० है।

१३—गुजराती टीका :

ज्योति रत्न मुनि लिखित गुजराती टीका सं० १७६३ मे निर्मित हुई थी। टीकाकार श्री भावप्रभ सूरीश्वर का शिष्य जैन साधु था।

१४—वीरचन्द्र शिष्य परमानन्द कृत संस्कृत टीका .

यह टीका सं० १८६० वि० में बीकानेर मे लिखी गई थी। टीकाकार ने सतसई के छन्दो को संस्कृत भावार्थ के साथ दिया है।

१५—नवदीपिका टीका :

बिहारी-सतसई की यह एक खण्डित टीका राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान मे प्राप्त है, जिसमें भावार्थ स्पष्ट किया गया है।

१६—साहित्य चंद्रिका :

यह कर्ण कवि (पन्ना) द्वारा लिखित टीका है। शिवसिंह सरोज मे राजा छत्रसिंह जी हृदयशाही पन्ना नरेश की आज्ञानुसार साहित्य चन्द्रिका का सं० १७६४ मे रचा जाना बतलाया गया है।

१७—श्रीभानु प्रताप तिवारी लिखित 'बिहारी सतसई' की खडी बोली गद्य मे लिखित टीका की खंडित प्रति चुनार मे प्राप्त हुई है। टीका मे काव्यागो की चर्चा नही है। साथ में कवित्त भी दिये हुए है। मिश्र बधु विनोद मे इस टीका की चर्चा २५२१ अंक पर है।

बिहारी सतसई की मुद्रित टीकाएँ :

बिहारी सतसई पर अनेक टीकाएँ प्रकाशित हुई हैं उनकी सूची प्रस्तुत है :

		टीकाकार	प्रकाशित
१—लाल चद्रिका	टीका	लालू जी लाल	सन् १८६२
२—हरि प्रकाश	,,	हरिचरण दास	,, १८६२
३—बिहारी सतसई	,,	प्रभु दयाल पाण्डेय	सवत् १६५३
४—भावार्थ प्रकाशिका	,,	पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र	,, १६८८
५—सजीवन भाष्य	,,	प० पद्मसिंह शर्मा	,, १६७६
६—बिहारी बोधिनी	,,	लाला भगवान दीन	,, १६७८
७—भावार्थ प्रकाशिका (गुजराती)	,,	सविता नारायण गणपति नारायण	सन् १६१३
८—बिहारी सतसई	,,	श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी	सवत् १६८२
९—बिहारी रत्नाकर	,,	जगन्नाथ दास रत्नाकर	सन् १६२५
१०—बिहारी सतसई	,,	विद्याभास्कर शुक्ल	,, १६३४
११— ,, ,,	,,	लक्ष्मी निधि चतुर्वेदी	सं० २०००

	टीकाकार	प्रकाशित
१२—विहारी सतसई टीका	जगदीश चन्द्र शुक्ल	सन् १९५१
१३— ,, ,, ,,	देवेन्द्र शर्मा इन्द्र	,, १९५८
१४— ,, ,, ,,	पन्नालाल श्रीवास्तव	,, १९५५
१५— ,, ,, ,,	प्रो० विराज	,, १९६२
१६— ,, ,, ,,	डा० गरणपति चन्द्रगुप्त	,, १९६२
१७—विहारी कवि और काव्य	हरेन्द्र प्रताप सिनहा और डा० जगदीश श्रीवास्तव	,, १९६३

गुटका टीकाएँ

	टीकाकार	
१—विहारी सतसई	हरदयाल	सन् १८७६ ई०
२—विहारी सुधा	डा० श्याम विहारी मिश्र	
३—विहारी सग्रह	वियोगी हरि	
४—विहारी वैभव	कमला देवी गर्ग	सम्वत् १९५३
५—संक्षिप्त विहारी	डा० रमाशंकर प्रसाद	

अप्राप्त टीकाएँ

विहारी सतसई पर लिखी गई अनेक टीकाओ की सूचना शिव सिंह सरोज, 'मिश्र वन्धु विनोद' हिन्दी-साहित्य के इतिहास आदि ग्रन्थो मे तो मिलती है, किन्तु अब तक वे साहित्य ससार से ओझल है। इस प्रकार की टीकाएँ निम्नलिखित हैं :

१—चरण दास की टीका .

इसका उल्लेख मिश्र वन्धु विनोद मे ५२९ अक पर है। चरण दास ने (१) 'नेह-प्रकाशिका' (रचनाकाल सं० १७४९) तथा (२) विहारी सतसई की टीका, दो ग्रन्थ लिखे थे।

२—राजा गोपाल शरण की टीका

शिवसिंह सरोज मे राजा गोपाल शरण कृत 'प्रबन्ध घटना' टीका का उल्लेख है, जो सवत् १७७५ मे विद्यमान थे। मिश्र बधु विनोद मे इनका जन्म-काल स० १७४८ तथा कविता काल स० १७७५ लिखा है। उनके अनुसार इनके तीन ग्रंथ थे (१) प्रबन्ध घटना (२) सतसई की टीका तथा (३) पद । प्रबन्ध घटना ही सतसई की टीका है अथवा यह पृथक् ग्रंथ है इसका निर्णय अभी तक नही किया जा सका है।

३—रघुनाथ वन्दीजन की टीका :

काशीराज बरिवंड सिंह के दरबारी कवि रघुनाथ वन्दीजन कृत विहारी सतसई

की टीका की कोई प्रति अभी तक प्राप्त नही है। बंदीजन का उपस्थिति काल सं० १८०२ है। रघुनाथ बदीजन के रचित ग्रंथ हैं (१) काव्य कलाधार (२) रसिक मोहन या जगत मोहन (३) इश्क महोत्सव।

४—लालकवि बन्दीजन कृत 'लाल चन्द्रिका' :

शिव सिंह सरोज ने काशीवासी लाल कवि बदीजन की इस टीका का उल्लेख किया है, जो महाराज चेतसिंह की सभा के कवि थे। इनका उपस्थिति काल स० १८३२ माना गया है। इनकी कृति 'आनन्द रस' का उल्लेख शिवसिंह ने भी किया है। लल्लू जी लाल कृत 'लाल चद्रिका' से पृथक इस टीका का कोई भी अस्तित्व प्रतीत नही होता। न जाने किस प्रकार लल्लू जी लाल 'लालकवि' की टीका के साथ लाल कवि बदीजन नाम जुड गया।

५—अमर सिंह कायस्थ कृत अमर चद्रिका टीका :

मिश्र बधु विनोद मे दिए गए अंक १०५८ के अनुसार छतरपुर के कुवर सोनेशाह से दीवान अमर सिंह ने बिहारी की गद्य-पद्य मे अमर चंद्रिका टीका बनाई थी। इनके रचित अन्य ग्रंथ हैं (१) सुदामा चरित और (२) राग माला।

६—महाराज मानसिंह (जोधपुर) की टीका :

मिश्र बधु विनोद मे १६५५ अक पर महाराजा मानसिंह (जोधपुर) को भी बिहारी सतसई का टीकाकार लिखा है। आप रचित १८ ग्रन्थ गिनाए जाते हैं।

७—राम जू की टीका :

मिश्र बधु विनोद मे १६८४ अंक पर राम जू की बिहारी सतसई विषयक टीका का उल्लेख प्राप्त होता है। इनका कविता काल स० १६०१ के पूर्व है।

८—सरदार कवि की टीका :

काशीराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के दरबारी कवि सरदार कृत टीका रत्नाकर जी के पास थी। अब इसकी वह प्रति भी नष्ट हो गई है जिसके प्रतिलिपि कार नारायणदास कवि थे। सरदार कवि रचित अनेक टीकाएँ प्रकाशित हुई किन्तु बिहारी-सतसई की यह महत्वपूर्ण टीका इससे वंचित रह गई। सरदार कवि का उपस्थिति काल स० १६४० वि० है।

९—गदाधर कृत टीका :

इस टीका के कुछ पृष्ठ स्व० रत्नाकर जी को जयपुर से प्राप्त हुए थे। गदाधर सुकवि पद्माकर के वंशज थे।

१०—धनजय कृत टीका

इसका उल्लेख "रस कौमुदी" में कवि ने किया है।

११—अयोध्या प्रसाद की टीका :

कुलपति मिश्र के वंशज अयोध्या प्रसाद ने एक वृहद् टीका का निर्माण किया था किन्तु यह टीका प्रकाशित न हो पाई और लुप्त हो गई ।

१२—राम बक्स की टीका :

शिवसिंह सरोज मे इनके दो ग्रन्थो का उल्लेख किया गया है । (१) रस सागर (२) बिहारी सतसई की टीका । सेंगर के अनुसार इनकी बनाई हुई बिहारी-सतसई की टीका बहुत सुन्दर थी ।

१३—वैद्यक टीका

'बिहारी बिहार' की भूमिका मे पं० अबिकादत्त व्यास ने छोटूराम कृत वैद्यक टीका का उल्लेख किया है ।

ऊपर वर्णित टीकाओ के अतिरिक्त (१) कुलपति मिश्र (२) उमेदराम (३) सूर्यमल्ल, (४) घनीराम (५) हरिप्रसाद (कृत संस्कृत टीका) (६) समरथ कवि तथा (७) माधवेश आदि की टीकाओ का भी नामोल्लेख मिलता है । समरथ कवि का उल्लेख पूरण चन्द्र नाहर ने 'प्रबन्धावली' मे तथा माधवेश कवि का उल्लेख स्व० ललिता प्रसाद जी सुकुल ने 'सम्मेलन-पत्रिका' के पौष शुक्ल सम्वत् २०११ के अंक मे किया है । इसके अतिरिक्त साधु बाला उदासीन की एक टीका का उल्लेख मिलता है किन्तु अब वह टीका भी लुप्त प्राय है ।

कुण्डलिया साहित्य

बिहारी सतसई पर कुण्डलिया निर्माण की एक परम्परा चल पडी थी । इसको विद्वानो ने टीका के अन्तर्गत माना है । स्वय कुण्डलिया कार भी अपनी कृति को टीका मानते थे, किन्तु इस साहित्य मे अर्थ स्पष्टीकरण का कोई प्रयास नही किया गया है । कवियो ने बिहारी के दोहो को आधार बनाकर अपनी कल्पना शक्ति से भावो का पल्लवन किया है । समस्यापूर्ति-साहित्य की भाँति कवियो ने विषय या शीर्षक के स्थान पर बिहारी के छन्दो के आधार पर काव्य सृजन किया है । केवल बिहारी सुमेर मे पूरी कुण्डलियो के अर्थ भी दिए गए हैं, जिसमे कुण्डलियो के सन्दर्भ मे बिहारी के छदो के अर्थ का स्पष्टीकरण भी कुछ अंश मे हुआ है । वास्तव मे बिहारी सतसई की लोकप्रियता के कारण इसका शृंगार करने की एक कवित्व-मय विद्या का जन्म हुआ । इस माध्यम से प्रतिभा सम्पन्न कवियो ने बिहारी-सतसई का शृंगार किया था । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस शैली की कृति को पल्लवन कहा है । वास्तव मे यही सज्ञा सर्वोपयुक्त है । सतसई पर रचित कुण्डलिया साहित्य की ज्ञात कृतियाँ निम्नलिखित हैं .

(१) जुल्फिकार अली की कुण्डलियाँ :

संवत् १६०३ में यह ग्रन्थ लिखा गया था। इसकी कुण्डलियो का एक नमूना प्रस्तुत है :

पन्ना ही तिथि पाइये वा घर के चहुँपास ।
नित्य प्रति पूनौई रहत आवन ओप उजास ।।
आनन ओप उजास चद दुति सबरे मानत ।
दोज तीज कौ भेद सकल जोतिष ते जानत ।।
दोज तीज तिथि भेद एक हूँ होत न तन्ना ।
पूनौई कत इते गनक देषत हैं पन्ना ।। (१०३)

(२) विहारी सुमेर

विहारी सुमेर की खंडित प्रति मुझे पटियाला मे श्री शमशेर सिंह 'अशोक' से प्राप्त हुई थी, किन्तु खेद है कि वह प्राप्त मुद्रित प्रति अपूर्ण थी। बाबा सुमेर सिंह, पटना संगत के हरि मदिर साहब के महत थे। इनकी कुण्डलियाँ उत्कृष्ट एवं कवित्व पूर्ण हैं .

नव नागरि तन मुलुक लहि जो बन अमिल जोर ।
घट बढ ते वढ रकम करी और की ओर ।।
करी और की ओर मिसल नूतन निरधारी ।
कानन लौ कर नयन दीन पट छट कटि डारी ।।
कुचन उच्चता को परवानौ दिये सुकवि जव ।
चंचल गतिहि निकास लखी नहि जात जुगत नव ।।

विहारी सुमेर मे कुण्डलियो का अर्थ एवं दोहो का पिंगलानुराग भेद भी दिया गया है।

(३) विहारी-विहार :

पं० अम्बिका दत्त व्यास रचित यह ग्रन्थ संवत् १६५५ मे प्रकाशित हुआ था। 'विहारी-विहार' के प्रकाशन के बाद इसकी हिन्दी-जगत मे खूब घूम थी। 'सुकवि' उपनाम से व्यास जी ने इसमे अपने कवित्व का प्रदर्शन किया है, कई स्थलो पर आपने तीन, चार अथवा पाँच कुण्डलियो तक का सृजन किया है। व्यास जी के कवित्व का स्वरूप निदर्शित करने के लिये एक कुंडलिया प्रस्तुत है :

जगत जनायो जिन सकल सो हरि जान्यो नाहि ।
ज्यो आँखिन सब देखियत आँखि न देखी जाहि ।।
आँखि न देखी जाहि जात अनुभव सो जानी ।
इन विन कोउ न होत सितासित रग को ज्ञानी ।।

ज्ञात रूप हरि बिना कहो किमि अनुभव आयो।
या सो सोई गहहु 'सुकवि' सोइ जगत जनायो।। (२६)

(४) सतसई-शृङ्गार :

भारतेन्दु रचित बिहारी-सतसई के छन्दो पर कुछ कुण्डलियाँ हरिश्चन्द्र चंद्रिका मे सन् १८७५ ई० के अंको मे क्रमश. प्रकाशित हुई थी। 'सतसई शृंगार' की एक कुण्डलिया इस प्रकार है :

नभ लाली आली भई चटकाली धुनि कीन।
रतिपाली आली अनत आए बन माली न।।
आए बन माली न करी ससि बहुत कुचाली।
काली व्याली रैन विरह घाली जियमाली।।
वाली दीपक जोति मन्द भइ प्रति न पाली।
राली हाली औध भई खाली नभ लाली।।

इनके अतिरिक्त कुछ बिहारी सतसई विषयक कुण्डलिया साहित्य अब अप्राप्य है।

(१) चन्द कवि अथवा पठान सुल्तान की कुण्डलिया :

पठान सुल्तान की कुण्डलिया नाम से लिखित यह कृति चन्द कवि की है, ऐसा शिव सिंह सरोज मे वर्णित है। ये मालवा के रहने वाले थे। इनकी कुण्डलिया के पाँच उदाहरण 'बिहारी बिहार' मे दिए गए हैं, जिसमे से एक उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है :

भूषन भार संभारिहै क्यौं इहि तनु सुकुमार।
सूधे पाइ न धर प रैं सोभा ही कैं भार।।
सोभा ही कैं भार चलत लचकनि कटि खीनी।
देत्यौ अनिलु उडाइ जौ न होती कुच पीनी।।
कह पठान सुलतान तासु अंग अंग अदूषन।
नरी किन्नरी सुरी आदि तिय कौतिय भूषन।। (५)

(२) ईश्वरी प्रसाद कायस्थ की कुण्डलिया :

मिश्र बन्धु विनोद अक २०२५ मे कन्नौज वासी इस कवि की कुण्डलिया का उल्लेख है। आपका जन्मकाल १८८६ और कविता काल स० १९१० बताया गया है।

(३) उप सतसइया .

इसके रचयिता गंगाधर का उल्लेख शिवसिंह सरोज मे किया गया है। छंद पल्लवन का एक उदाहरण प्रस्तुत है :

तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुराग ।
जिहि ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग ।।
पग पग होत प्रयाग सितासित जावक लागे ।
गंगा जमुना सरस्वती लज्जित तिन आगे ।।
रस अनुराग सिगार प्रेम के वरन चरन भजि ।
ब्रज निकुज मग लेहि परयो रज सब तीरथ तजि ।।(२)

(४) जोखू लाल पडा की कुण्डलिया :

ये काशी वासी और बाबू हरिश्चन्द्र की कवि सभा के सदस्य थे । इन्होंने भी कुछ कुडलियो का प्रणयन किया था, किन्तु उनमे विशेष कला सौष्ठव का अभाव था ।

कवित्त सवैया साहित्य

कुण्डलिया की ही भाँति बिहारी के दोहो के आधार पर कवित्त सवैया छन्दो का भी प्रणयन अनेक काव्यकारो ने किया था । यह बिहारी-विषयक काव्यमय सामग्री सतसई के भावो के स्पष्टीकरण मे भी कई अंशो मे सहायक होती है, क्योकि बिहारी की सामासिक एव संक्षिप्त-शब्दावली से इन छन्दो मे कुछ अधिक व्यापक अवसर भावो को प्रकट करने के लिये मिलता है । बिहारी सतसई के माधुर्य से पुष्ट ये कविताएँ निश्चित ही सतसई का सुगढ़ शृंगार करती हैं । बिहारी-सतसई पर रचा गया इस प्रकार का काव्यमय निम्नलिखित साहित्य प्राप्त है :

(१) बिहारी सतसई पर कृष्ण कवि के कवित्त सवैये :

बिहारी सतसई पर सर्व-प्रथम कवित्त सवैया छन्द मे भाव विस्तार करने का श्रेय कृष्ण कवि को है जिसने इस कृति का प्रणयन कार्य सम्वत् १७८२ मे सम्पन्न किया था । कृष्ण कवि के उच्चकोटि के काव्य-ज्ञान का यह ग्रन्थ प्रमाण है । कवि ने पिंगल शास्त्र के अनुसार सतसई मे प्रयुक्त दोहा छद के उपभेदो की ओर सकेत कर दिया है । इसके कृतिकार का नाम राधाकृष्ण और कृष्णदास भी, हस्तलिखित प्रतियो मे मिलता है । इस ग्रन्थ मे पहले गद्य मे वक्ता-बोधक दे दिया गया है । कृष्ण कवि की कविता निश्चित ही उच्चकोटि की है । यथा ·

सुनत पथिक मुह माह निसि लुवे चलत उहि गाम ।
बिनु पूछे बिनु ही सुनै जियति विचारी बाम । (४३१)

टीका: यह नाइका प्रेषित पति का विदेश मे पथिक के मुख की बात सुनि नाइक ने अट करतें या की दसा जानि सखी कौ बचनु सखी सौं :

सोत समैं हू की राति मैं लुवै चले उहि देसहु तासन सानी ।
आपु समैं उतरात बटोही अचानक कान परी यह बानी ।।

छौंड़ि दये सब काज विदेसी कौ बुद्धि तही घर कौ अकुलानी ।
प्रान पियारी की आई गई सुधि जीवति है तिय मैं यह जानी ।(४३)

(२) ईश्वर कवि कृत सवैया :

ईश्वर कवि ने संवत् १६६१ में मनोहर सिंह के अनुरोध से सवैया छंद में बिहारी सतसई के छंदो के भावो को गुफित किया था। आप धौलपुर के निवासी और मानिक राम के पुत्र थे। बिहारी के दोहे पर रचित एक सवैया प्रस्तुत है।

दुसह दुराज प्रजानि कौ क्यो न वढै दुष दद।
अधिक अधेरो जग करत मिलि मावस रवि चन्द। (६८०)

आषिन मैं इत रूप बस्यौ फिरि दूसरौ रूप न रूप लसै ते।
ईश्वर गेह मझार रहै जुवती जिमि दूसरी मानि गसै ते।।
तैसै दुराज प्रजानि कौ दुख सुन्यौ न वढै अरि जाल हसै ते।
पावस कौ अधियारौ वढै बहु सूरज चन्द्रमा पास बसे ते।।

(३) वंशराज कृत रस चन्द्रिका :

यह ग्रन्थ सवत् १८२५ मे लिखा गया था। इसके कृतिकार हसराज त्रिपाठी, बुलाकी राम शर्मा के पुत्र थे। इनकी कविता का एक नमूना प्रस्तुत है :

चितई लल चौहैं चषनि डटि घूघट पर माँह।
छल सौ चली छुआइ कै छिनक छबीली छाँह।।

कवित्त :

गोप कदब मिले हरिवश सो खेलत आनद अग भरे हैं।
जात हुती व्रिषभान लली सग गोपिन के कहू गोप घरे हैं।
कै ललचौहई वैन दुहूँ डटि घूंघट माह सो हेरि हरे है।
लै छल सौ तन के निज छाह सो छवाइ लली चलि जात घरे हैं।।

(४) रस-कौमुदी :

बाबा जानकी प्रसाद रसिक बिहारी ने सन् १८८५ मे इस ग्रंथ को प्रकाशित किया था। इसकी रचना सं० १६२७ मे हुई थी। रस कौमुदी से एक उदाहरण प्रस्तुत है :

कुटिल अलक छुटि परत मुख बढिगो इतो उदोत
वंक बकारी देत ज्यो दाम रुपैया होत (२४)

रीत रची विपरीत दुहूँ सु अनंग उमग भरे सुख पैया।
ढीली छबीली की वेदी परी सब अक छके रति की सरसैया।।
छूटत ही सुख पै लटकै दुति वाढी हुतो मिलि कै कुटिलैया।
येकहि वक बकारी दिये रसिकेश ज्यो होत है दाम रुपैया।।

बिहारी सतसई के अनुवाद

बिहारी सतसई के अनुवाद संस्कृत, फारसी, उर्दू, राजस्थानी, बंगाली और पंजाबी भाषा मे किए गए हैं। इस अनुवाद के अतिरिक्त गुजराती मे दो टीकाएँ प्राप्त होती हैं जिन्हे टीकाओ के प्रसंग मे रखा गया है। परमानन्द कृत शृङ्गार सप्तशती मे अनुवाद और सस्कृत टीका दोनो हैं, उसे अनुवाद मे मैंने रखा है, किन्तु वह कृति टीका साहित्य के साथ नि.सकोच रखी जा सकती है। इसी भाँति फारसी का अनुवाद टीका की कोटि मे भी आ सकता है। नीचे हम विविध अनुवादो की चर्चा करेंगे।

संस्कृत अनुवाद

१—शृङ्गार सप्तशती :

वृज चन्द के पुत्र परमानन्द कृत यह ग्रन्थ सम्वत् १६३० मे विद्योदय प्रेस, छापाखाना बनारस से प्रकाशित हुआ था। ग्रथ रचना काल स० १६२५ है। पं० परमानन्द ने अनुवाद के साथ-साथ विस्तार से अर्थ भी किया है। यहाँ बिहारी सतसई के प्रथम छन्द का अनुवाद प्रस्तुत है .

अपनय भव बाधाभय राधे त्वं कुशलासि।
हरि रपि धरति हरिद्युति यदि माधवमुपयासि ॥

२—आर्यागुम्फ (१) :

रत्नाकर जी के एक आर्यागुम्फ का उल्लेख कविवर बिहारी (पृ० २६७) में किया है जिसके रचयिता काशीराज चेत सिंह के दरबारी कवि पं० हरि प्रसाद थे। इसकी रचना सम्वत् १८३७ मे हुई थी। उसमें बिहारी के प्रथम दोहे का अनुवाद इस भाँति है :

सा राधा भव बाधा विविधामपहरतु नागरिकी।
यस्यास्तुन तनुकान्त्या कान्ता श्यामो हरिर्भवति ॥

३—आर्यागुम्फ (२) :

कृष्ण कवि के कवित्त के साथ 'सस्कृत आर्यागुम्फ' की एक प्रति सरस्वती भण्डार राम नगर मे प्राप्त है, आर्यागुम्फ का एक भाग हाशिए पर लिखा गया है। इसमे आर्या छन्द मे अनुवाद और अर्थ दोनो हैं। यथा

मम् भव बाधा हरता नूनं सा नागरि राधा।
यत्प्रतिनिवे बपुश्यामो हरिद्युतिर्भवति ॥

"मेरी ति सा राधा नाम्नी नागरी रात्रा नाम्नी नायिका मम भव बाधा ससार दुखं अधिभौतिकादि क्लेश हरतु।" आदि,

स्व० भट्ट मथुरा नाथ शास्त्री कृत अनुवाद

स्व० भट्ट जी के ग्रन्थ 'साहित्य वैभवम्' मे 'बिहारी विलास' शीर्षक के अन्तर्गत बिहारी सतसई के छन्दो का सस्कृत अनुवाद दिया गया है। यही सामग्री गीता-प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'गोविन्द वैभवम्' में भी समाविष्ट की गई है। उदाहरण स्वरूप एक अनुवाद और संस्कृत अर्थ प्रस्तुत है :

लोपे कोपं इन्द्र लौ रोपे प्रलयं अकाल।
गिरि धारी राखे सबै गो गोपी गोपाल॥

प्रलयरोपिकोपावृतं पुरूहुतं प्रलुलोप।
गोगोपीगोपालकान् गिरिधर एव जुगोप॥३१॥

प्रलयं रोपयति करोति इर्द्दशेन क्रोधेन आवृतम् लुलोप लुप्तमकरोत् पराजित्य द्रावयाभास। तौदादिकाल्लुम्पतेलिर्ट्। गिरि सदृश दुरूद्धर धृत्वापि रक्षेति गिरिधरं पदेन सूच्यते। ततश्च भक्तवत्सल सर्व-समर्थश्च स एव सर्वात्मना सेव्य इति चरमं ध्वन्ते।

फारसी अनुवाद

सफरगे-सतसई :

जोशी आनन्दी लाल शर्मा ने सफरगे-सतसई नाम से फारसी अनुवाद सन् १८९३ मे तैयार किया था। आप का यह अनुवाद प्रकाशित भी हुआ है। सफरगे सतसई मे बिहारी के ६४० दोहो का अनुवाद है।

उर्दू अनुवाद

'गुल्जारे बिहारी' :

भ्रमर पत्रिका के (सम्वत् १९७९ के अक १ से ११ तक) मे बरेली निवासी श्री मदन लाल दाना का बिहारी सतसई के ९० दोहो का उर्दू अनुवाद प्रकाशित हुआ था। श्री दाना ने बिहारी के काव्य की प्रशसा बडे भावात्मक ढङ्ग से की है। दाना कृत एक अनुवाद प्रस्तुत है :

सरपटाति सैं ससिमुखी मुख घूंघट पट ढाकि।
पावक सर सौ झमकि कै गई झरोषा झाँकि॥

बरंग शोला रौजन से गई वह झाँक कर फौरन।
छिपा कर भाव वश घूंघट से अपने रूए रोशन को॥

गुलदस्तए बिहारी :

मुशी देवी प्रसाद प्रीतम ने भी बिहारी सतसई के छन्दो के उर्दू अनुवाद सन् १९०४ मे कायस्थ हितकारी पत्र मे प्रकाशित किए थे, तत्पश्चात् सम्पूर्ण अनुवाद

सं० १६८१ वि० में साहित्य सेवा सदन से 'गुलदस्तए बिहारी' नाम से प्रकाशित हुआ। उर्दू अनुवाद और छन्द प्रस्तुत हैं :

मिलि परछांही जोन्ह सो रहे दुहुनि के गात।
हरि राधा इक संग ही चले गली मे जात ॥
छिपे महताबो साया मे प्रिया प्रीतम के तन हिलिमिल।
चले जाते हैं व्रज गलियो रहीं हैं चाँदनी सी खिल ॥

जज़बाते मशरिक में बिहारी के दोहो के उर्दू मे अर्थ .

उर्दू समाचार पत्र रियासत के सम्पादक सरदार दीवान सिंह मफ़तून ने जज़वाते मशरिक मे अन्य कवियो के समक्ष बिहारी के दोहो का उर्दू मे भावार्थ प्रस्तुत किया है। यह भावार्थ आपने १६३७ मे नागपुर कारावास मे लिखा था। एक उदाहरण 'जजवाते मशरिक' से प्रस्तुत है :

सुरंगु महावरु सौत पग निरख रही अनखाइ।
पिय अगुरिनु लाली लखैं खरी उठी लगिलाइ ॥

गुस्सा और नाराज़ी से बेचैन हो रही थी और ख्याल आ रहा था कि अब शौहर सौतन के इन खूबसूरत पावो की पसंद करेंगे। तो देखा कि शौहर की उँगली भी मेहदी से लाल रगी हुई है। हसद (ईर्षा) की आग से कबाब हो गई कि हाय सौतन के पाँव को मेहदी लगाई थी शौहर ने अपने हाथो से।

सतसई के छन्दो पर गजले :

डा० हरवंश राय बच्चन ने सूचित किया है कि श्री सोहनलाल श्रीवास्तव ने बिहारी सतसई के छन्दो पर गजलो का निर्माण किया था, जो प्रकाशित भी हुई थी किन्तु यह कृति अभी तक मुझे प्राप्त नही हुई है।

बंगला-अनुवादक .

बंगला के सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री सोमेन्द्र नाथ ठाकुर ने बिहारी सतसई के १०० छन्दो का बंगला मे पद्यात्मक अनुवाद किया है। आपने सतसई का अध्ययन सन् १६४४ मे फतेहगढ और लखनऊ जेल मे किया था। फलस्वरूप १६४५ मे दमदम जेल मे इसका अनुवाद कार्य पूर्ण किया। अनुवादित एक छन्द प्रस्तुत है :-

जुवति जौनह मैं मिलि गई नेंक न होति लखाइ।
सौंधे कै डोरे लगी अली चली सग जाइ ॥

ज्योत्सनार साथे अगे अगे मिशे गेछे अभिसारिका।
अलख होइया पथचले केह दृष्टि नाहि को होने ॥
देह परिमल अनुसरी साधे चले सखी परिचारिका।
भ्रमर जे मन धाय फूलपने अलख गध टोने ॥

राजस्थानी-रूपान्तर :

राजस्थान मेवाड के कवि मोहन सिंह (जन्म सं० १६५६) ने बिहारी-सतसई के कुछ छन्दों का राजस्थानी में अनुवाद किया है। एक छन्द का राजस्थानी अनुवाद अथवा रूपान्तर इस प्रकार है .

पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पूनोही रहत आनन ओप उजास ।।
पतड़ा मिलवे मत्तडी, कण झूँपडले वाट।
पून्यू दातड-दीहडे मुखडा रै भरलाट ।।

पंजाबी-रूपान्तर :

पटियाला के श्री इन्द्रसिंह चक्रवर्ती ने बिहारी-सतसई के कुछ छन्दो का पजावी रूपान्तर प्रस्तुत किया है। श्री चक्रवर्ती का यह पंजावी रूपान्तर अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

१—कागड़ा पेटिंग्ज आफ दि बिहारी-सतसई—ले० श्री एम० एस० रधावा, टाइम्स आफ इंडिया एनुअल–१६६४, पृष्ठ २६ से ३७।

———

कविवर बिहारीदास की जीवनी

● हरिमोहन मालवीय

महाकवि बिहारीदास की जीवनी पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता मुझे तब प्रतीत हुई जब अनेक तथ्य इस प्रकार के मिले जिनके आधार पर पूर्वघोषित जीवनी विषयक स्रोत अप्रामाणिक एव मनगढन्त प्रतीत हुए। यह सही है कि स० १९८४ वि० मे स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' मे पर्याप्त शोध करने के अनन्तर महाकवि बिहारीदास की जीवनी प्रकाशित की थी और आज जो कुछ भी बिहारी की जीवनी पढी-पढाई जाती है, वह रत्नकार जी के अनुसन्धान पर प्रमुख रूप से आधारित है। किन्तु रत्नाकर जी का इस सम्बन्ध मे यह कथन कि "इधर-उधर से कुछ बाते एकत्रित करके उन पर अनुमान को अवलबित कर यह जीवनी सुशृखल रूप मे लिखने का यत्न किया गया है। इसमे अनेक त्रुटियो तथा अशुद्धियो की सम्भावना है"[1] यह उनके कार्य की प्रामाणिकता पर एक प्रश्न-चिह्न लगा देता है। इससे यह स्पष्ट है कि रत्नाकर जी द्वारा भी बिहारी की प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत न हो सकी थी। बाद के शोध-कर्त्ताओ और विद्वानो ने बिहारी की जीवनी के सम्बन्ध मे प्रचारित या प्राप्त आधारभूत सामग्री और उसके स्रोतो को प्रामाणिकता के निकष पर नही कसा जिसके कारण इस महाकवि के जीवन-पक्ष पर सम्यक् प्रकाश नही पड सका। यदि किसी ने उन स्रोतो पर दृष्टि भी डाली, तो सामान्य परीक्षण करके कुछ तथ्यो को स्वीकार करके शेष को अस्वीकृत कर दिया। फलस्वरूप व्यर्थ की कपोल-कल्पित कथाएँ बिहारी के जीवन के साथ जुड गई हैं।

जीवनी विषयक दोहे की प्रामाणिकता .

बिहारी की जीवनी के संदर्भ मे निम्नलिखित दोहा प्रस्तुत किया जाता है :

जनमु ग्वालियर जानिए, खड बुन्देले बाल।
तरुनाई आई सुघर, मथुरा बसि ससुराल॥

कुछ विद्वानो ने इसे बिहारी द्वारा लिखित भी मान लिया था। रत्नाकर जी ने लिखा है कि "हमने अपनी युवावस्था मे कुछ कवियो से ये तीन दोहे एक आख्यायिका के साथ सुने थे—यद्यपि कुछ लोगो का कहना है कि इनमे का पहला दोहा गग कवि ने खानखाना को सुनाने के लिए बनाया था।"[2] दोहे निम्नलिखित हैं :

गग गोछ मोछैं जमुन, अधरनु सरसुति रागु।
प्रगट खानखानानु कै, कामद बदन प्रयागु॥ (१)

जनमु ग्वालियर जानियै, खड बुन्देले बाल ।
तरुनाई आई सुघर, मथुरा बसि ससुराल ।। (२)
श्री नरहरि नरनाह को, दीनी बाँह गहाइ ।
सुगुन आगरैं आगरे, रहत आइ सुखु पाइ ।। (३)

रत्नाकर जी ने आख्यायिका के सम्बन्ध मे लिखा है कि "आख्यायिका यह है कि बिहारी ने 'गग गोछ' वाला दोहा खानखाना को सुनाया, जिस पर प्रसन्न होकर खानखाना ने उनको अशर्फियो से चुनवा दिया । खानखाना के विशेष वृत्तान्त पूछने पर बिहारी ने अन्य दो दोहे कहे ।"[3] आगे रत्नाकर जी ने लिखा है कि "बिहारी ने कहा कि 'प्रयाग स्नान से सब पातक छूट जाते हैं, अत मैं इस प्रयाग मे अपने ऋण-पातक से मुक्त होने के निमित्त आया हूँ, मेरे ऊपर जयसिंह का ७०० अशर्फियो का ऋण है ।' यह सुनकर खानखाना ने उनको अशर्फियो से चुनवा दिया । बिहारी ने कहा कि ये कुल अशर्फियाँ जयसिंह के पास भेज दी जाएँ, जिससे कि व्याज सहित ऋण चुक जाय ।"[4] स्मरणीय है कि रहीम की मृत्यु फागुन स० १६८३ मे हो चुकी थी । वास्तव मे तीनो दोहो के साथ कही हुई आख्यायिकाएँ कपोल-कल्पित ही हैं, क्योकि तब तक न सतसई ही लिखी गई थी और न बिहारी का सम्पर्क ही महाराज जयसिंह से हुआ था । इसके अतिरिक्त खानखाना से भी मिलने की कोई सम्भावना नही प्रतीत होती ।

'जनमु ग्वालियर जानियै' वाले दोहे के सम्वन्ध मे प० अम्बिकादत्त व्यास का कथन है कि "इस दोहे को पहले राजा शिवप्रसाद ने लिखा, फिर 'भारतेन्दु' पत्र मे श्री राधाचरण गोस्वामी ने लिखा, तद्नन्तर बाबू राधाकृष्ण दास, ग्रियर्सन साहब और पंडित प्रभुदयाल तथा मैंने (व्यास जी ने) लिखा ।"[5]

श्री राधाचरण गोस्वामी ने 'कविवर बिहारी का इतिवृत्त' शीर्षक अपने लेख मे लिखा है कि "बिहारी कवि ब्रजभाषा की ससुराल मथुरापुरी के वासी थे, इसी से इनकी भाषा मधुर से मधुरतर है ।"[6] गोस्वामी जी ने ससुराल पर '१' का चिह्न लगाकर पादटिप्पणी मे यह दोहा लिखा है :

जनमु ग्वालियर जानिए, खड बुन्देले बाल ।
तरुनाई आई सुभग, मथुरा बसि ससुराल ।।

गोस्वामी जी के कथन पर श्री अम्बिकादत्त व्यास ने लिखा है कि "गोस्वामी जी का तात्पर्य गोचर अर्थ यह झलकता है कि ब्रजभाषा का जन्म ग्वालियर का है, ब्रजभाषा बुन्देलखण्ड मे बालिका है और ब्रजभाषा की ससुराल मथुरा है, वहाँ इसका यौवन काल छिटका ।"[7]

श्री राधाचरण गोस्वामी के कथन पर आधुनिक विद्वानो ने कोई ध्यान नही

दिया और कालान्तर मे यह दोहा बिहारी के जीवन-पक्ष से सम्बन्धित समझा जाने लगा। कुछ लोगो ने तो इसे बिहारी रचित भी मान लिया।[८] गोस्वामी जी के कथन का परीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि भ्रमवश ही यह दोहा बिहारी के साथ जुडा है। वास्तव मे इस दोहे से ब्रजभाषा के उद्भव और विकास का द्योतन किसी कवि ने किया है।

ब्रजभाषा के जन्म के सम्बन्ध मे एक दावा ग्वालियर के पक्ष मे भी है, जिसके अनुसार ग्वालियरी' ही ब्रजभाषा के नामकरण के पूर्व मध्यदेश की काव्य-भाषा थी। 'बिहारी सतसई' के छन्दो का कवित्त-सवैया मे पल्लवन करने वाले (अथवा टीकाकार ?) कृष्णदत्त कवि ने ब्रजभाषा के पहले 'ग्वारियरी' की सरसता का वर्णन किया है :

देश भेद ते होत सो, भाषा बहुत प्रकार।
बरणत है तिन सबन मे, ग्वारियरी रससार ।। (७०८)
ब्रजभाषा भाषत सकल, सुरवाणी सम तूल।
ताहि वषानत सकल कवि, जानि महारस मूल[९] ।। (७०९)

स्व० राहुल साकृत्यायन का कथन है कि "जिसे हम ब्रज-साहित्य कहते हैं, वह पहले ग्वालियरी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध था। यह आज की ब्रज-कन्नौजी का मिश्रित साहित्य था। यदि हम उत्तर पचाली (रुहेलखण्डी) को न भी ले तो जिस तरह ब्राह्मण-उपनिषद् काल मे कुरु-पंचाल और वहाँ की भाषा तथा साहित्य प्रधानता रखता था, उसी प्रकार पालियो और प्राकृतो के काल मे कान्यकुब्ज की भाषा और साहित्य शिष्ट और मुख्य माने जाते थे। इसी की उत्तराधिकारिणी ग्वारियरी है जो पीछे व्रज के नाम से प्रसिद्ध हुई।"[१०]

ग्वालियर और ग्वालियरी के महत्व की ओर ध्यान सन् १६६६ ई० मे मानसिंह तोमर लिखित 'मानकुतूहल' के फारसी अनुवाद मे आकृष्ट किया गया था। औरङ्गजेब के काश्मीर के सूबेदार फकीरुल्ला सैफ खाँ के अनुसार सुदेश से मतलब है ग्वालियर से···भारतवर्ष मे इस बीच की भाषा सबसे अच्छी है।[११] केशवदास जी ने भी मध्यदेश गोपाचल की भाषा को सुभाषा कहा है (दे० कविप्रिया ७/३)। स्वय केशवदास जी के पूर्वज भी पहले गोपाचल (ग्वालियर) के राज्याश्रय मे थे, बाद मे बुन्देलखण्ड मे आए और नई मान्यता के अनुसार इनके पुत्र बिहारी को व्रज और अन्त मे आमेर का राज्याश्रय लेना पडा था।

ग्वालियर के सम्बन्ध मे अनेक तथ्यो का समावेश श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'मध्यदेशीय भाषा ग्वालियरी' मे किया है। बुन्देलखण्ड की काव्य-भाषा के सम्बन्ध मे उनका मत है कि "बुन्देलो ने बुन्देलखण्ड नाम दिया, परन्तु उन्हे बुन्देली

भाषा नाम देने की आवश्यकता न थी। उनके प्रदेश की भाषा उस समय समस्त हिन्दी भाषी जनता की काव्य-भाषा थी।"[१२] श्री द्विवेदी जी के अनुसार काव्य-भाषा का रूप ग्वालियर, अजमेर, जयपुर, महोवा, कालिञ्जर, गढकुण्डार तथा ओडछा मे सवाँरा गया है। वह मध्यदेश की व्यापक काव्य-भाषा है। वह पहले ग्वालियरी बुन्देलखण्डी है, तब ब्रज है। एक अन्य स्थल पर द्विवेदी जी का कथन है कि "अनेक शताब्दियो तक हिन्दी का नाम ही 'ग्वालियरी' भाषा रहा और उसे वह समर्थ रूप मिला जो समस्त भारत मे फैला सका और जिसमे सूरदास के 'सूरसागर', तुलसीदास के राष्ट्रप्रेरक राम-साहित्य तथा केशवदास के पाण्डित्य पूर्ण ग्रंथो की रचना सम्भव हो सकी और मिल सके बिहारी जैसे रससिद्ध कवि।"[१३]

डा० शिवप्रसाद सिंह ने 'सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' नामक अपने ग्रंथ मे जिन कवियो का उल्लेख किया है, उसमे अधिकाश ग्वालियर से सम्बन्धित है। डा० सिंह ने लिखा है कि "ब्रजभाषा मे सगुण कृष्ण-भक्ति का आरम्भ वल्लभाचार्य के वृन्दावन पधारने के ८०-९० साल पहले ही कवि विष्णुदास द्वारा किया जा चुका था। यह एक नया ऐतिहासिक सत्य है।"[१४] डा० सिंह ने ग्वालियर नरेश डूमरेन्द्र सिंह (राज्यारोहण १४२४ ई०) के राज्यकाल मे विष्णुदास की उपस्थिति मानी है और लिखा है कि "विष्णुदास की भाषा १५वी शती की ब्रजभाषा का आदर्श रूप है। इस भाषा मे ब्रज के सुनिश्चित और पूर्ण विकसित रूप का आभास मिलता है जो १६वी शती तक एक परिनिष्ठित भाषा के रूप मे दिखाई पडा।"[१५]

विष्णुदास की ही भाँति मानिक कवि (सं० १५४९), मेघनाथ (सं० १५५७), चतुरमल (स० १५७१ वि०), छीहल (सं० १५७५ वि०) आदि सूर के पूर्व ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे जिनका निवास ग्वालियर मे था। डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि विद्वानो ने ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति-काव्य का प्रारम्भ वल्लभाचार्य जी के (सन् १५१९ ई०, स०१५७६) ब्रज आगमन से माना है[१६] जब कि यह काव्य-परम्परा पहले से ही ग्वालियर मे मिलती है।

ब्रजभाषा के विकास-क्रम को बताने वाले जिस दोहे की ओर राधाचरण गोस्वामी ने ध्यान आकृष्ट किया था, उसका अर्थ उपर्युक्त सदर्भ मे स्पष्ट है, किन्तु तथ्यो का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण वह दोहा बिहारी के जीवन से जोड दिया गया।

यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि जिस बसुआ गोविन्दपुर को बिहारी का जन्मस्थान कहा जाता है, उस स्थान का कोई उल्लेख ग्वालियर राज्य के गजेटियर मे नही है। गजेटियर के तृतीय भाग मे केवल ईसागढ जिले मे गोविन्दपुर तथा अमझेरा मे गोविन्दपुर का उल्लेख मिलता है (ग्वालियर स्टेट गजेटियर, भाग ३, पृष्ठ १५१

और ३०७) । रत्नाकर जी ने वसुआ गोविन्दपुर की स्थिति आमेर मे मानी है । केवल प्रारम्भ मे मिश्रवन्धुओ ने उसे ग्वालियर का गाँव लिखा था ।

विहारी के प्राचीनतम समीक्षक राधाचरण गोस्वामी का कथन ऊपर लिखे आधारो पर सही सिद्ध होता है । "विहारी, व्रजभाषा की ससुराल मथुरापुरी के वासी थे" कथन मे 'मथुरापुरी' का गलत उल्लेख गोस्वामी जी ने किया है, क्योकि उन्हे 'विहारी सतसई' के दोहे का अशुद्ध पाठ स्मरण था । दोहे का पाठ उन्होंने लिखा है :

"जनम लियो मथुरा नगर, सुबस बसे व्रज आय ।"

जब कि इसका वास्तविक पाठ है ·

"प्रगट भये द्विजराज कुल, सुवस बसे व्रज आय ।"

व्रज से विहारी का सम्बन्ध ऊपर लिखे दोहे के द्वितीय चरण से भी सिद्ध है, किन्तु उनका जन्म ग्वालियर मे हुआ था, इसका कोई प्रमाण नही है ।

'विहारी-विहार' की अप्रामाणिकता :

विहारी से सम्बन्धित 'विहारी-विहार' नाम की दो कृतियाँ उपलब्ध हैं । एक 'विहारी-विहार' मे प० अम्बिकादत्त व्यास ने सतसई के छन्दो के भावो का पल्लवन कुण्डलिया छन्द मे किया है । इससे पृथक् एक अन्य 'विहारी-विहार' भी प्राप्त होता है जिसमे महाकवि विहारी की जीवनी आत्मकथन शैली मे लिखी गई है । डा० जगदीश गुप्त ने दूसरे 'विहारी-विहार को भी व्यास जी कृत मान लिया है ।[१७]

विहारी के जीवन से सम्बन्धित 'विहारी-विहार' को प्रचारित करने का श्रेय श्री वनारसीदास चतुर्वेदी को है । चतुर्वेदी जी ने अपने लेख 'कविवर विहारी कौन थे' मे लिखा है—"ये दोहे आज से ६७ वर्ष पहले (लगभग सन् १९१९ अथवा १९२०) मुझे इन्दौर मे श्री हरिप्रसाद जी चतुर्वेदी (भूतपूर्व तहसीलदार, इन्दौर राज्य) के यहाँ मिले थे और मैंने इनकी प्रति उसी समय पण्डित पद्मसिह शर्मा, पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और वावू श्यामसुन्दर दास इत्यादि विद्वानो को भेज दी थी ।" चतुर्वेदी जी ने आगे लिखा है कि "उन्होंने (पण्डित हरिप्रसाद जी) मुझसे कहा था कि सवत् १९३३ मे शाहपुरा के सरस्वती भण्डार मे 'विहारी-विहार' की एक प्रति वडी जीर्ण-शीर्ण अवस्था मे मिली थी । शाहपुरा नरेश के कामदार उसे पढवाने के लिए इन्दौर छावनी में लाए । वहाँ मानिक सिंह वकील के मकान मे मैंने उसे पढा और उसकी नकल ले ली ।"[१८] श्री वनारसीदास जी चतुर्वेदी द्वारा प्रेषित 'विहारी-विहार' नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे प्रकाशित भी हुआ था । रत्नाकर जी की पुस्तक 'कविवर विहारी' मे (पृ० ३१७ से ३२१) इसका पाठ प्राप्त है । रत्नाकर जी के पाठ मे निम्नलिखित छन्द छूट गया है । यह छन्द श्री वनारसीदास चतुर्वेदी के लेख के साथ प्राप्त पाठ मे सख्या ७ पर मिलता है ।

दक्ष गोत्र की अल्ल है नाम ककोर जु लेव ।
गुरू कहाउत माथुरन पुजियत पूज्य अभेव ।।

'बिहारी-विहार' के अनुसार कविवर विहारी ने लिखा है कि 'मेरे पितामह वसुदेव और पिता केसव देव छघरा माथुर चौवे मधुपुरी के निवासी थे । ककोर कुल मे दक्ष गोत्र की अल्ल है और माथुरो के गुरु है । मेरा नाम विहारी और पुत्र का नाम कृष्ण है । सवत् १६५४ की वुद्धवार कार्तिक सुदी अष्टमी को मेरा जन्म हुआ । ११ (रुद्र वर्ष) की आयु मे मैं अपने पिता के साथ वृन्दावन के यमुना तटवासी टट्टी सम्प्रदाय के हरिदास स्वामी के पास गया । वही नागरीदास जी मिले । माथुर लोग इसी गद्दी के शिष्य होते थे । नागरीदास जी की आज्ञा से मैंने उसी आश्रम मे रहकर स्वभाषा, सस्कृत, गान-ताल, काव्य आदि विद्याओ का अध्ययन किया । एक वार वही शाहजहाँ का आगमन हुआ और राग-रागिनी सुनकर वादशाह ने मुझको आगरा बुलाया । काव्य-प्रणयन करते हुए आगरा के दुर्ग मे वहुत काल तक रहे । वादशाह रात को वहुत देर तक फारसी की गजल, शेर, गीत और गान सुनते थे । वादशाह के पुत्रोत्सव मे आये ५२ नृपतियो को वादशाह के कहने से मैंने कविता सुनायी जिससे सभी राजा प्रसन्न हुए । बादशाह ने स्वय सवसे सनद दिलवाई । सभी ने यथाशक्ति वर्षासन दी । मिर्जा राजा जयसिंह के यहाँ वर्षासन लेने आगरे गए । वहाँ दो मास तक किसी ने कोई वात न पूछी । नवोढा रानी के फन्दे मे काम पीडित राजा कली पर मँडराने वाले भौरे की भाँति बेसुध होकर राज-काज भूल गये थे । रगमहल मे राजा की सेज पर पासवान से एक दोहा रखवाया, जिससे प्रसन्न होकर जयसिंह ने कविता करने की आज्ञा प्रदान की । राजा की भावना का विचार करके अन्य रसो पर भी कविताएँ रची गई, लेकिन शृगार रस मे अधिक काव्य-प्रणयन हुआ । फलस्वरूप एक-एक दोहे पर मोहर मिली । चार पक्षो मे यह काव्य रचा गया । जयसिंह की आज्ञा से वृन्दावन मे पुन स्वामी के स्थान पर वापस आए । लाल बिहारी से दास विहारी हो गये । सोमवार शुक्ल-पक्ष सप्तमी सवत् १७२१ मे मृत्यु हो गई ।"[१९]

रत्नाकर जी ने 'बिहारी-विहार' के सम्बन्ध मे निर्णय लेते हुए लिखा है कि "उसकी भाषा ऐसी अप्रौढ तथा छन्द ऐसे अनगढ हैं कि वह बिहारी रचित कदापि नही हो सकता । दूसरे यह कि उसमे बिहारी का जन्म विक्रमी सवत् १६५२ अथवा १६५४ की कार्तिक शुक्ल अष्टमी बुधवार का बतलाया गया है और ससार-त्याग सवत् १७२१ के चैत्र मास की शुक्ल सप्तमी, सोमवार, पर गणित से सवत् १६५२ की कार्तिक शुक्ल अष्टमी, गुरुवार को पडती है, सवत् १६५४ को उक्त अष्टमी शनिवार को और संवत् १७२१ की चैत्र शुक्ल सप्तमी बुधवार को, जिनसे वह निवन्ध किसी विशेष

जानकार का भी लिखा नही प्रतीत होता दूसरे उसकी कई एक घटनाएँ यदि असम्भव नही तो दुर्घट अवश्य हैं, जैसे चार पक्षो मे सतसई का रचा जाना तथा ११ वर्ष की अवस्था से बिहारी का वृन्दावन मे रहना इत्यादि ।"[२०]

यह सब लिखने के बाद भी रत्नाकर जी ने पुनः लिखा है कि "इस निबन्ध की अधिकाश बातें सच्ची जान पडती हैं, क्योकि उनका प्रमाण अन्य ग्रन्थो अथवा किंवदन्तियो से भी मिलता है, जैसे बिहारी के कुल, जाति, पिता, पुत्र इत्यादि का कथन, उनका वृन्दावन जाना, श्री स्वामी हरिदास जी के सम्प्रदाय का अनुयायी होना, अन्तिम अवस्था मे विरक्त होकर वृन्दावन मे रहना, उनके जन्म तथा संसार-त्याग के वर्ष इत्यादि ।"[२१]

रत्नाकर जी को कुल, जाति, पिता, पुत्र इत्यादि कथन सच्चे जान पडे । वास्तव मे कुछ कथन 'बिहारी-विहार' के कवि ने कृष्ण कवि के कथन से लिया है, यथा .

बसत मधुपुरी मधुपुरी, केसव देव सुदेव ।
नाम छहघरा गाइयतु, चौबे माथुर देव ।।

तथा

नाम बिहारी जानियतु, मम सुत कृष्ण जान । (कृष्ण कवि)

श्री बनारसी चतुर्वेदी ने लिखा है कि 'बिहारी-विहार' मे भी बिहारी को ककोर ही लिखा हुआ है । बिहारी को ककोर चौबे सिद्ध करने के लिए इस छन्द का पाठ इस प्रकार रखा गया है ·

माथुर वंश ककोर कुल, लसत मधुपुरी गाँव ।
चौबे केशव को तनय, दास बिहारी नाँव ।।

कृष्ण कवि का कथन इस प्रकार है

माथुर विप्र ककोर कुल, कह्यो कृष्ण कवि नाँव ।
सेवक हौ सब कविन सौ, बसत मधुपुरी गाँव ।।

पिता का नाम बिहारी के दोहे मे ही स्पष्ट है :

प्रगट भए द्विजराज कुल, सुजस बसे व्रज आइ ।
मेरे हरहु कलेश सब, केसौ केसौ राइ ।।

'केशव' ही नही, सतसई की शब्दावली भी 'बिहारी-विहार' मे स्वाभाविकता लाने के लिए रखी गई है, यथा ·

(१) अ—राधा भव बाधा हरौ राधा तिनके पास । (बिहारी-विहार)
आ—मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोई । (बिहारी सतसई)
(२) अ—हुकुम पाइ जय शाहि कौं नगर पयानो कीन्ह । (बिहारी-विहार)

आ—हुकुम पाइ जहसाहि को हरि राधिका प्रसाद। (विहारी सतसई)

'बिहारी-विहार' मे सुप्रसिद्ध दोहा 'नहि पराग नहि मधुर-मधु' से सम्बन्धित सुप्रसिद्ध कथानक को जोड दिया गया है। यथा :

भूपति इक रानी वरी, शुठि सुदर सुभ वाम।
रह्यौ नवौढा आयु की, भूपति पीडित काम।। (३७)
फँसे तासु के फद मे, अलि गति ज्यो मँडरात।
राज काज सब विसरिगो, वात न कुछु कहि जात।। (३८)

रेखाङ्कित भाग मे 'नहि पराग नहि मधुर मधु' वाले दोहे का स्पष्ट प्रभाव है।

'बिहारी-विहार' मे कृष्ण को विहारी का पुत्र कहा गया है। कृष्णदत्त कवि भी 'माथुर विप्र' और 'मधुपुरी' वासी थे। 'विहारी-विहार' के रचयिता ने इसी आधार पर कृष्ण कवि से विहारी का पिता-पुत्र सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। कृष्णदत्त कवि ने अपने आश्रयदाताओ का विशद् वर्णन किया है। यदि यह कवि बिहारी का पुत्र होता तो सतसई का पल्लवन करते समय वह कवि से अपने सम्बन्ध की चर्चा अवश्य करता। किन्तु ऐसा कोई उल्लेख उसने नही किया है।

'विहारी-विहार' के ऐतिहासिक तथ्यो को तोड-मरोड कर श्री अमृतलाल शील ने 'सरस्वती' के फरवरी सन् १६२७ के अङ्क मे प्रकाशित 'कविवर विहारी कौन थे' शीर्षक लेख मे विचार किया है। श्री शील ने यह लेख श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के 'कविवर बिहारी कौन थे' (सरस्वती, अक्टूबर १६२६, पृ० ४१६-४२३) के उत्तर मे लिखा था। श्री शील ने लिखा है कि "शाहजहाँ के बादशाह होने के बाद केवल एक बेटा दौलत अफजा उत्पन्न हुआ था। उस समय अभिषेक (के उत्सव) मे आए हुए वहुत नृपतियो मे कुछ आगरे मे अवश्य होगे। परन्तु इस समय शाहजहाँ को वृन्दावन अथवा किसी और स्थान को जाने का अवसर नही मिला।.. शाहजहाँ को इन ८४ दिनो मे बहुकाल तक 'गान सुनन सो रात को दिवस भए बहुतेर' का अवसर नही मिला और न मिलना सम्भव था, क्योकि इस समय शाहजहाँ ने .... तमाम राज्य के सूबेदारो को बदल दिया था।......इन कामो मे वह इतना फँसा था कि संगीत सुनकर रात विताने का अवसर उस समय नही मिल सकता था।...... अभिषेक के बाद पहले पहल जब शाहजहाँ के आगरा छोडने का अवसर हुआ, तब वह २३ सीपुर औव्वल १०३८ हिजरी (१० नवम्बर, १६२८) अर्थात् बेटे के जन्म के ६ महीना १२ दिन उपरान्त फतेहपुर (वृन्दावन आगरे से पश्चिम ओर है और फतेहपुर पूर्व ओर) सीकरी को गया। वहाँ ३० वी को (१७-११-१६२८) तुलादान दिया और ८ वी रबी उस्सामी १०३८ (२५-११-१६२८) को बारी नाम के गाँव में

पहुँच कर पाँच दिन रहा । फिर गोपाचल (ग्वालियर) चला गया । अतएव 'शाहजहाँ का वृन्दावन जाना, बिहारी को साथ लिवा लाना, उसके बहुकाल बाद पुत्र उत्पन्न होने पर बावन नृपतियो से सनद और वर्षासन दिलाना, ये सब कल्पित और झूठी बाते हैं।"

बिहारी की मृत्यु-तिथि चैत शुक्ल सप्तमी, सोमवार स० १७२१ जो 'बिहारी-बिहार' मे है, वह भी हिसाब से गलत है। एक विद्वान् का विचार है कि उस दिन बुधवार था। इस तिथि को 'बिहारी भगवान् कृष्ण के हो गये थे' जिससे यह सिद्ध होता है कि वह तिथि बिहारी के मरण की है, न कि 'बिहारी-बिहार' के रचना काल की। यह बात भी स्पष्ट कर देती है कि यह बिहारी की रचना नही है। वास्तविकता तो यह है कि महाकवि बिहारी को चतुर्वेदी सिद्ध करने का अनेक बार प्रयास किया गया। चतुर्वेदी-समाज मे भी दो मत प्रचलित रहे। एक मत के अनुसार बिहारी ककोर चौबे थे और उनके पुत्र कृष्ण थे और दूसरे मत के अनुसार बिहारी घरबारी थे और उनके पुत्र का नाम निरजन था।

बिहारी को घरबारी चौबे सिद्ध करने का प्रयास श्री अमरकृष्ण ने किया था, क्योकि उनके पिता बालकृष्ण का स्वागत 'वश भास्कर' ग्रन्थ मे बूंदी के चारण सूर्य-मल्ल ने यह कहकर किया है

कवि विप्र बिहारी वश-जात। कवि बालकृष्ण प्रभु अन्नपात॥

इसी भाँति सोरो के गङ्गा गुरुओ के यहाँ से प्राप्त वंशावली के आधार पर अमर कृष्ण ने एक छप्पय बनाया था। रत्नाकर जी ने उस छप्पय का रचयिता अमरकृष्ण के पिता बालकृष्ण को लिखा है। किन्तु श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के लेख की पाद टिप्पणी मे लिखा है कि "आज से ३० वर्ष पहले जब मुशी देवीप्रसाद जी मुसिफ, जोधपुर ने श्री अमरकृष्ण जी से उनकी वशावली माँगी थी, तब उन्होने यह छप्पय उन्हे भेजा था। फर्क इतना ही है कि पहले भेजे छप्पय मे निरजन का नाम नही था और द्वितीय पक्ति इस प्रकार थी—'ज्ञान के धाम कहुँ लवलेश न दुरमत। अमर-कृष्ण जी से पूछने पर उन्होंने कहा—"सोरो मे गगा गुरू से जाँचने पर हमे [illegible] नाम का पता लगा।" अमरकृष्ण का बनाया हुआ छप्पय इस प्रकार है .

प्रथम बिहारी दास प्रगट जिन सप्तशती कृत।
तनय निरजन तासु भयउ विज्ञान विशद मत॥
तिनके गोकुल दास तनय तिन खेम करन गति।
दया राम सुत जासु बहुरि तिनके मानिक मनि॥
पुनि गणेश तिनके तनय बालकृष्ण जिनके भयउ।
गुण निगुण चतुरता सप्त सों कविता तिय नायक कहेउ॥

रेखांकित स्थलो पर रत्नाकर जी का पाठ भिन्न है 'विज्ञान विशद मत' के स्थान पर 'विख्यात सुहृद' तथा अंतिम पक्ति का पाठ है 'गुन निपुन चतुर जन-भाल-मति कविता तिय नायक कह्यौ'। चतुर्वेदी जी के लेख मे छप्पय के अतिरिक्त एक दोहा और भी है जो इस प्रकार है

तिनके भा अति मद मति कवि जन किंकर जानि।
विद्या रहित विवेक बिन अमरकृष्ण पहिचान ॥

अमरकृष्ण के इस प्रकार छन्दबद्ध वशावली प्रस्तुत करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिभाशाली कवि यथावसर इस प्रकार की कविता कर लेते थे। 'बिहारी विहार' भी इसी प्रकार की सुनी-सुनाई बातो पर आधारित कृति है और यह बिहारी को ककोर माथुर चौबे सिद्ध करने के लिए ही लिखी गई है। बिहारी को चौबे घोषित करने का कितना उत्साह था, इसका पता इसी से लग जाता है, जब कि श्री बनारसी दास चतुर्वेदी लिखते हैं—"यह बात तो अब प्राय. निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि बिहारी जाति के चौबे ब्राह्मण थे, पर अभी तक यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि उनकी उपाधि क्या थी ? वे ककोर चौबे थे या घरबारी।"[२२]

बिहारी की जाति के सम्बन्ध मे दो और मत भी प्रचिलित थे। श्री राधाचरण गोस्वामी के अनुसार बिहारी, राय और श्री राधाचरण दास जी के अनुसार बिहारी सनाढ्य मिश्र थे। जहाँ तक राधाचरण गोस्वामी का अनुमान है, उसका कारण है पाठ सम्बन्धी साधारण भूल। सुप्रसिद्ध दोहे की एक अर्धाली के पाठ 'प्रगट भए द्विजराज कुल' के स्थान पर 'जनम लियो मथुरा नगर' लिखकर गोस्वामी जी ने बिहारी की जाति का निर्णय किया है। उनका कथन है कि "बिहारी ब्राह्मण-क्षत्रिय से उत्पन्न 'राय' थे, क्योकि इसमे 'केशव राय' शब्द से यही बोध होता है कि उनके पिता राय थे। यदि 'केशव राय' शब्द से मथुरा के देवता केशवदेव जी का अभिप्राय होता तो देव शब्द होता, न कि राय। यदि कोई पाठान्तर (लाल चद्रिका का भी यही म। है) 'जनम लियो द्विज कुल बिसै' से बिहारी को ब्राह्मण माने तो सन्देहास्पद है। क्योकि ब्राह्मण कुल के लिए केवल द्विज शब्द अनर्ह है द्विजराज, भूसुर, भूमिसुर, विप्र आदि लिखते। यदि कहो कि राय द्विज नही तो हम न माने, पर राय अपने को ब्राह्मण-क्षत्रिय से उत्पन्न मानते हैं, और इसी से अनुलोमो मे अपनी प्रथम गणना करते है और अपने को द्विज मानते हैं।"[२३] गोस्वामी जी ने 'द्विजराज' शब्द ब्राह्मण के लिए उपयुक्त माना है और वास्तविक पाठ भी है 'प्रगट भए द्विजराज कुल'। इस प्रकार गोस्वामी जी का अनुमान स्वत खण्डित हो जाता है।

केशव और बिहारी :

केशव और बिहारी के पिता-पुत्र सम्बन्ध की चर्चा सर्वप्रथम बाबू राधाकृष्ण दास ने अपने लेख 'कविवर बिहारी लाल' मे की थी। तदुपरान्त रत्नाकर जी को

भी इस मत के समर्थन मे अनेक सम्भावनाओ का आभास मिला। उन्होंने नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे 'महाकवि विहारीदास जी की जीवनी' शीर्षक से एक निबंध प्रकाशित करवाया था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि केशव और विहारी के पिता-पुत्र सम्बन्ध का तत्कालीन साहित्यिको द्वारा विरोध हुआ। फलस्वरूप 'महाकवि विहारीदास की जीवनी' मे केशव और विहारी के काव्य मे प्राप्त भाव-साम्य आदि का निदर्शन करते हुए रत्नाकर जी को लिखना पडा कि "ऊपर जो बाते लिखी गई हैं, उनसे सुप्रसिद्ध कवि केशवदास जी ही को विहारी का पिता मानना सङ्गत प्रतीत होता है। पर इस समय विद्वान् मण्डली की धारणा इसके विरुद्ध है। अत जब तक इस बात के और कुछ पुष्ट प्रमाण हाथ न आये, तब तक हम भी विहारी के पिता को अन्य ही केशव मान कर यह जीवनी लिखते हैं।"[२४]

केशव और विहारी वे पिता-पुत्र सम्बन्ध पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है और विद्वानो ने इस समस्या पर अनेक प्रकार से विचार-विमर्श किया है। कुलपति मिश्र ने 'सग्राम सार' मे लिखा है :

कविवर मातामह सुमिरि, केसौ केसौराइ।
कह्यौ कथा भारत्थ की, भाषा छन्द बनाइ।।

इस पर टीका करते हुए रत्नाकर जी ने लिखा है—"उससे उनके मातामह तथा विहारी के पिता का कविवर होना सिद्ध होता है। पर जहाँ तक ज्ञात है, उस समय ओडछे वाले केशवदास जी को छोडकर और कोई ऐसा केशव नामक प्रसिद्ध कवि नही था जो कुलपति जी का मातामह होता और जिसकी वन्दना कुलपति ऐसा पण्डित और कवि ऐसी श्रद्धा से करता। अत. कुलपति जी के दोहे से भी केशव-से प्रसिद्ध कवि केशवदास जी ही का लक्ष्य करना अधिक सगत प्रतीत होता है।"[२५]

कुलपति मिश्र ने 'युक्ति तरगिणी' मे केशवदास जी के बाद विहारीदास जी का स्मरण इस प्रकार किया है .

जो भापा जान्यौ चहत रसमय सरस सुभाइ।
कविता केसौराय की तौ सांचौ चितुलाई।।
भाँति-भाँति रचना सरस देव गिरा ज्यौं व्यास।
तौ भाषा सब कविनु मे विमल विहारीदास।।

केशव और कुलपति दोनो अपने नाम के आगे 'मिश्र' जोडते थे। विहारी कुलपति मिश्र के मामा थे, यह बात भी विद्वानो ने कही है।[२६]

श्री मथुराप्रसाद 'मधुरेश' से प्राप्त केशवदास जी का जो वंश-वृक्ष मिला है, उसके अनुसार केशवदास जी के भाई बलभद्र मिश्र एवं कल्याणदास मिश्र थे तथा केशव के पुत्रो के नाम हैं विहारीदास, श्री प्रसाद, विश्वेश्वर दयाल, जहदेव और

अनन्तराम । इस वंश-वृक्ष को डा० विजयपाल सिंह ने अपने शोध-प्रबन्ध मे पूर्ण रूपेण प्रकाशित किया है ।

बिहारी के काव्य मे बुन्देलखण्डी शब्दावली का प्रचुर प्रयोग मिलता है । इस तथ्य की ओर भी विद्वानो ने ध्यान आकृष्ट किया है । लाला भगवानदीन ने लिखा है कि "हमारा यह अनुमान है कि बिहारी बहुत दिनो तक अपने लडकपन मे कही बुन्देलखण्ड मे रहे हैं । कारण यह है कि इनकी कविता मे ठेठ बुन्देलखण्डी शब्दो का ऐसा ठीक प्रयोग पाया जाता है, जैसा अन्य प्रान्त का निवासी कर ही नही सकता । उदाहरण लीजिए . स्यो—सहित (बिहारी बोधिनी, दो० न० २५१, ५०१) । कई टीकाकारो ने इस शब्द का अर्थ न समझ कर इसका रूप 'सौ' कर डाला है और अर्थ करना उडा गए है ।......यह सर्वमान्य बात है कि केशवदास जी बुन्देलखण्डी थे । केशव कृत 'रामचन्द्रिका' मे इस 'स्यो' शब्द का प्रयोग बहुतायत से पाया जाता है । अन्य प्रान्त निवासी कवियो की कविताओ मे इस शब्द का प्रयोग देखा ही नही जाता ।"[२७]

राधाकृष्ण दास जी तथा आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने भी सतसई मे बुन्देली शब्दो के प्रयोग को देखकर बिहारी के बुन्देलखण्ड निवासी और केशव के पुत्र होने की सम्भावना पर विश्वास प्रकट किया ।

केशव के काव्य का प्रभाव :

बिहारी ने केशव के काव्य का, विशेष रूप से 'कविप्रिया' का अध्ययन किया था और उनके कवि-मानस पर उसका कई रूपो मे प्रभाव पडा था । ये प्रत्यक्ष प्रभाव, भाव और शब्दावली दोनो पर पडे हैं । भावसाम्य तो आकस्मिक भी हो सकता है, किन्तु शब्दावली के प्रयोग—साम्य का कारण संस्कारगत् ही है । यदि दो चार स्थलो पर इस प्रकार का साम्य हो तो वह भी आकस्मिक कहा जा सकता था, किन्तु 'कविप्रिया' मे अनेक ऐसे छन्द है जिनमे केशव और बिहारी ने समान शब्दावली का प्रयोग किया है । बिहारी के प्रथम दोहे मे ही भाव एवं शब्द-प्रयोग का साम्य प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है :

बिहारी : मेरी भौ बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाईं परैं, स्याम हरित दुति होइ ।। १

केशव : राधा केशव कुँवर की, बाधा हरहु प्रवीन ।
नेकु सुनावहु करि कृपा, शोभत बीन प्रवीन ।।१५।७

रत्नाकर जी ने भी बिहारी और केशव के कतिपय छन्दो के भाव-साम्य का मिलान किया है ।[२८] शब्दावली साम्य के भी कुछ उदाहरण हैं जिनमे शब्द-योजना कुछ अंशो मे समान मिलती है । इस सन्दर्भ मे निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं :

(१) अभिराम सचिक्कन स्याम सुगन्ध के धामहु तें जे सुभाइक के (कविप्रिया, प्रकाश ५, छन्द १४, पक्ति १)

सहज सचिक्कनि स्याम रुचि, सुचि सुगंध सुकुमार । (विहारी सतसई)

(२) ऊख, महूख, पियूख गानि, केशव साँचो इष्ट । (क० प्रि०, ६।४८-१)

ऊख, महूख पियूख की तौ लगि भूँख न जाति । (वि० स०)

(३) गोरी गोरी भोरी भोरी, थोरी थोरी वैस फिरैं । (क० प्रि०, ६।२८-३)

ढोरी लाई सुनन की, लखि गोरी मुसिकात ।

थोरी थोरी सकुचि सो भोरी भोरी बात ।। (वि० स०)

(४) तेल, तूल, तामोर, तिय, ताप, तपन, रतिवत । (क० प्रि०, ७।३५-१)

तपन तेज तापन तपन तूल तुलाई माह । (वि० स०)

(५) नही उरबसी उर बसी मदन मद न वश भक्त ।। (क० प्रि० १५।१०६-१)

तू मोहन के उर बसी ह्वै उरबसी समान । (वि० स०)

इसी भाँति अनेक शब्द 'कविप्रिया' और 'सतसई' मे समान रूप से व्यवहृत मिलते हैं । इस प्रकार विहारी पर केशव का अत्यधिक प्रभाव लक्षित किया जा सकता है और उनके पिता-पुत्र सम्बन्ध की पुष्टि की जा सकती है ।

नरहरि का तात्पर्य :

'विहारी-सतसई' के एक दोहे मे 'नरहरि' शब्द मिलता है जिसके सम्बन्ध में रत्नाकर जी ने भ्रम उत्पन्न कर दिया है । रत्नाकर जी ने लिखा है कि विहारी श्री स्वामी हरिदास जी के सम्प्रदाय के अनुयायी और कदाचित् श्री स्वामी नरहरि दास जी के शिष्य थे । दोहा इस प्रकार है

जम करि मुँह तरहरि पर्‌यौ, इहिं धर हरि चितु लाउ ।
विषय तृषा परिहरि अजौ, नरहरि के गुन गाउ ।।

नरहरि दास का परिचयात्मक विवरण भी 'कविवर विहारी' के पृष्ठ ३३५ की पाद-टिप्पणी मे रत्नाकर जी ने दिया है । अपनी बचत के लिए रत्नाकर जी ने 'विहारी-रत्नाकर' मे नृसिह अर्थ भी स्वीकार किया है, किन्तु नरहरि दास को कवि का दीक्षा गुरू भी माना है । यहाँ यह स्पष्ट है कि यम रूपी हाथी की तुलना मे नृसिह की कल्पना ही सार्थक है और हाथी को पराजित करने की सामर्थ्य सिंह मे ही मानी गयी है । केशव ने भी नृसिंह का उल्लेख अपने काव्य मे किया है । यथा :

दीन्ही ताहि नृसिंह जू, तन मन रन जय सिद्धि ।
हित करि लच्छन-राम ज्यो, भई राज की वृद्धि ।। (रसिक प्रिया, १।६)

'ताहि' का अर्थ यहा इन्द्रजीत सिंह से है जो केशव के आश्रयदाता हैं । 'कवि प्रिया' मे भी नृसिंह का वर्णन मिलता है । यथा :

धरत धरनि, ईश शीश चरणोदकनि,
गावत चतुरमुख सब सुखदानिये ।

कोमल कमल कर कमलाकर कमल,
कलित, बलित, गुण क्यों न उर आनिये ।
हिरणकशिपु दानकारी प्रहलाद हित,
द्विजपद उरधारी वेदन वखानिये ।
'केशोदास' दारिद दुरद के विदारबे को,
एकै नरसिंह कै अमर सिंह जानिये ।।

यहाँ 'अमर सिंह' और नरसिंह' मे दो अर्थ का श्लेष है । आचार्य चन्द्रवली पाण्डेय ने लिखा है कि वीरसिंह देव को मुगल इतिहास-लेखक सदा नरसिंह ही लिखते थे ।[२९] वास्तव मे नृसिंह ओडछा राज्य के इष्ट थे । इस सम्वन्ध में 'बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास' मे गोरे लाल तिवारी ने लिखा है—"मधुकर शाह नृसिंह के उपासक थे । एक दिन अकबर ने इन्हे भी आखेट मे चलने के लिये कहा, पर महाराज मधुकर शाह ने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया कि मैं अपने इष्ट को मारने नही जा सकता ।"[३०]

विहारी ने केशव की भाँति ही एक छन्द मे नृसिंह का स्मरण किया है । यहाँ नरहरि दास से सम्वन्धित होने की बात रत्नाकर जी की कल्पना की उपज है । इसका कही भी उल्लेख नही मिलता ।

पातुर राय का उल्लेख :

'बिहारी सतसई' मे पातुर राय प्रवीण का नाम दो छन्दो मे किसी न किसी रूप मे आया है :

पूस मास सुनि सखिनु पैं, साईं चलत सवारु ।
गहि कर बीन प्रवीन तिय, राज्यो रागु मलारु ।। (वि० र०, १४६)
सब अग करि राखी सुघर, नाइक नेह सिखाइ ।
रस जुत लेति अनत गति, पुतरी पातुर राइ ।। (बि० र०, २८४)

केशवदास जी ने इसी राय प्रवीण के लिए 'कविप्रिया' की रचना की थी, जिसका उल्लेख 'कविप्रिया' मे केशवदास ने इस प्रकार किया है :

सबिता जू कविता दई, जाकहँ परम प्रकाश ।
ताके कारज कविप्रिया, कीन्ही केसवदास ।।१।६१

राय प्रवीण का उल्लेख 'कविप्रिया' मे कई स्थलो पर मिलता है । इस सन्दर्भ मे कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं

(१) नाचत गावत पढत सब, सवै बजावत बीन ।
तिन मे करत कवित्त यक, राय प्रवीण प्रवीण ।।१।५६
(२) राय प्रवीण प्रवीण अति, नवरग राइ सुवेश ।
अति विचित्र नैना निपुण, लोचन नलिन सुदेश ।। १।४६

(३) राय प्रवीण प्रवीण सो, परवीणन मन सुक्ख ।
अपरवीण 'केशव' कहा, परवीननि मन दु ख ।।१।५७

(४) देव को दिवान सो प्रवीण राय जू को बाग,
इन्द्र के समान तहाँ इन्द्रजीत जानिये ।।७।१५-४

(५) सुनि बाजत बीन प्रवीन नवीन सुराग हिये उपजावति सी ।।११।४१-३

विहारी के प्रथम दोहे मे 'बीन प्रवीन' शब्द उसी भाँति आया है, जिस भाँति केशव के 'सुनि बाजत बीन प्रवीन नवीन सुराग हिये उपजावति सी' मे आया है । छन्द १।५६ मे राय प्रवीण के नाचने-गाने के अतिरिक्त उसकी काव्य-प्रतिभा का उल्लेख केशव ने किया है । मानसिंह बिजैगढ ने 'सब अग करि' वाले छन्द का अर्थ इस प्रकार किया है .

"श्री दरसन विषै श्री रावाजु के नैन की । नृत्य करी राय पातुर समान कहै है । सव सर्वनारारम्भ के । अक भाव विषै लुकर चतुर कत राषी । नाय० । श्री कृष्ण सनेह० ।। नायक नृत्यकार । तिन सिखाइ कै । रस० । पैमरस सजुक्त । अनत चाल लेत है । पुन० । नैन की पुतरी राज पातुर जैसी है ।"

इसमे 'राय पातुर' व्यक्ति विशेष के लिये ही प्रतीत होता है । यह उल्लेख भी विहारी और केशव के नैकट्य और प्रभाव को द्योतित करता । 'कविप्रिया' की रचना सं० १६५८ मे राय प्रवीण की काव्य-दीक्षा के लिए हुई थी । उस समय वह नायिका भेद की मुग्धा नायिका ही रही होगी । विहारी को नृत्य आदि मे उसका प्रगल्भ रूप देखने को अवश्य मिला था जिससे उपमान के रूप मे वह 'विहारी-सतसई' मे अनायास आ गई । यदि केशव विहारी के पिता न होते ता इन्द्रजीत सिंह के दरबार की इस पातुर की नृत्य-निपुणता को ध्वनित करने वाला छन्द इतने सजीव ढङ्ग से न लिख पाते ।

मैना जाति का उल्लेख .

विहारी ने मैना जाति का उल्लेख सतसई मे किया है । दोहा है .

चलत न पावत निगम मग, जग उपज्यौ अति त्रास ।
कुच उतुग गिरिवर गह्यो, मैना मैन मवास ।।

रत्नाकर जी ने 'मैना' के सम्बन्ध मे 'बिहारी रत्नाकर' मे लिखा है कि राजस्थान के जगलो मे एक जाति के मनुष्य रहते हैं जो कि मैना अथवा मीना कहलाते हैं उनका काम प्राय डाका डालना और लूटना है । बुन्देलखड के इतिहास मे महाराज वीरसिंह देव द्वारा मैना और जाटो को हराने का विवरण मिलता है । [31] विहारी ने इस जाति का परिचय बुन्देलखड मे पाया था, राजस्थान मे नही, क्योकि उनके यौवनकाल तक के अनेक सूत्र यह सिद्ध करते हैं कि वे बुन्देलखड मे रह चुके थे ।

'सुबस बसे ब्रज आय' पर विचार :

बिहारी द्वारा ओडछा का राज्याश्रय छोडकर मथुरा और तत्पश्चात् आमेर राज्य के सरक्षरण मे जाने के कई कारण हैं। केशवदास जी ने स्वत: जीवन की सध्या मे गङ्गातट-वास की आकाक्षा की थी।[३२]

स० १६६२ मे केशवदास रामशाह के कहने से वीरसिंह देव से सन्धि कराने गए थे किन्तु कुछ कारणो से वे सफल न हुए। स० १६६३ मे ओडछा पर मुगलो का आक्रमण हुआ जिसमे केशव के आश्रयदाता इन्द्रजीत घायल और मूर्छित हुए। स० १६८४ मे बुन्देलखड मे अकाल पडा और उसी समय महाराज वीरसिंह देव की मृत्यु हो गई। केशवदास जी की मृत्यु स० १६७४ मे हो चुकी थी। स० १६६१ से स० १६६८ तक जुझार सिंह, देवी सिंह, पृथ्वीराज आदि सिंहासन पर बैठे। इस उथल-पुथल मे बिहारी को मथुरा जाकर बसना पडा और वहाँ भी केशवदेव जी का ही स्मरण करना पडा था :

प्रगट भए द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब, केसौ केसौ राइ॥

उपर्युक्त पद मे दो केशव का उल्लेख मिलता है। इस पर सूरति मिश्र ने लिखा है

श्लेष अर्थ केशव पिता, अरु हरि केशवराय।
वे द्विज कुल ये चन्द्र कुल, प्रगटै अर्थ जताय॥

प्राचीनतम टीकाकार वृन्दराय (रत्नाकर जी के अनुसार कृष्ण लाल) ने लिखा है—"ए जो ब्रज ते आनि कै आवैर के विषै सुवसु काहे है सो कौन कि केसो जो मेरो पिता अरू केसोराय जो श्री कृष्ण जू मेरे सबही क्लेश को हरौ।" इस टीकाकार ने बिहारी का ब्रज से आगरे पहुँचने का उल्लेख किया है। शेष टीकाकार ब्रज मे बसने का ही उल्लेख करते हैं। सभी टीकाकारो ने पहले 'केशव' को पिता और दूसरे 'केशव' को भगवान् केशव का स्मरण करना माना है जो कि अशुद्ध है वास्तव मे प्रथम 'केशव' आराध्य हैं और 'केशवराय' पिता है जिनका स्मरण, धार्मिक मान्यता के अनुसार बाद मे किया गया है। हिन्दुओ मे देवताओ के बाद पितरो का स्मरण होता है।

'केशव केशवराय' को एक ही नाम मानने के मत का प्रतिपादन 'श्री माया शकर याज्ञिक ने स० १६८७ वि० की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' मे किया था, जिस पर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने भी ('बिहारी' पृ० १०१) विचार किया है। डा० विजयपाल सिंह का कथन है कि याज्ञिक जी द्वारा उद्धृत छन्द महाकवि केशवदास द्वारा ही विरचित है। केशव आचार्य थे, अत उनके छन्दो का प्रयोग 'रस सुधा सागर' मे होना कोई आश्चर्य की बात नही।[३३]

आचार्य चन्द्रवली पाण्डेय ने उदाहरण देकर सिद्ध किया है 'केशवराय' का प्रयोग अनेक स्थलो पर इस दृष्टि से हुआ है कि उनका अर्थ कवि और कृष्ण दोनो का द्योतक है।[३४]

वास्तव मे 'केशव केशवराय' एक व्यक्ति का सूचक नही है। पहले कवि ने अपने आराध्य की वन्दना की है और यह वन्दना केशवदेव जी की ही सम्भावित है जिनके मन्दिर का निर्माण मथुरा मे सं० १६७६ मे ओड़छा नरेश वीरसिंह देव ने करवाया था और जिसे स० १७२६ मे औरङ्गजेब ने तुड़वा दिया था। बिहारी ने अवश्य ही केशवदेव जी के विशाल मन्दिर को देखा था।

उपर्युक्त उदाहरणो तथा प्रमाणो से भी यही सिद्ध होता है कि बिहारी के पिता सुप्रसिद्ध आचार्य केशवदास ही थे।

मिर्जा राजा जयसिंह और बिहारी :

बिहारीदास ने मिर्जा राजा जयसिंह का सतसई मे उल्लेख किया है और एक छन्द के अनुसार बिहारी ने जयसिंह (जयसाहि) की आज्ञा से ही सतसई का प्रणयन किया था। छन्द इस प्रकार है :

हुकुम पाइ जयसाहि कौ, हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद।। (बि० र० ७१३)

सतसई के लिखे जाने के सम्बन्ध मे एक कथा प्रचलित है जिसके अनुसार एक समय महाराज जयसिंह (रत्नाकर जी के अनुसार स० १६६१-६२ मे)[३५] किसी नवोढ़ा रानी के प्रेम में निमग्न होने के कारण राज्य-शासन से उदासीन होकर राजमहल मे ही रहने लगे थे। राजा जयसिंह की चौहानी रानी अनन्त कुमारी अपने पति के इस व्यवहार से दु खी थी। बिहारी जब वर्षासन लेने के निमित्त आगरे गए, तो उन्होंने चौहानी रानी के कहने पर जयसिंह को प्रबोध कराने के लिए वहाँ से एक दोहा महाराज जयसिंह के पास भेजा, जिसमे लिखा था :

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ, आगे कौन हवाल।।

इस अन्योक्ति गर्भित उपदेश से मिर्जा जयसिंह को प्रबोध हुआ और उनका प्रेमोन्माद उतर गया। चौहानी रानी ने प्रसन्न होकर 'काली पहाड़ी' ग्राम बिहारी को प्रदान किया।[३६] रत्नाकर जी ने इस घटना का काल सं० १६६२ माना है।

इस छन्द के सम्बन्ध मे हरिचरणदास ने 'हरिप्रकाश टीका' में लिखा है कि "पहले बिहारी ने यही दोहा बनायो, पीछें महाराज जयसिंह कह्यो सतसई बनावौ।" अन्य प्राचीन टीकाकारो ने इस बात का कोई उल्लेख नही किया है। प्राचीन टीकाओ में इसका अभिधेयार्थ ही मिलता है। वृन्दराय (रत्नाकर जी के अनुसार कृष्ण लाल)

और मानसिंह विजैगछ ने अपनी-अपनी टीकाओ मे भी इस घटना का उल्लेख नही किया है। पं० हरिनारायण जी (जो किसी समय जयपुर राज्य के अफसर ड्योढी थे) के पत्र से जो विवरण रत्नाकर जी ने प्रस्तुत किया है, उसमे भी इस प्रणय-गाथा का कोई उल्लेख नही है। उक्त पत्र द्वारा यह तो ज्ञात होता है कि विहारीदास प्रथम इनकी (रामसिंह की) माता चौहानी जी की सरकार मे थे और फिर महाराजा के के भी कृपापात्र हो गए थे। रामसिंह जी ने काव्य विषयक वहुत सी वाते विहारी जी से आगरे मे सीखी थी।

'जयपुर का इतिहास' के लेखक श्री हनुमान शर्मा ने लिखा है कि "कहा जाता है कि महाराज से परिचय करने के लिए बिहारीदास जी ने 'नहिं परागु नहिं मधुर मधु' वाला दोहा महाराज के पास भेजा, तब उन्होने उनको आदरपूर्वक रख लिया।" (पृ० १४३)

बाबू राधाकृष्ण दास ने इस घटना के सम्बन्ध मे लिखा है कि "हमे इसमे विश्वास नही होता, क्योकि महाराज जयसिंह ऐसे स्त्रैण न थे, वह वडे गम्भीर, धीर और वीर थे।" जयसिंह के सङ्घर्षमय जीवन के साथ इस प्रकार की कल्पित प्रणय-कथा जोडकर उनके जैसे महान् राजनीतिक पुरुष के साथ न्याय नहीं किया जा सकता। मिर्जा राजा जयसिंह के महत्व को आंकते हुए यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि "मुगलशाही सेना के साथ रहकर मध्य एशिया मे स्थित बलख से लेकर पूर्व मे मुगेर तक साम्राज्य के हर एक भाग मे जयसिंह ने युद्ध किया था। शाहजहाँ के दीर्घकालीन शासनकाल मे कदाचित् ही ऐसा कोई वर्ष बीता था जब कि इस राजपूत राजा ने किसी युद्ध या चढाई मे भाग न लिया हो और अपनी मशहूर सेवाओ के पुरस्कार-स्वरूप उसे कोई न कोई पदोन्नति न मिली हो। रणभूमि मे प्राप्त विजयो से भी कही अधिक सफलताएँ उसे राजनीतिक क्षेत्र मे मिल चुकी थी। जहाँ कही भी कोई कठिन या चतुराईपूर्ण गूढ काम करना होता था वहाँ बादशाह, जयसिंह का मुंह ताकता था।"

विद्याभूषण प० रामनाथ जी द्वारा प्रेषित विवरण १५ के अनुसार जब बिहारी के दोहे के प्रभाव से महाराज जयसिंह नवोढा रानी के फदे से मुक्त होकर बाहर निकल आए तो चौहानी रानी को बडी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उनको बहुत कुछ पारितोषिक दिया और उस घटना का ज्यो का त्यो चित्र खिचवाकर अपने महल मे लगवा लिया। उस चित्र के निम्न भाग मे वाम पार्श्व पर १६ और दक्षिण पार्श्व पर ९२ के अंक हैं। इन दोनो अको को मिलाने से १६९२ होता है। अत यह अनुमान सगत प्रतीत होता है कि यह १६९२ उक्त घटना का संवत् है।[३७]

'बिहारी रत्नाकर' के प्राक्कथन में इस चित्र के सम्बन्ध मे रत्नाकर जी ने

लिखा है कि "उसमे (चित्र मे) उस समय का दृश्य दिखलाया गया है, जब बिहारी ने 'नहिं परागु नहिं मधुर मधु' दोहा लिखकर महाराज जयसिंह के पास भेजा था। आमेरगढ के विनायक पौरि तथा उसके सामने के प्रशस्त चबूतरे का दृश्य उसमे दिखाया गया है। बिहारी का चित्र उसमे दो जगह है। एक तो बिहारी के जाते समय का चित्र है, जिसके पीछे लाल ढाल वाला एक मिरदहा जो, बिहारी को बुलाने गया था, खडा है और सामने कोई कर्मचारी बिहारी का स्वागत कर रहा है। दूसरे स्थान पर कतिपय और कर्मचारियो के साथ बिहारी का बैठा हुआ चित्र है। इसमे बिहारी उक्त दोहा लिखकर एक वर्षवर (खोजे) को देते हुए दिखलाए गए हैं और वह वर्षवर वह दोहा ले जाकर किसी दासी को दे रहा है।" आगे रत्नाकर जी ने प्रचलित कथा से तालमेल बैठाने के लिए लिखा है—"इस चित्र के विषय मे जयपुर मे यह कहा जाता है जब बिहारी के दोहे के प्रभाव से राजा नवोढा रानी के प्रेमपाश से मुक्त होकर बाहर निकल आए और अपना काम-काज करने लगे तो चौहानी रानी ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि उस समय की घटना का ज्यो का त्यो चित्र बनाया जाय। बस, उसी आज्ञा के अनुसार उक्त चित्र तैयार किया गया। उसके नीचे के भाग में दोनो पार्श्वों पर दो-दो अक लिखे हुए हैं, अर्थात् वाम पार्श्व पर १६ तथा दक्षिण पार्श्व पर ६२। इन चारो अको को मिलाकर हम इसको विक्रम सं० १६६२ अनुमानित करते हैं।"[३८] बिहारी रत्नाकर मे उपलब्ध बिहारी का चित्र इसी विशाल चित्र की अनुकृति के आधार पर बनाया गया था। रत्नाकर जी ने इस घटना को स० १६६२ मे घटित होना अनुमानित किया है, किन्तु ऐतिहासिक तथ्यो से ज्ञात होता है कि उस समय जयसिंह आमेर मे उपस्थित ही नहीं थे। 'मआसिरूल उमरा' के अनुसार ८ वे वर्ष (सन् १६३४, वि० स० १६६१) बालाघाट की सूबेदारी (जो दौलताबाद और अहमदनगर आदि सरकारो मे विभक्त है) खानेजमा को मिली तो ये (जयसिंह) भी उनके साथ नियुक्त किए गए। उसी वर्ष एक हजारी मन्सब बढने से इनका मन्सब पाँच हजारी सवार का हो गया। इसके अनन्तर ये दरबार आए। ६ वे वर्ष (स० १६६२ वि०) खाने दौरा के साथ साहू भोसला को दड देने पर नियत हुए। १० वे वर्ण यह दरबार आए। दक्षिण मे इन्होंने अच्छा काम किया था, इसलिए बादशाह ने प्रसन्न होकर अच्छी खिलअत देकर अपने देश आमेर जाने की छुट्टी दी कि वहाँ कुछ दिन आराम करे।[३९]

ऊपर के विवरण से सिद्ध है कि जयसिंह स० १६६२ मे आमेर मे नही थे। सं० १६६३ मे वे अवकाश पाकर आमेर गए थे और एक वर्ष बाद ही उन्हे शुजा के साथ कधार जाना पडा था।

'शिवाजी' मे भी सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि "वे (जयसिंह) बारह

वर्ष की उम्र मे ही पितृहीन होकर मुगलों की सेना (सन् १६१६ ई०) मे भर्ती हो गए। उसके बाद जहाँगीर की अन्तिम अमलदारी और शाहजहाँ के सम्पूर्ण शासन का इतिहास इनकी कीर्ति से उज्वल है। इधर पश्चिम मे अफगानिस्तान के कधार से लेकर उधर पूरब को ओर मुँगेर और उत्तर मे आक्स् नदी के किनारे से दक्षिण मे बीजापुर तक सब स्थानो मे मुगल फौज को सग लेकर लडे थे और सभी जगह उन्होंने नाम कमाया था। वे राजनीतिक चाले चलने मे भी कुछ कम चालाक न थे। सब विपत्तिजनक और कठिन से कठिन कामो मे बादशाह, जयसिह के ऊपर भरोसा करते थे।"[४०]

जयसिह के प्रतापी और सघर्षरत जीवन के साथ मधुर, रसिकता से युक्त इस दोहे और घटना की कोई सगति नही दीखती। वास्तव मे इस दोहे (नहि परागु नही मधुर मधु) का भाव विहारी को सस्कृत और प्राकृत काव्य-परम्परा से मिला था। इस भाव के छन्द पूर्व और परवर्ती सस्कृत-काव्य मे विविध रूपो मे मिलते हैं। विकटनितम्बा, गोवर्धनाचार्य, पण्डितराज जगन्नाथ तथा बिहारी सभी 'गाहा सतसई' के इस भाव के छन्द से प्रभावित रहे हैं या परस्पर भावो का आदान-प्रदान किया है। 'गाहा सतसई' का छन्द इस प्रकार है

जाव ण कोसविकास पावइ ईसोस मालईकलिआ।
मअरन्दपाणलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ।। (५।४४)

अर्थात् 'जब तक मालती-कलिका का कोष कुछ बढ नही जाता, तब तक हे रसपान लोलुप भौरे, तुम मर्दन मात्र से ही सन्तोष कर रहे हो।'

'गाहा सतसई' का दूसरा छन्द यो है

अविहत्तसधिवन्ध पढम रसुब्भेअपाणलोहिल्लो।
उव्वेलिउ ण आणइ खण्डइ कलिआमुइ भमरो ।। (७।१३)

अर्थात् 'कली के प्रथम मकरन्द रस का लोभी भ्रमर उसका अविकसित सन्धि-बन्ध (मुँह का जोड) खण्डित कर रहा है, उसे विकसित होने देना वह नही चाहता।'

गोवर्धनाचार्य ने भी इसी भाव को आर्या मे लिखा है :

पिव मधुप ! वकुलकलिका दूरे रसनाग्रमात्रमाधाय।
अधरविलेपसमाप्ये मधुनि मुधा वदनमर्पयसि ।।३६७

अर्थात् 'हे मधुप ! दूर से जिह्वाग्र भाग मात्र रख कर बकुल कली का रसपान करो। अधर-सम्पर्क से ही समाप्त हो जाने योग्य (अल्प) मकरन्द पर व्यर्थ मुँह न लगाओ (यह नायिका अत्यन्त सुरत क्लेश को न सह सकेगी)।'

विकटनितवा का मुक्तक भी इसी प्रकार के भाव का आस्वादन कराता है। मुक्तक इस प्रकार है :

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।
मुग्धाम जातरजसं कलिकामकाले व्यर्थं कदथर्यसि किं नवमल्लिकाया ।।

अर्थात् 'हे भ्रमर ! अपने चपल मन को उपमर्दन (मसलना) सहने मे समर्थ फूलों वाली लताओ मे बहलाओ । नव मल्लिका की मुग्धा कली को जिसमे अभी पराग नही आया है, क्यो कष्ट दे रहे हो ?'

विहारी का उक्त छन्द भी इसी परम्परागत कथन की भित्ति पर आधारित है । इस आधार पर यह स्वत. सिद्ध है कि लोक-प्रचलित सतसई प्रणयन की प्रेरक कथा कपोल-कल्पित एव सारहीन है । यह हो सकता है कि अपने काव्य का प्रथम परिचय विहारी ने महाराज जयसिंह को इसी छन्द के माध्यम से दिया हो । वास्तव मे बिहारी ने पूर्ववर्ती रसिक काव्यकारो की कथन-परम्परा मे अपना भी कथन जोडा था । लोक-मानस प्रणय-कथाओ मे विशेष आस्वाद भी लेता है । राजा और रानी की प्रणय-केलि के प्रति उत्कण्ठा के कारण ही वह कथा प्रचलित हो गई और उसे हिन्दी के विद्वानो ने सत्य मान लिया जिसका कोई भी सामजस्य जयसिंह जैसे प्रतापी राजा के जीवन के साथ सम्भव नही है ।

बलख की घटना

'बिहारी सतसई' के अन्तिम तीन दोहो मे मिर्जा जयसिंह के पराक्रम पर कविवर बिहारीदास ने प्रकाश डाला है । जयसिंह ने औरगजेब के साथ बलख (मध्य एशिया) की चढाई मे भाग लिया था ।[४१] बिहारी ने जयसिंह द्वारा सेना को बलख से निकाल लाने की सराहना विशेष रूप से की है । इस घटना से सम्बन्धित बिहारी के तीन दोहे इस प्रकार हैं :

सामा सेन सयान की, सबै साहि कै साथ ।
बाहुबली जयसाहि जू, फते तिहारैं हाथ ।। (७१०)
यौं दल काढे बलक ते, तैं जयसिंह भुवाल ।
उदर अघासुर कै परैं, ज्यौं हरि गाइ गुवाल ।। (७११)
घर घर तुरकिनि हिंदुनी, देति असीस सराहि ।
पतिनु राखि चादर, चुरी तै राखी जयसाहि ।। (७१२)

छन्द ७१२ के सम्बन्ध मे 'बुन्देलखण्ड वैभव' मे श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी ने लिखा है कि इस दोहे का सम्बन्ध स० १७११ वाली दक्षिण की लडाई से है, तथा राय कृष्णदास ने लिखा है कि जयसिंह ने सं० १७११ (१६६५ ई०) मे दक्षिण मे युद्ध को रोककर शिवाजी और औरङ्गजेब के बीच जो सन्धि कराई थी, उस समय बिहारी दास ने यह दोहा कहा था । किन्तु यह दोनो विद्वानो का भ्रम है । वास्तव

मे यह दोहा भी बलख की घटना से सम्बन्धित है जैसा कि टीकाकार मानसिंह विजैगढ के अर्थ से ज्ञात होता है। टीकाकार ने लिखा है :

दल्ली (दिल्ली) तथा आगरे तथा आबेर के सिपाइन कै। घर घर प्रति। तुरकनी तथा हिंदुनी स्त्री जस वषानु कर कर आसीस देति हैं।...अहो राजा जयसिंधजु हम्हारे घनी तुम्ह वुलष बषारा की मुहम तै जीद ते राष हम्हारी चादर चुरी सोहाग तुम्ह दीया है।"[४२]

सतसई का रचना-काल :

रत्नाकर जी ने बलख की घटना के वर्णन के आधार पर सतसई का रचना-काल सं० १७०४ के जाडे की ऋतु माना है।[४३] किन्तु अब्दुर्रज्जाक लिखित 'मआसिरूल उमरा' मे जयसिंह का जो वृत्त मिलता है, उसके अनुसार मिर्जा राजा की पदवी पाने के बाद जयसिंह को सतत अनेक जिम्मेदारियाँ दी गईं, जिनका विवरण इस प्रकार है : "१४ वे वर्ष (सन् १६४० ई०, स० १६९७) मुरादबख्श के साथ काबुल मे नियुक्त हुए। १५वे वर्ष मऊ दुर्ग विजय और कधार मे नियुक्त हुए। १६ वे वर्ष देश चले गए। १६४४ ई० मे पुन दक्षिण गए और २० वे वर्ष लौटे। इसी वर्ष औरङ्गजेब के साथ बलख की चढाई पर गए। २२ वे वर्ष कधार की लडाई मे सम्मिलित हुए। २३ वे वर्ष दरबार मे आए और वर्ष के अत मे देश जाने का अवकाश लेकर चले और मार्ग मे कामा पहाडियो के विद्रोहियो को दंड देने के लिए नियुक्त हुए और २५ वे वर्ष अर्थात् १७०८ मे औरङ्गजेब के साथ कधार की चढाई मे हरावल के अध्यक्ष बनाए गए।"

इस विवरण के अनुसार सं० १७०६ के अन्त तथा स० १७०७ मे जयसिंह आमेर मे रहे और बलख के युद्ध का विशेष विवरण उसी समय वहाँ के लोगो को मिला होगा। इस आधार पर बिहारी द्वारा इसी समय सतसई को पूर्ण करने की सम्भावना युक्तिसगत है। स० १७०४ के जाडो मे सतसई पूरी करने को जो बात रत्नाकर जी ने कही है, वह शुद्ध नही है। वास्तव मे स० १७०७ मे ही सतसई की रचना पूर्ण हुई थी।

मृत्यु-काल :

जिस प्रकार बिहारी की जन्म-तिथि अज्ञात है, उसी भाँति मृत्यु-तिथि भी। जो तिथियाँ अब तक घोषित की गई हैं, उनकी प्रमाणिकता पर प्रारम्भ मे ही अविश्वास किया जा चुका है। बिहारी अन्त समय तक आमेर मे रहे अथवा जोधपुर में, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। अनेक भारतीय-कवियो की भाँति ही बिहारी ने भी अपने निजत्व को कृतित्व की गरिमा से ढँक दिया था।

सन्दर्भ-संकेत

(१) कविवर बिहारी, पृ० ३८२ (२) वही, पृ० ३४५ (३) वही, पृ० ३४६ (४) वही, पृ० ३४६ (५) बिहारी विहार, भूमिका पृ० ७ (६) भारतेन्दु, २० जनवरी सन् १८८६, पृ० १४६ (७) बिहारी विहार, भूमिका, पृ० ७ (८) विहारी दर्शन (लोकनाथ द्विवेदी शिलाकारी,) पृ० १५ (६) कृष्णदत्त कवि की 'बिहारी की सतसई', पृ० १६४ (१०) हरिहर निवास द्विवेदी द्वारा लिखित पुस्तक 'मध्यदेशीय भाषा ग्वालियरी' की भूमिका, पृ० १३ (११) मान-कुतूहल, पृ० ६१ (१२) मध्यदेशीय भाषा ग्वालियरी, पृ० १ (१३) वही, पृ० २६ (१४) सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० १५१ (१५) वही, पृ० १५२ (१६) ब्रजभाषा, पृ० २१-२२ (१७) रीतिकाव्य संग्रह, पृ० २८१ (१८) सरस्वती, अक्टूबर सन् १६२६, पृ० ४१६-२०, ४२२ (१६) नागरी प्रचारणी पत्रिका, जनवरी सन् १६१६ (२०) कविवर बिहारी, पृ० ३२१ (२१) वही, पृ० ३२२ (२२) सरस्वती, अक्टूबर १६२६, पृ० ४१६ (२३) भारतेन्दु, सन् १८८६ (२४) कविवर बिहारी पाद-टिप्पणी, पृ० ३५६ (२५) वही, पृ० ३५६ (२६) वही, पृ० ३२६, हिन्दी साहित्य का इतिहास (आ० रामचन्द्र शुक्ल) पृ० २५८ तथा हिन्दी काव्य मे शृगार-परम्परा और महाकवि बिहारी (ले० डा० गणपतिचन्द्र गुप्त), पृ० ४०१ (२७) देखिए, टीकाकार का वक्तव्य विहारी बोधिनी, अष्टम सस्करण स० २०१३, पृ० ४ (२८) कविवर बिहारी, पृ० —३३६ से ३४० (२६) महाकवि केशवदास, पृ० १० (३०) बुन्देलखण्ड का सक्षिप्त इतिहास, (ले० गोरे लाल तिवारी) पृ० १२६-१२७ (३१) वही, पृ० १३०

(३२) वृत्ति दई पुरुखानि की, देऊ बालनि आसु ।
मोहि आपनो जानि कै, गगा तट देउ बासु ॥

(३३) केशव और उनका साहित्य, पृ० ५३ (३४) महाकवि केशवदास, पृ० १४ (३५) कविवर बिहारी, पृ० ३२६ (३६) वही (३७) बिहारी रत्नाकर, प्राक्कथन, चतुर्थावृत्ति (स० २०००) पृ० ३२-३३ (३८) कविवर बिहारी, पृ० ३७६ (३६) मआसिरुल उमरा, अनु० ब्रजरत्नदास, प्रथम भाग, पृ० १५७ (४०) सर यदुनाथ सरकार : शिवाजी, पृ० १५४ (४१) मध्य एशिया का इतिहास, भाग २, पृ० १८६ (४२) बिहारी सतसई—टीका, मानसिंह विजैगच्छ (श्रीमती कमला संघी की प्रति) (४३) कविवर बिहारी, पृ० ३७८ ।

———

बिहारी सतसई-अध्ययन की कुछ नवीन दृष्टियां

● डा० भगीरथ मिश्र

'अनेक सवाद' भरी बिहारी-सतसई के अध्ययन की एक लम्बी परम्परा है। हिन्दी का यह ग्रथ सुदुर्लभ सौभाग्यशाली है जिसकी टीकाएँ और अनुवाद पहले ही सस्कृत और उर्दू मे भी हो चुके हैं। परन्तु टीका, व्याख्या और अनुवाद की प्रगाढ परम्परा होते हुए भी, यह कहा जा सकता है कि अध्ययन सीमित क्षेत्र मे ही होता रहा। आधुनिक शिक्षा-विकास के साथ-साथ साहित्य के अध्ययन के जो नवीन क्षेत्र उद्घाटित होते जा रहे हैं, उनमे भी हमारे प्राचीन काव्य, नूतन सम्भावनाओ से युक्त सिद्ध हो रहे है। ऐसा सिद्ध हो रहा है कि जो काव्य लोकप्रिय, स्मरणीय एवं युगान्तर स्थायी होता है, वह अपने अतर्गत इन नूतन सम्भावनाओ को भी छिपाए रहता है। हिन्दी-साहित्य के प्रसग मे यह बात दो अति प्रसिद्ध काव्यो, रामचरित मानस और बिहारी-सतसई के सम्बन्ध मे पूर्णतया सत्य है। रामचरित मानस जहाँ पहले धार्मिक और साहित्यिक महत्व का ग्रथ समझा जाता था, वही अब वह सास्कृतिक, सामाजिक एव राजनीतिक महत्व का ग्रथ सिद्ध हो रहा है। इसी प्रकार बिहारी सतसई जो केवल रमणीय काव्य की दृष्टि से पढी जाती रही है, अब वह सास्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एव ऐतिहासिक विशेषताओ से सम्पन्न ग्रथ स्पष्टत सिद्ध हो रही है। अत हिन्दी-काव्यो का इन नवीन दृष्टियो से अध्ययन अपेक्षित है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी काव्य के गौरव की पूर्ण प्रतिष्ठा के लिए प्रतिष्ठित गौरव वाले साहित्यो की परम्परा मे उनके ग्रंथो के साथ हिन्दी ग्रन्थो के तुलनात्मक अध्ययन की भी आवश्यकता है। इन परम्पराओ और तुलनाओ के बीच रख कर ही हम राष्ट्रभाषा हिन्दी के काव्य का समुचित मूल्याकन कर सकते हैं। ऐसे अध्ययन न केवल अधिक विश्वसनीय होते है, वरन् वे सत्कार्यों की रचना की प्रेरणा भी देते हैं।

लोक की सहज काव्य-प्रतिभा मुक्तक के रूप मे प्रकृतया प्रस्फुटित होती है। साथ ही यह काव्य सहज स्मरणीय होने के कारण अधिक प्रचलित एव स्थायी होता है। बडे-बडे प्रबन्ध काव्य मौखिक रूप मे उतने दीर्घजीवी नही होते जितने छोटे-छोटे धार्मिक भावना, इहत्व या जीवनानुभव से सयुक्त मुक्तक होते हैं। इसके अतिरिक्त मुक्तक जहाँ बहुमुखोच्चरित हो सहज प्रचार पाते हैं, वहाँ दीर्घकाय प्रबन्ध सामान्यतया कठिनाई से ही इस सौभाग्य को प्राप्त करते हैं।

कला की भी दृष्टि से मुक्तक-काव्य मे अभिव्यक्ति-भगिमा एव चमत्कार की विशेषता प्रबन्ध की अपेक्षा अधिक रहती है। मुक्तककार जहाँ एक-एक शब्द को सँभालकर प्रयुक्त करता है, एक-एक वर्ण को सजा कर रखता और उसकी मात्रा तोलकर लगाता है तथा इस प्रकार एक दृष्टिपात मे ही अपनी पूर्ण कला की चमत्कृति की चकाचौंध दिखा सकता है, वहाँ प्रबन्धकार को कथा-प्रवाह और चरित्र-चित्रण के प्रति अधिक जागरूक रहने के कारण कला के प्रति अधिक सजग होने का अथवा चमत्कार-प्रदर्शन का अवसर उतना नही मिलता। वरन् वहाँ कुतूहल और भावना की तीव्रता के कारण कला की सूक्ष्मता और जटिलता समझने का धैर्य भी पाठक को नही रहता।

मुक्तक काव्य की सुन्दर परम्परा के साथ ही समस्यापूर्ति काव्य का भी विकास हुआ। मुक्तक काव्य का कलागत उत्कर्ष अपने एक विशिष्ट रूप मे समस्यापूर्ति काव्य मे पाया जाता है जिसके अध्ययन की भी आवश्यकता है। मुक्तक का यह रूप सुभाषित, सूक्ति या चमत्कार काव्य के रूप मे आया है।

यह कहना भी अधिक संगत नहीं है कि सस्कृति, समाज एव इतिहास का समावेश केवल प्रबन्ध काव्य मे ही रहता है। बिहारी जैसे मुक्तककारो ने अपने दोहो मे इन तीनो की विशेषताएँ भर दी हैं। उदाहरणार्थ, सस्कृति चित्रण के कुछ दोहे निम्नाकित हैं :

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाय।
तरि ससार-पयोधि कौ, हरि-नावैं करि नाव ।।
जप माला छापैं तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु ।।
तजि तीरथ, हरि राधिका-तनदुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि निकुज-मग, पग-पग होतु प्रयागु ।।

उपर्युक्त दोहो मे वेश-भूषा एव अन्य बाह्याडम्बरो को छोड कर भक्ति भाव को ग्रहण करने का उपदेश है और उसमे भी सर्वोपरि है प्रेमा-भक्ति का संकेत। यह प्रेम भावना भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अग थी। इसी प्रकार बिहारी के दोहो मे सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सूक्तियाँ देखिए

बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोडियै, खोटे ग्रह जपु दानु ।।
अरे परेखो को करै, तुही बिलोकि बिचारि।
किहि नर किहि सर राखियै, खरैं बढैं परिपारि ।।
कहैं यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकही, पातक राजा रोग ।।

करि फुलेल कौ आचमन, मीठौ कहत सराहि ।
रे गन्धी, मति अंध तूँ, अतर दिखावत काहि ।।
रह्यौ न काहू काम कौ, सेत न कोऊ लेत ।
बाजू टूटे बाज कौ, साहब चारा देत ।।

उपर्युक्त दोहो मे सामाजिक नीति की सूक्तियाँ हैं, परतु वे सब समकालीन समाज के विशिष्ट प्रसंगो से भी सम्वध रखती हैं । इनमे मध्ययुगीन समाज की दशा के अनुरूप सूक्तियाँ दीख पडती हैं ।

इसी प्रकार इतिहास की घटनाओ और व्यक्तियो से सम्वन्धित दोहे भी बिहारी के अनेक हैं । यहाँ तक कि जयपुर के आस-पास तो लोगो का विश्वास है कि उनके अधिकाश दोहे किसी न किसी सामाजिक या ऐतिहासिक घटना से सम्वन्ध रखते हैं और उन्ही घटनाओ का प्रतिविम्व होने के कारण बिहारी के दोहो का दरबार में इतना आदर होता था । इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले बिहारी के कुछ प्रसिद्ध दोहे निम्नाकित हैं :

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल ।
अली कली ही सौ बिंध्यौ, आगे कौन हवाल ।।
स्वारथ सुकृतु न श्रम वृथा. देखु विहग विचारु ।
बाज पराये पानि परि, तू पच्छीन न मारु ।।
सामाँ सेन सयान की, सबै साहि कै साथ ।
बाहुबली जगसाहि जू, फते तिहारै हाथ ।।
यौ दल काढे बलक ते, तैं जयसिह भुवाल ।
उदर अघासुर कैं परै, ज्यौं हरि गाइ गुवाल ।।
घर-घर तुरुकिनि हिंदुनी, देति असीस सराहि ।
पतिनु राखि चादर, चुरी तैं राखी, जयसाहि ।।

उपर्युक्त उदाहरण इस बात को प्रमाणित करने के लिए दिए गए हैं कि बिहारी—जैसे मुक्तककारो की रचनाओ का अध्ययन सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक आदि दृष्टियो से भी किया जा सकता है ।

बिहारी के दोहो के इतने अधिक प्रभावशाली होने का एक प्रमुख कारण उनमे समाविष्ट नाटकीय तत्व हैं । ये तत्व विशेष रूप से उनके रचनात्मक मुक्तको मे मे देखे जा सकते हैं । मुगल-शासन काल मे नाटक-रचना को हतोत्साहित किया गया । यही कारण है कि उस समय के हिन्दी-साहित्य मे भी नाटक-रचना सुदुर्लभ है । ऐसी दशा मे कवियो की नाटकीय प्रतिभा प्रबन्ध-काव्यो, पदो एव मुक्तको मे प्रस्फुटित हुई । इन्ही काव्यो को पढ कर या लीला-रूप मे अभिनय कर जन सामान्य ने अपनी नाटकीय अभिरुचि की तुष्टि की । अत सूर, तुलसी, बिहारी, देव, पद्मा-

कर जैसे महाकवियो की रचनाओ मे नाटकीय तत्वो का समावेश देखने को मिलता है। इन रचनाओ की लोकप्रियता का भी यही एक प्रधान कारण था।

नाटकीय तत्व प्रबन्ध काव्यो में तो कथातत्व के साथ सहज ही समाविष्ट हो सकते हैं, परन्तु मुक्तक काव्यो मे समाविष्टीकरण कुछ कठिन कार्य है। फिर भी इस दिशा मे बिहारी को अद्वितीय सफलता मिली है। नाटकीय विशेषताओ को स्पष्ट करते हुए दशरूपककार आचार्य धनञ्जय ने लिखा है :

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूप दृश्यतयोच्यते।
रूपक तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम् ।।१।७

इससे स्पष्ट है कि अवस्थाओ की अनुकृति, रूप-योजना, चित्रात्मक वर्णन नाटक की विशेषता है। हम कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति का स्वरूप, क्रियाकलाप, भावानुभूति अथवा किसी घटना को प्रत्यक्ष कर सजीव रूप से सामने प्रस्तुत कर देना नाटकीय विशेषता है। ऐसी दशा मे हम निश्चयत कह सकते हैं कि बिहारी के मुक्तक नाटकीय विशेषताओ से सम्पन्न हैं। इन विशेषताओ से युक्त कुछ उदाहरण देखिए :

अग-अग नग जगमगत, दीपसिखा-सी देह।
दिया बढाये हूँ रहै, बडौ उज्यारो गेह।।
छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोवनु अग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता-रग।।
मिलि चन्दन वेन्दी रही, गोरैं मुँह न लखाइ।
ज्यौं-ज्यौं मद लाली चढै, त्यौं-त्यौं उघरति जाइ।।

उपर्युक्त प्रकार के बिहारी के अनेक दोहे हैं जिनमे रूप-लावण्य का चित्रण चटकीले ढङ्ग पर किया गया जिससे सामने सजीव लावण्य-मूर्ति अकित हो जाती है। इनसे भी अधिक निखरे हुए बिहारी के वे चित्र हैं जो क्रिया-कलाप को प्रत्यक्ष करते हैं। उदाहरणार्थ देखिए

चितई ललचौहैं चखनि, डटि घूँघट पट मौंह।
छल सौं चली छुवाइ कै, छिनकु छबीली छाँह।।
कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैंननु ही सब वात।।
मुँह धोवति एडी घसति, हसति अनगवति तीर।
घसति न इन्दीवर-नयनि कालिन्दी के नीर।।

कहने की आवश्यकता नही कि इन दोहो मे अभिनय की विशेषता है जो नाटक का गुण है। बिहारी इनके अभिनयात्मक चित्रो को भुलाया नही जा सकता है। साथ ही यह भी सत्य है कि बिहारी-सतसई ऐसे क्रियाकलापमय चित्रो से भरपूर है।

ये क्रियाकलाप प्राय विभाव या अनुभाव-रूप मे हैं। इनके साथ-साथ ऐसे भी दोहे हैं जिनमे भाव प्रत्यक्ष हुआ है। दो-एक उदाहरण देखे जा सकते हैं ·

छला छबीले लाल कौ, नवल नेह लहि नारि।
चूबति, चाहति, लाइ, उर पहिरति धरति उतारि॥
नासा मोरि, नचाइ जे, करी कका की सौह।
काँटे-सी कसकैं ति हिय, गडी कटीली भौह॥

इन दोहो मे प्रेम (रति) भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है जो नाटकीय विशेषता के साथ प्रत्यक्ष होती है। भाव के इस प्रकार के प्रत्यक्षीकरण के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इसके साथ ही साथ घटनाओ को सजीव रूप से स्पष्ट करने वाले दोहे भी विहारी-सतसई मे अनेक हैं, जैसे

कुजभवन तजि भवन कौं, चलियै नन्दकिसोर।
फूलति कली गुलाब की, चटकाहट चहुँ ओर॥
घर-घर तुरुकिनि हिदुनी, देति असीह सराहि।
पतिन राखि चादर, चुरी तै राखी, जयसाहि॥
अहे दहेडी जिनि धरै, जिनि तू लेहि उतारि।
नीकैं ही छीकै छुवै, ऐसै ई रहि नारि॥

इन समस्त उदाहरणो से यह बात प्रमाणित हो जाती है कि बिहारी के काव्य मे नाटकीय विशेषता विद्यमान है जो उसे इतना प्रभावशाली बनाती है।

मुक्तक काव्य मे इस नाटकीय विशेषता को लाने के लिए भाषा पर अधिकार चाहिए। और यह मानना पडेगा कि बिहारी को वह अधिकार विलक्षण रूप से प्राप्त है। उन्होंने इसी अधिकार से जगमगाती शब्द योजना एव उक्ति-वैचित्र्य का सम्पादन किया था। सतसई के सात सौ दोहो मे ही उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द-भण्डार विशाल है। ठेठ ग्रामीण शब्दो से लेकर उत्कृष्ट साहित्यिक शब्दावली का प्रयोग सतसई मे हुआ है और दोनो ही प्रकार की प्रयुक्त शब्दावली मे एक मोहक आभा और रमणीयता विद्यमान है।

बिहारी ने अपने शब्दो के बहुविध प्रयोग से वैचित्र्य सम्पादन किया है। कही तो वह पुनरुक्ति रूप मे है और कही अनेकार्थी शब्द प्रयोग रूप मे। कही विरोध द्वारा वैचित्र्य है, तो कही असगति का चमत्कार है। उदाहरणार्थ

सालति है नटसाल सी, क्यौ हूँ निकसति नाहि।
मनमथ नेजा नोक सी, खुभी-खुभी जिय माहि॥
हरि-हरि बरि-बरि उठति है, करि-करि थकी उपाइ।
वाकौ जुरु बलि बैद, जौ, तो रस जाइ तु जाइ॥

और ओपु कनीनिकनु, गनी धनी-सिरताज ।
मनी धनी के नेह की, बनी छनी पट लाज ।।
खेलन सिखये अलि भले, चतुर अहेरी मार ।
काननचारी नैन-मृग, नागर नरनु सिकार ।।

बिहारी के शब्द-प्रयोग के साथ-साथ शब्द-मैत्री, वर्ण-मैत्री, वर्णावृत्ति आदि के चमत्कार भी उनके दोहो मे एक चमक भर देते हैं और बहुत से लोग उनके काव्य पर इन्ही विशेषताओ के कारण लट्टू है। इसमें सन्देह नही कि ये विशेषताएँ सर्व प्रथम प्रभाव डालती हैं और यदि इस वर्ण-शब्द सौष्ठव के साथ-साथ अर्थगत विशेषता भी हुई, तो काव्य की उत्कृष्टता असदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाती है। जैसे .

सायक सम मायक नयन, रगे त्रिविध रग गात ।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ।।

उपर्युक्त दोहो मे 'यक' और 'जलजात' शब्दो के विविध प्रयोगो का चमत्कार है। अर्थ के अतिरिक्त शब्द का भी विलक्षण आकर्षण है परन्तु इससे भी कठिन 'ट' जैसे वर्णों की आवृत्ति का चमत्कार है। उसका भी एक उदाहरण प्रस्तुत है ·

लटकि-लटकि लटकतु चलतु, डटतु मुकट की छाँह ।
चटक भर्‌यौ नटु मिलि गयौ, अटक भटक वन माँह ।।

उपर्युक्त कोमला और परुपा वृत्तियो के साथ एक उपनागरिका का उदाहरण तो अत्यन्त प्रसिद्ध ही है .

रस सिगार मजनु किये, कजनु भजनु दैन ।
अजनु-रजनु हूँ बिना, खजनु गजनु नैन ।।

यह बिहारी के वर्णों एव शब्दो की योजना, विशिष्ट चमत्कार का साधन है। बिहारी के अनुकरण पर अब इसी प्रकार का चमत्कार दो-एक दोहो मे दिखा देना और बात है, पर हिन्दी काव्य के प्रारम्भिक सतसई-ग्रन्थो मे उपर्युक्त चमत्कार लाना बिहारी की मौलिकता है। शब्द-प्रयोग के प्रसंग मे बिहारी का शब्द-निर्माण भी बडा वैशिष्ट्य पूर्ण है। दोहे को साँचे मे ढालने के लिए तथा वर्णमैत्री और शब्द-सक्षेप की आवश्यकतावश बिहारी ने शब्दो के नवल रूपो की रचना की है। जैसे ·—झुलमुली, टलाटली, चितपटपट्टी, उडाइक, सायक (सायकाल का सक्षेप), कैवा (कै बाद का सक्षेप), रचौहैं (रचाने वाले), लगौहैं, चोरटी, गोरटी, बडबोली आदि ।

ऐसी बात नही कि बिहारी ने शब्दो को विकृत न किया हो। अर (अड), बर (बल), नटसाल, रोज (रोजा), अनही चितै, मोषु (मोक्ष), संक्रौनु (संक्रमण), ककै (करिकै), असोस (अशोष्य), मुत्तिय (मौक्तिक) आदि अनेक उदाहरण बिहारी

द्वारा प्रयुक्त विकृत शब्दो के दिये जा सकते हैं । अतः भाषा की दृष्टि से भी बिहारी की सतसई का अध्ययन बडा मनोरंजक है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'बिहारी-सतसई' का काव्यगत अध्ययन तो हुआ है, परन्तु इस ग्रन्थ का सामाजिक, ऐतिहासिक, सास्कृतिक तथा नाटकीय विशेषताओ एवं भाषा विश्लेषण की दृष्टियो से भी अध्ययन, किया जा सकता है । इस प्रकार के महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रंथो के अध्ययन काव्य के अतिरिक्त ज्ञान के अन्य क्षेत्रो मे हमारी जानकारी का विस्तार करने वाले होंगे ।

———

बिहारी सतसई में समाज चित्रण

• डा० रमाशंकर तिवारी

बिहारी की सतसई दीर्घकाल से सहृदय काव्यानुरागियो के निकट मनन एवं आस्वादन की वस्तु रही है। अपने समय तक विकसित होती हुई, शृङ्गार-धारा की सम्पूर्ण भँवरो को बिहारी ने अपने काव्य-सागर मे एक साथ प्रवाहित किया, जिसका मनोरम परिणाम यह हुआ है कि 'सतसई' मे अनेक सवाद भर गए हैं।[१] सस्कृत मे इन सवादो की अनेकता ही बिहारी की लोकप्रियता अथवा विख्याति का वास्तविक कारण रही है। यह तो हम नही कहते कि बिहारी ने इन 'सवादो' मे समाज-चित्रण का आस्वाद भी सचेष्ट भाव से सन्निविष्ट किया था, लेकिन यह भी सही है कवि अपनी रचनाओ मे जाने-अनजाने, ऐसी सामग्रियाँ समाविष्ट कर देता है जो तत्कालीन समाज की जीवन-धारा के भिन्न-भिन्न पार्श्वों पर, परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष हैं। जिनके आधार पर तत्कालीन समाज की अवस्था की एक झाकी प्रस्तुत की जा सकती है, विभिन्न शीर्षको मे वही प्रयास करना यहाँ अभीष्ट है।

नैतिक अवस्था :

बिहारी ने अपने युग की नैतिक अवस्था की ओर यह कहकर प्रचुर व्यंजना गर्भित संकेत किया है कि समय 'पलटने' से प्रकृति भी पलट जाती है तथा कपूत कलिकाल के प्रभाव के कारण सभी लोग अपनी चाल अथवा आचरण-मर्यादा का त्याग कर देते हैं। 'सतसई' काल के लोगो का नैतिक धरातल गिरा हुआ है। धन संग्रह के लोभ मे समाज के कुछ वर्ग बुरी तरह से अधिग्रस्त हैं। दुर्दशा सहन कर भी वे धन जोडने मे प्रवृत्त हैं, तथा सन्तोष न रखते हुए, कुमार्ग-सुमार्ग का ध्यान किए बिना, अर्थ-लिप्सा की तुष्टि मे निरत हैं। अर्थपरायणता के अति प्यासे की कृपणता बढ गई है।[२] समाज मे ऐसे भी कृपण गृह-स्वामी मौजूद हैं जो नवागता वधू को भीख देने का काम सौंप देते हैं—इस अभीष्ट से कि उसके हाथ छोटे हैं और अधिक अन्न इसके द्वारा खर्च न हो सकेगा। किन्तु कृपणो को छकाने वाले ऐसे मनचले व्यक्ति भी उपलब्ध हैं जो अपनी रूपलिप्सा की तृप्ति के निमित्त, आवश्यकता न होते हुए भी, भिखारी बन कर उस सुन्दरी से भीख लेने आते हैं।

झूठ बोलने का प्रचार अधिक है।[3] धर्म-परायण समझे जाने वाले पौराणिकों एव ज्योतिषियो का जीवन भी आचरण की दीनता से असम्पृक्त नही है। पुराण बाँचने वाले पडित दूसरो को तो परदारागमन से निवृत होने का उपदेश देते हैं, किन्तु स्वयं अन्य नारियो मे अनुरक्त हैं।[४] ज्योतिषियो की स्त्रियाँ धर्माधर्म

का ध्यान रखे बिना तथा विना यह बात स्मरण रखे कि उनकी शील-च्युति गणना से प्रकाश मे आ जाएगी, अन्य पुरुषो के गर्भ धारण कर लेती हैं।[५] वैद्य दूसरो को पुरुषत्व वर्द्धनार्थ पारे की भस्म देते हैं, लेकिन स्वयं नपुसकता का निवारण करने मे असमर्थ हैं।[६] देवर-भौजाई का सबध सर्वदा से अत्यत नाजुक रहा है। सतसई मे एक ओर ऐसी कुलागनाएँ हैं जो देवर के अनुचित प्रेम-प्रदर्शन के कारण लज्जा एव शील से सूखती जा रही है।[७] तो दूसरी ओर ऐसी मनचली भावजे भी हैं जो देवर मे अनुरक्ति रखती और प्रसन्न होती हैं।[८] सन और अरहर के खेत मे प्रेमी-प्रेमिका चुपके से मिलते हैं और सकेत स्थल नष्ट होने पर मानसिक सताप से ग्रस्त हो जाते हैं।[९] यद्यपि गाथा सतसई मे भी ऐसे प्रसग आए हैं जिनका अनुकरण बिहारी द्वारा किया गया कहा जा सकता है, तथापि बिहारी ने प्रकृत अवस्था का चित्रण किया है—ऐसा हमारा अनुमान है क्योकि आज भी ग्रामीण अचलो मे प्रेमाभिव्यक्तियाँ देखी और सुनी जाती है।

समाज मे अध विश्वास व्याप्त था। स्त्रियाँ माथे पर काजल का टीका इस लिए लगाती थी कि उन पर दूसरो की कुदृष्टि का प्रभाव न पडे।[१०] जादू-टोना मे व्यापक विश्वास था। चोरी का पता लगाने के लिए जल से भरी हुई मत्र की कटोरी (कविलनवी) चलाई जाती थी[११] गुडहर के फूल के विषय मे यह विश्वास था कि वह जिस घर मे पहुँच जाता है, उसमे कलह अवश्य होती है।[१२] साही नामक जानवर के काँटे के विषय मे आज भी लोकाचलो मे ऐसा ही विश्वास प्रचलित है। बाँई आँख का फडकना नारियो के लिये शुभ-सूचक समझा जाता था तथा मलार गाने से पानी बरसने की बात मे विश्वास किया जाता था।[१३] यदुनाथ सरकार ने अध विश्वासो के व्यापक प्रचलन का उल्लेख किया है। बिहारी शक्ति मानो एवं श्रीमानो के मर्यादाहीन आचरण की बात कहते है क्योकि तत्कालीन वातावरण (जलवायु) से बडे-छोटे सभी प्रभावित हो गए है।[१४] इटैलियन यात्री मैनूची ने प्रत्यक्ष अनुभव से, मुगल शासको के दुवृत्तो का जो वर्णन किया है, उससे बिहारी के इस सूत्रात्मक सकेत को अनुमोदक मिलता है।

धार्मिक अवस्था :

नैतिक अवस्था से मिलती-जुलती ही धार्मिक अवस्था सतसई के समाज मे चित्रित हुई है। धर्म अवनति-ग्रस्त हो चला है तथा सभी अपने-अपने मतो की श्रेष्ठता प्रतिपन्न करने मे व्यस्त हैं।[१५] निर्गुण और सगुण, दोनो प्रकार की उपासनाएँ जनता मे प्रचलित हैं।[१६] किन्तु धर्म की मूल भित्ति, सत्यानुराग एवं सत्याचरण मे लोग विमुख हो गए हैं, तथा भक्ति, के वाह्य प्रतीको, जपमाला, तप्तमुद्रा, तिलक इत्यादि से चिपके हुए हैं।[१७] आत्म प्रवचना के साथ धर्म के हिमायती लोक-प्रवचना

मे भी प्रवृत हो गए हैं। भगवान् के प्रति नैष्ठिक आत्म-समर्पण की भावना सर्वथा विलुप्त हो गई है। जिसका संकेत बिहारी की, श्री कृष्ण की शरण में अंगीकृत होने की निष्ठामयी प्रार्थनाओ में मिलता है। यहाँ हमारा विनम्र कथन यह है कि मैं बिहारी की भक्ति भावना की सच्चाई मे विश्वास करता हूँ कि (इन कवियो के) विलास जर्जर मन मे इतना नैतिक बल नही था कि वे भक्ति रस मे अनास्था प्रकट करते या उसका सैद्धान्तिक निषेध करते। फिर भी समाज मे ऐसे साधु-सन्त भी वर्तमान थे जो असीम शारीरिक यातनाओ को सहन कर आत्मा एव परमात्मा दोनो की तुष्टि का विधान करते थे। ग्रीष्म के जलते उत्ताप मे पचाग्नि सेवन करना एक ऐसा ही प्रयत्न था।[१८] मुसलमान फकीरो मे भी एक विशिष्ट समुदाय था जिसके अनुवर्ती, हिन्दुओ के औघडो तथा अलखियो की भाँति, कौडो की लडी तथा लोहे की साकडो से अपने शरीर कसे रहते थे,[१९] ये "मलिंग" कहलाते थे और एकात मे मौनावलम्बन पूर्वक ईश-ध्यान मे निमग्न रहते थे,[२०] जिससे जान पडता है कि लोग ज्योतिष की इन गणनाओं में आस्था रखते थे। तथापि, मिथ्या दभ एवं कपट धर्म की नीव को चाल रहे थे—ऐसा अनुमान करना सगत प्रतीत होता है।[२१]

लोकरीति

उपर्युक्त नैतिक तथा धार्मिक अवस्था की अनेक बाते, न्यूनाधिक रूप मे, जैसे वर्तमान समय मे भी मिलती हैं, वैसे ही "सतसई" मे चित्रित लोकरीति में हमें अपने ही समाज का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। बिहारी की नायिकाएँ गणेश चतुर्थी का व्रत मनाती हैं जिसमे दिन भर निर्जल एव निराहार रहकर रात्रि मे चन्द्र दर्शन करती और अर्घ्य देती हैं।[२२] भाद्र पक्ष के शुक्लपक्ष की हरितालिका तीज के मनाने तथा स्त्री-पुरुषो के देव दर्शन के निमित्त मंदिरो मे साथ-साथ जाने का भी उल्लेख प्राप्त है।[२३] नई दुलहिनो की मुंह दिखाई की प्रथा भी आजकल के ही समान थी।[२४] नव-बालाएँ शील-सकोच के कारण पतियो से प्रत्यक्ष साक्षात्कार नही कर सकती थी तथा नैहर मे तो प्रिय-दर्शन और भी कठिन हो जाता था।[२५] विवाह पाणि ग्रहण के द्वारा सम्पन्न होता था। बिहारी के वर-वधू हाथ पर हाथ रखने के साथ ही अपने हृदयो का अदान-प्रदान कर लेते हैं।[२६] "सतसई की नारियाँ महावर लगाने के पूर्व या ऐसे भी, एडियो को मलने के लिए झाँवे का प्रयोग करती हैं।[२७] आज भी ऐसी प्रथा ग्रामीण बालाओ मे पाई जाती है। विधवा होने पर हिन्दू स्त्रियो के चूडी और मुसलमान स्त्रियो के चादर उतारने का उल्लेख उपलब्ध होता है।[२८] पितृपक्ष मे पितरो को श्राद्ध देते समय कुछ अन्न कौवो के लिए निकाल दिया जाता है, यह प्रथा उस समय भी लोक प्रचलित थी।[२९] बिहारी ने यह भी

संकेत किया है कि ससुराल मे रहने वाले जामाता उपहास के आस्पद समझे जाते थे।[३०] सम्भव है, इसमे उनका अपना व्यक्तिगत अनुभव भी व्यजित हो।

आर्थिक एव राजनीतिक अवस्था :

आर्थिक एव राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने वाले संकेत अथवा स्पष्ट कथन भी "सतसई" मे उपलब्ध होते है। बिहारी ने मुगल नरपतियो तथा उनके अधीनस्थ नवाबो और सामन्तो के दोहरे शासन का उल्लेख किया है। जिससे प्रजा अत्यन्त कष्ट अनुभव कर रही थी।[३१] पातक और रोग के समान राजन्य शक्ति का प्रहार दुर्बल एव निर्धन जनता पर ही पडता था।[३२] सामन्तीय वर्ग की आर्थिक अवस्था सामान्यत अच्छी थी, किन्तु अधिकाश हिन्दू अधीशो की आर्थिक दशा पतनोन्मुख हो चली थी, बिहारी ने जो वसन्त के विलोम एवं "अपत कटीली डार" का कथन किया है, उससे इस अनुमान को प्रश्रय मिलता है कि राजपूत रजवाडो की स्थिति प्रशासनिक दृष्टि से ही नही, अपितु आर्थिक दृष्टि से बिगडती जा रही थी।[३३] गाँवो मे धोबी, गदहो पर बोझ ढोने वाले तथा कुम्हार बसते थे जो अत्यन्त गरीब थे,[३४] तथा सर्वथा अशिक्षित होने के कारण कला इत्यादि जीवन के सुसस्कृत व्यापारो से पूर्णत. अनभिज्ञ थे।[३५] ग्रामीण लोग चरखा चला कर अपनी दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति का प्रयास करते थे।[३६] जैसा कि नारी के परिधान-प्रसाधन वाले प्रसग मे हमने आगे दिखाया है, "सतसई" के समाज मे आर्थिक दृष्टि से चार स्पष्ट वर्ग अनुमानित किए जा सकते हैं। प्रथम वर्ग राजन्य समुदाय का प्रतीत होता है, द्वितीय सामन्तो का तथा तृतीय सामान्य मध्यवित्त वालो का वर्ग ज्ञात होता है। चतुर्थ श्रेणी मे वे लोग आते हैं जो नितान्त निर्धन तथा किसी प्रकार विकास की आदिम अवस्था मे कालयापन करते प्रतीत होते हैं। सामन्ती वर्गों के प्रासादो के साथ-साथ साधारण जन-समुदाय के टाटी और फूस से निर्मित घरो का उल्लेख भी बिहारी ने किया है, यद्यपि उनमे भी प्रेमान्तर की लीला चलती है।[३७] शासकीय एव सामन्ती वर्गों मे सुरा एव पान के ऊपर धन व्यय किया जाता था, जब कि सामान्य मध्यवर्गी लोग तम्बाकू पीने के साथ-साथ अपने प्रेमिकाओ के मन भी पी जाते थे—"मो मनु कहा न पी लियो, पियत तमाकू लाल।"

"सतसई" के अनेक दोहो से यह ज्ञात होता है कि साधारण ग्राम्य परिवारो के व्यक्ति आर्थिक कारणो मे परदेश जाते थे।[३८] लेकिन यात्रा एव सचार की सुरक्षा का कोई व्यवस्थित प्रबन्ध नही था। मार्ग मे ठगो और डाकुओ का आतक व्याप्त था जो यात्रियो को गड्ढे मे गिरा कर जान से मार डालते थे।[३९] "बैरागिया नाला जुलुम जोर" की कहानी अभी भी हमे स्मरण है।

गुण ग्राहकता :

यद्यपि बिहारी को प्रचुर राज-सम्मान प्राप्त था तथा उनके दोहो की यथेष्ट अभिशंसा भी हुई थी, तथापि वे अपने समाज की गुण ग्राहकता से सतुष्ट नही थे। जिस अर्थ लोभ एवं सामान्य सकुचित तथा विकृत मनोभावना की व्यजना अन्य उपर्युक्त प्रसगों मे हुई है उसके आलोक मे गुणियो एव कलावन्तो के समुचित सम्मान की आशा नही ही करनी चाहिए। बिहारी ने तत्कालीन "दानियो" की कृपणता एवं अगुणग्राहकता का उल्लेख भी किया है।[४०] गुणियो का निरादर तथा मूर्खों का समादर उस युग की मन स्थिति पर सकेतपूर्ण प्रकाश डालता है।[४१] जिनसे हानि पहुँचने की आशका होती थी, उन्ही का समाज मे सम्मान था और साधु स्वभाव सज्जनो की उपेक्षा होती थी।[४२] जान पडता है, कवियो एव कलाकारो का सम्मान भी पूर्वापेक्षा घट गया था। उन्हे परिवर्तित परिस्थितियो मे गँवारो के मध्य रहना पडता था जो अशिक्षित एव असस्कृत होने के कारण कला एव कविता का आस्वादन नही कर सकते थे तथा "नागरता" के नाम पर ताली बजा-बजा कर हँसते थे।[४३] बिहारी ने "बहार" के बीतने और गुलाब मे पत्रविहीन कँटीली डार के बच रहने का जो उल्लेख किया है, उससे यह अनुमान करना असगत नही होगा कि कलावन्तो के आदर एव सम्मान के दिन व्यतीत हो गए थे तथा उन्हे अब ऐसे ग्रामीणो का मुंह ताकना पडता था जो गुलाब के इत्र को हाथ मे लेकर सूंघते-सराहते थे और फिर मौन ग्रहण कर लेते थे।[४४] बिहारी ने इस विषय के एक से अधिक दोहो मे गँवारो और नागरो का साथ-साथ इस प्रकार उल्लेख किया है जिससे यह ध्वनि निकलती है कि नगरो और गाँवो मे पार्थक्य की खाई दिनानुदिन चौडी होती जा रही थी, तथा कुछ हालतो मे एव कला का मूल्य समझने पर भी, ग्रामीण इस लिए कलावन्तो की ओर से उदासीन थे अथवा उन्हे उपेक्षा के भाव से देखते थे कि वे गुणी लोग नगर-वासियो तथा शिष्ट सभ्रान्त समुदायो के हृदय विहीन, लोक-निरपेक्ष विलास-प्रमोद के प्रतीक अथवा प्रवक्ता थे।[४५] कुछ कलाकार ऐसे भी थे जो अपने सरंक्षको की स्थिति बिगडने पर भी उनसे लिपटे हुए थे—इस आशा मे कि समय चक्र मे परिवर्तन होगा और उनके सरक्षको की स्थिति सुधरेगी तथा उन्हे पुन सम्मान प्राप्त होगा –"ह्वै हैं फेरि बसंत ऋतु इन डारनु वे फूल ।।"

आमोद-प्रमोद एव विलास-सजावट :

बिहारी का युग, वैभव एव विलासिता का प्रकर्ष-काल है। इटैलियन यात्री मैनूची ने शाहजहाँ के दरबार का प्रत्यक्ष वर्णन करते हुए मुगल राजमहलो मे अनेक प्रौढा स्त्रियो एव योगबालाओ के रखे जाने का वर्णन किया है जिन्हे बादाम चश्म, सुखदेन, पियार, नौशाबह बानो (मदिरा पीने वाली), नसीमतन बानो (रजत वर्ण वाली),

माणिक बानो (माणिक्य के रग वाली) इत्यादि उपाधियो ने विभूषित किया जाता था। बिहारी ने सखियो, दूतियो एवं सपत्नियो तथा मदिरा पान इत्यादि विलास-व्यापारो का जो वर्णन किया है, उसमे—परम्परागत शृङ्गार-वर्णन के अनुकरण के अतिरिक्त उस युग का स्पष्ट प्रतिबिम्बन भी हुआ है। रगो की छटा और मोहक माधुरी के अनेक चित्र "सतसई" मे अकित हुए हैं जो तत्कालीन राजन्य एव सामन्ती वर्गों की रुचि पर आलोक डालते हैं। राजप्रासाद और धनिको के सदन फानूस के दीपक की ज्योति से जगमगाते रहते थे। उसी दृश्य से, अनेक स्त्रियो के बीच मे बैठी हुई अपनी नायिका की रूपकाति को फानूसो से घिरे हुए दीपक की प्रभा से तुलना देने को प्रेरणा बिहारी को मिली है।[४६] श्रीमानो के उद्यानो मे किसी ऊँचे स्थान से जल का झरना तथा विस्तृत प्रवाह गिराया जाता था जिसे "जलचादर" कहते थे। इस "जलचादर" के पृष्ठ मे कभी-कभी गवाक्ष बने होते थे जिनमे रात्रि के समय दीपको की पक्ति जला दी जाती थी। इस रमणीय दृश्य से प्रेरणा ग्रहण कर, बिहारी ने सहज-श्वेत पँच तोलिया साडी के भीतर से अपनी कोमलागी नायिका की तनद्युति के जगमगाने का मोहक चित्र अकित किया है।[४७] सभ्रान्त परिवारो मे चित्रशाला होती थी जिसमे नाना-प्रकार के चित्र टगे होते थे।[४८] उशीर की रावटियाँ बनी होती थी। जिसमे ग्रीष्म के उत्ताप से ऐश्वर्यवान् लोग शरण लेते थे।[४९] नल के सहारे फौव्वारो का जल ऊपर की ओर गिराया जाना भी धनिको का एक प्रमुख विलास-उपकरण था।[५०] नृत्य, सगीत, कवित्व, एवं सरस रतिरग का निर्बाध सेवन एक साथ चला करता था। बिहारी ने जो तन्त्रीनाद कवित्त रस इत्यादि में आपाद मस्तक एव आप्राण डुबकी लगाने की बात कही है, वह उनके युग की रसिक व्यसनशीलता पर ही प्रकाश डालती है।[५१] ऐसा विश्वास करना असगत नही होगा कि जिन प्रवीनराय चातुरी का हृदयावर्जक नृत्य बिहारी ने केशवदास के साथ लडकपन मे देखा था, उन नृत्य बालाओ की गति एव व्यवसाय मे उन्नति एव उपचय ही सम्पन्न हुआ था। सतसई की नायिकाएँ मुँह धोकर, गुडहर भिगोकर, घुटनो पर बैठ कर, मस्तक ऊँचा किए हुए, जिन सरोवरो मे स्नान करती हैं तथा एक मेडक भगी के साथ कुच आचर-बिचबाँहं किए तर पर, चली जाती हैं, वे क्रीडा तडाग उस युग की रगीनी एव वैभव-प्रियता की स्पष्ट व्यजना करते है।[५२] मलार गाना तथा झूला झूलना नारियो के मनोरजन के प्रमुख साधन थे। गुड्डी उडाना, गिरहबाज, कबूतर उडाना, बाजो की सहायता से पक्षियो का शिकार करना, हिरनो का आखेट करना तथा घोडो पर चढ कर चौगान खेलना—ये तत्कालीन मनोविनोद के प्रिय उपकरण थे।[५३] नटो के रस्सी पर दौडने तथा चकई को डोरी मे बाँध कर नचाने का भी उल्लेख "सतसई" मे हुआ है।[५४]

परिधान, प्रसाधन तथा अलंकार :

"सतसई" के शृंगार-लोक मे नवल नागरियो का ही साम्राज्य है। बिहारी की रसलिप्सु चेतना ने ग्रामीण "गदरानी गोरटियो" की ओर भी अपनी दृष्टि दौडाई है। अतएव नारी-वेशभूषा की प्रचुर सामग्रियाँ "सतसई" मे सकलित हो गई हैं।

उच्चवर्गीय नारियो की शृङ्गार-सज्जा के उपादान बहुमूल्य एवं नफासत से परिपूर्ण हैं। वे प्राय नीले रग की अत्यन्त महीन साडी पहनती हैं। जिसके झीने आवरण मे से उनके सुन्दर शरीर तथा अवयव मधुर, मादक झलमलाहट छोडते है।[५५] ये साडियाँ कभी-कभी वजन मे पाच तोले की होती हैं। (मैनूची ने लिखा है कि शाहजादियाँ और बेगमे झीना मलमल पसन्द करती थी तथा प्रत्येक वस्त्र की तौल एक औंस से अधिक नही होती थी। साडियो की कोर जरीदार होती है। "चिनौटिया चीर" अथवा चूनरी विशेष प्रिय परिधान है जिसमे पाच रगो की बुदकियाँ चित्रित रहती हैं।[५६] नवयौवनाएँ धूप-छाँही रग के वस्त्र पहनती है जो उनकी प्रभा के साथ मोहक स्पर्धा करता है।[५७] मध्य भाग मे सदली अगिया तथा कुसुम के रग मे रँगी हुई लाल कचुकी पहनी जाती है।[५८]

मुख पर सतसई की नारियाँ काजल का टीका लगाती हैं जो अलकरण की वस्तु होने के साथ की कुदृष्टि के प्रभाव का बाधक भी है। अरुण, पीत एवं श्याम रंगो की बेंदिया का अधिक प्रचलन है।[५९] हीरे के नग से जडी हुई बेदिया उच्च परिवारों मे प्रयुक्त होती थी।[६०] टिकुली पहनने की भी प्रथा थी।[६१] कभी-कभी लाल बिन्दी तथा केसर की पीली आढ साथ-साथ धारण की जाती थी।[६२] बिहारी ने चावल-हल्दी से बनाए अवलेपन या ऐपन की बिन्दयो तथा चन्दन के तिलक का भी उल्लेख किया है।[६३] सुसस्कृत ग्रामीण परिवारो मे अलकरण की यह प्रथा रही होगी। निम्न स्तर की नारियाँ सनई के फूल की वेदी तथा सुनहले पर वाले एक कोडे (स्वर्ण की टकपरो) की आड धारण करती थी।[६४] बिहारी ने "खौरि पनिच भृकुटी धनुषु" वाले अपने प्रसिद्ध दोहे मे ललाट पर लगे आडे तिलक के अतिरिक्त, नाक पर लगाए जाने वाले उस पतले, लम्बे तिलक का भी उल्लेख किया है जो भाले की आकृति का होता है। आज भी कुछ प्राचीन परिपाटी की शृङ्गार-प्रिय ग्रामीण नारियाँ नाक पर ऐसे लम्बे, नुकीले तिलक धारण करती देखी जाती हैं। ऐसे चित्रो से बिहारी के रगीन अन्वेक्षण की सचाई की विज्ञप्ति होती है। ललाट पर जडाऊ टीका तथा कान मे खुभी और तरौना अथच, नाक में नथ-वेसर, लवंग-फूल तथा सीकें पहने जाने का उल्लेख कतिपय दोहो मे प्राप्त होता है। उच्चवर्गीय नारियो की नथो एवं बेसरों में मोती झूलते रहते थे तथा सीकें नीलम से जडी होती

थी।[६४] ऐसी ही नीलमणि-जटित सीक की जगमगाहट से मुग्ध होकर, विहारी ने चंपक-कली पर भ्रमर को निशक रसपानार्थ बैठा दिया है।[६५] केश-रचना के अलंकरणो का कोई उल्लेख "सतसई" मे प्राप्त नही है।

वक्षोपदेश को सुशोभित करने वाला प्रमुख अलंकार हार प्रतीत होता है। विहारी ने माणिक्य की उरवशी, मोतियो के हार, मोतियो की लडी, पोत के हार, मौलसिरी की माला, गुजा या चिहुटिनी की माला तथा सीपियो के हार का उल्लेख किया है। मौक्तिक-माणिक्य का हार पहनने वाली नायिकाएँ, उच्च, सामती कक्षाओ का प्रतिनिधित्व करती है। गुजो तथा पोत का हार पहनने वाली नायिकाएँ ग्राम्य कुटुम्बो की ओर सकेत करती है जिनका आर्थिक धरातल ऊँचा नही है तथा जो प्रकृति के साहचर्य मे जीवन व्यतीत करती और फूलो एव लताओ के बीजो से अपने लिए अलकार रचना का विधान कर लेती हैं। सीपियो का हार निश्चय ही वे स्त्रियाँ पहनती थी जिनका आर्थिक-स्तर अत्यन्त आदिकालीन था, तथा जो इस समय भी पाषाणयुगीन सभ्यता के अचल मे लिपटी हुई थी। गले के अन्य आभूषणो का कोई उल्लेख "सतसई" मे उपलब्ध नही है। इसी प्रकार हाथ की कलाई के लिए भी अलं-करण का निर्देश नही है।

करागुलियो मे मुदरी अथवा छल्ला पहने जाने की चर्चा हुई है। स्त्रियाँ वैसी अँगूठी पहनती थी, जिसमे शीशा जडा होता था तथा उस आरसी मे वे अपनी तथा कभी-कभी अपने प्रिय-पात्र की प्रतिच्छाया देखा करती थी।[६६] तुलसी ने भी सीता की ऐसी अँगूठी का कथन किया है तथा मैनूची ने भी ऐसी मुदरियो की बात कही है। कटि मे किंकिनी और पैरो मे नूपुर, पायल तथा चूडा पहने जाने की प्रथा की विज्ञप्ति होती है। पाँव के अँगूठे मे अनवट तथा अंगुलियो के बिछिया पहनी जाती थी।

शृङ्गार प्रसाधनो मे काजल, अजन, चदन, मेहदी, तथा महावर का प्रयोग प्रचलित ज्ञात पडता है। धनिक परिवारो की रमणियाँ कपूर, अगराग, अरगजे तथा गुलाब जल का प्रयोग करती चित्रित हुई हैं। "सतसई" मे किसी निश्चित शृङ्गार-विधि का निदर्शन अथवा निरूपण नही हुआ है। इस विषय पर विस्तृत प्रकाश, मैंने सन् १९५५ ई० के फरवरी मास की अंवतिका मे .

पाइ महावरु दैन कौं नाइनि वैठी आइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एडी मीडति जाइ॥

दोहे के भयोन्मिलन के प्रसग मे डालने का प्रयत्न किया है। स्नानोपरान्त नायिका के "सहज शृङ्गार" का विहारी ने अवश्य यो चित्रण किया है।

वेदी भाल, तवोल मुह, सीस सिलसिले वार।
दृग आंजे, राजे खरी एई सहज सिंगार॥

भाल पर बेंदी, मुख मे तांबूल, तथा नेत्रो मे अजन यही तत्सामयिक शिष्ट, सम्भ्रान्त रमणियो का स्वाभाविक शृङ्गार प्रतीत होता है।

पुरुष रूप अथवा पुरुष वेशभूषा का कोई उल्लेख "सतसई" मे उपलब्ध नही है। जहाँ-तहाँ पीतांबरधारी, मुरलीमनोहर, श्यामल सलोने श्री कृष्ण का उल्लेख हुआ है तथा उनकी वेशभूषा उसी परम्परानुमोदित "क्लासिकल" साँचे में ढली हुई है। तथापि, इतना स्पष्ट है कि उच्चवर्गीय व्यक्ति अँगुली मे अँगूठी तथा कानो मे लाल मणि अथवा कुंडल पहनते थे।[६८]

संदर्भ-संकेत

(१) बिहारी रत्नाकर २३५, ४८१, ६६१ (२) वही, २६५ (३) ३४५ बिहारी रत्नाकर (४) बिहारी रत्नाकर, २६४। (५) वही, ५७५। (६) वही, ४७० (७) वही, ३४८। (८) वही, २४६, ६०२, ६५०। (९) वही, १३५। (१०) वही, १९। (११) वही, ३४८। (१२)वही ५६५। (१३)वही, १४६। (१४) वही, ७१, ६२०। (१५) वही, ५८१। (१६) वही, ४२८। (१७) वही, १४२। (१८) वही, ३५४। (१९) वही, २३०। (२०) वही, ६६०, ७०७। (२१) वही, ३६१, ३७१। (२२) वही, २६८, २६९। (२३) वही, ३१५, ४७०। (२४) वही, २८८। (२५) वही, २०७, ५२४। (२६) वही, २५९। (२७) वही, ४८३। (२८) वही, ७१२। (२९) वही, ४३४। (३०) वही, १७१। "रीति काव्य की भूमिका", पृष्ठ १८० (३१) वही ३५७, (३२) वही, ४३९। (३३) वही, ४३७। (३४) वही, ४३६, ४३९। (३५) वही, ४३८। (३६) वही, ६४७। (३७) वही, २६२, ५७१। (३८) वही, ७०३। (३९) वही, १७, ४७५। (४०) वही, ६८। (४१) वही, ४३५। (४२) वही, ३८०, २३६। (४३) वही, ४३७। (४४) वही, २५५, ६२४। (४५) वही, ४३८, २७६। (४६) वही, ६०३। (४७) वही, ३४०। (४८) वही, २६४। (४९) वही, २४४। (५०) वही, ३४१। (५१) वही, ६४। (५२) वही, ६६६, ६६३। (५३) वही, ३६३, ३७४, १७८, ४५, ३००। (५४) वही, ९४, १९३, २०६। (५५) वही, ४३८ (५६) वही, ४३०। (५७) वही, ६२६। (५८) वही, ७०। (५९) वही, १८९ १९०। (६०) वही, २७१। (६१) वही, १३७। (६२) वही, ४२। (६३) वही, ९३, १८०। (६४) वही ३०६, ६८५। (६५) वही, १४३। (६६) वही, ६११। (६७) वही, २०९। (६८) वही, १२३, १३६, ११३, १९९।

———

बिहारी की काव्य-कला

● डा० विजयेन्द्र स्नातक

रीति कालीन श्रृंगार रस के मुक्तक ग्रंथो मे 'बिहारी सतसई' से अधिक प्रचार और किसी ग्रंथ का नही हुआ। सात सौ दोहो के आधार पर इतनी ख्याति अर्जित करने वाला दूसरा कोई और कवि हिन्दी-साहित्य मे नही है। 'बिहारी सतसई' रीतिबद्ध लक्षण ग्रंथ नही है, किन्तु रीति परम्परा का ज्ञानार्जन करने के लिए जितना उपयोग इस ग्रन्थ का हुआ उतना रीति ग्रन्थो का भी नही हुआ। सतसई की हिन्दी, संस्कृत, फारसी, गुजराती, उर्दू आदि अनेक भाषाओ मे जितनी टीकाएँ लिखी गईं उतनी किसी और काव्य-ग्रन्थ की नही लिखी गईं। लगभग ५० से ऊपर टीकाओ का उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे मिलता है। इन टीकाओ का क्रम बिहारी के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। बिहारी के प्रथम टीकाकार कृष्ण कवि उनके पुत्र कहे जाते हैं। रत्नाकर जी ने कृष्ण कवि को बिहारी का पुत्र ही माना है। इस टीका मे रचनाकाल सवत् १७१९ दिया हुआ है, किन्तु शोध से इसका निर्माण काल १७८० के आस-पास स्थिर होता है। टीका लिखने के लिए टीकाकारो ने गद्य का माध्यम ही स्वीकृत नही किया वरन् पद्यात्मक टीकाएँ भी प्रचुर मात्रा मे लिखी गईं। दोहा, सवैया, कवित्त, कुडलिया आदि छंदो मे भी अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं।

बिहारी की शास्त्रीय दृष्टि :

बिहारी ने स्वतंत्र रूप से काव्य-शास्त्र संबंधी लक्षण ग्रन्थ नही लिखा, सतसई उनका लक्ष्य ग्रंथ है। इस लक्ष्य ग्रंथ के पर्यवेक्षण से ही उनकी शास्त्रीय दृष्टि का बोध हो सकता है। बिहारी ने रीति काव्यो का विधिवत् परिशीलन करके सतसई का निर्माण किया था, अत लक्ष्य ग्रन्थ होने पर भी कवि अन्तर्मन मे लक्षणो के अनुरूप दोहे रचने की भावना सतत बनी रही है। दूसरे शब्दो में, लक्षणो के अनुरूप लक्ष्य प्रस्तुत करना ही सतसई का ध्येय था। जिस काल मे बिहारी ने सतसई लिखी, वह संस्कृत और हिन्दी काव्य साहित्य मे लक्षण-ग्रन्थो के उत्कर्ष का समय था। हिन्दी में कृपाराम, केशव, चिन्तामणि आदि लक्षण ग्रन्थकार हो चुके थे और सस्कृत की विशाल परम्परा के रससिद्ध कवि और आचार्य, पडितराज जगन्नाथ भी उसी काल मे शास्त्र लिखने मे व्यस्त थे। पडितराज जगन्नाथ से बिहारी का व्यक्तिगत परिचय था; अत: उनसे भी रीति-बद्ध काव्य रचना की दिशा मे बिहारी ने अवश्य प्रेरणा

ग्रहण की होगी। बिहारी सतसई का समस्त रचना विधान रीतियुक्त न होकर आद्योपान्त रीतिबद्ध है। रीति की आत्मा ग्रंथ मे इस तरह अनुस्यूत है कि बिहारी को रीति कवियों मे प्रमुख स्थान मिला है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसी आधार पर बिहारी को प्रधान रीति कवियो मे रखा है। अलंकार सम्प्रदाय का प्रारम्भ सस्कृत साहित्य मे व्यापक अर्थ में हुआ, किन्तु परवर्ती काल में अलंकार का क्षेत्र सीमित होता गया और तथा ध्वनि विषयक तत्वो को अलकार से पृथक् करके देखा जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि अलकार का काव्य में वही स्थान रह गया, जो शरीर के भूषण ककण-कुडल आदि का है। इसी कारण मम्मट ने अलंकारो को काव्य का अनिवार्य तत्व नही माना। अलकारो की दृष्टि से बिहारी सतसई पर विचार करें तो यह निष्कर्ष सरलता से निकाला जा सकता है कि बिहारी जैसे काव्य शिल्पी कवि की कविता निरलकृत तो नही हो सकती, किन्तु अलकारो का वर्णन उनका प्रधान ध्येय न होने से उसमे सभी प्रमुख अलकारो का भेद-प्रभेद पूर्वक वर्णन नही मिलता। अलकारो के सबध मे उन्होंने अपना शास्त्रीय मत भी सतसई मे स्पष्ट व्यक्त किया है।

करत मलिन आछी छबिहिं, हरतु जु सहजु विकासु।
अगरागु अगनु लगै ज्यों आरसी उसासु॥

स्वाभाविक सौन्दर्य को ऊपर के लादे हुए प्रसाधनो से कभी-कभी गहरी ठेस पहुँचती है। आभूषण सहज भूषण न रहकर अरुचिकर भी प्रतीत होने लगते है

पहिरि न भूषन कनक के,कहि आवत इहिं हेत।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत॥

अलकार का प्रयोजन यही है कि वह प्रतीपमान अर्थ मे सौन्दर्य का आधान करे। यदि अलकार अर्थ-सौष्ठव या अर्थ-गौरव के सहायक नही तो उनकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है।

डीठि न परतु समान-दुति कनकु कनक से गात।
भूषन कर करकस लगत परसि पिछाने जात॥

उपर्युक्त दोहो मे कवि का आशय स्पष्ट है कि अलकारो को वही तक उपयोगी मानता है जहाँ तक वे प्रतीपमान् अर्थ (रस-ध्वनि मे) विशेषता सम्पादन करते हैं। अलकारवादियो के समान ऊपर से लादे हुए अलकार व्यर्थ हैं। अतः बिहारी का दृष्टिकोण अलंकार सम्प्रदाय के मेल मे नही वैठता और वे भी इस सम्प्रदाय से वाहर हो जाते हैं।

बिहारी को रसवादी स्वीकार करने वाले विद्वान सतसई के दोहो मे रस योजना पर विशेष बल देते हैं और सतसई के अंतिम दोहो मे 'करी बिहारी सतसई,

भरी अनेक सवाद' मे सवाद शब्द रसास्वादन अर्थ करके यह सिद्ध करना चाहते हैं कि विहारी रसास्वादन कराने के निमित्त ही सतसई की रचना मे लीन हुए थे। 'तत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति-रग' मे भी रस के प्राधान्य की ओर इंगित करके विहारी को रस-सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखने का प्रयत्न हुआ है। यदि रस ध्वनि को काव्य की आत्मा मान कर बिहारी के काव्य मे रस ध्वनि सघान ही मुख्य माना जाय तो ध्वनि के माध्यम से बिहारी रस-सम्प्रदाय का स्पर्श अवश्य करते हैं, परन्तु उनका इष्ट रस-सम्प्रदाय नही है। यदि उनके लक्ष्य की परीक्षा की जाय तो यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जायगा कि रस ध्वनि के उदाहरणो की भरमार होने पर भी वे रस सम्प्रदाय के पोषक होकर ध्वनि-सम्प्रदाय के ही अनुगामी हैं। रस-ध्वनि, अलकार-ध्वनि, और वस्तु-ध्वनि को ग्रहण करके बिहारी ने साकेतिक अर्थ को ही प्रधानता दी है, अत उनकी अभिरुचि ध्वनि सम्प्रदाय के प्रति ही है।

ध्वनि सम्प्रदाय के सिद्धातो की कसौटी पर सतसई के दोहो को कसने से यह बात सिद्ध हो जाती है कि बिहारी के शृङ्गार विषयक दोहो मे भी ध्वन्यात्मकता ही प्रधान है, अलंकार या रस प्रतिवादन उनका अन्तिम ध्येय नही है। ध्वनि के भेदो मे अविवक्षित वाच्य ध्वनि प्रथम है। अभिधेयार्थ जान लेने पर भी तात्पर्यानुपयुक्ति होने पर शब्द से सम्बन्ध जिस दूसरे अर्थ की प्रतीति होती है। वह लक्ष्यार्थ कहलाता है अभिधेयार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न प्रयोजन की प्रतीति व्यंजना वृत्ति के अधार पर होती है। जब व्यजना वृत्ति से प्रतीति होने वाले अर्थ मे सौन्दर्य का पर्यवसान हो उसे अविवक्षित वाच्य ध्वनि के नाम से अभिहित किया जाता है। इसके प्रमुख चार भेद हैं। विहारी ने अविवक्षित वाच्य ध्वनि के सभी भेदो के सुन्दर उदाहरण सतसई मे प्रस्तुत किए हैं

होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की, लाल।
ज्वालामुखी सी जरति लखि लगनि-अगनि की ज्वाल ॥

इस दोहे मे 'सुख का होमना' अपने वाच्यार्थ मे बाधित है। लक्ष्यार्थ हुआ कि नायिका,नायक के विरह मे दुखी रहती है, उसका सुख समाप्त हो गया है, व्यग्यार्थ हुआ कि नायिका के सुख उसी प्रकार भस्म हो गए हैं, जैसे अग्नि मे पडने पर आहुति भस्म हो जाती है। यहाँ शब्दगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इसके पचासो उदाहरण सतसई मे भरे पडे हैं। बिहारी का प्रसिद्ध दोहा

तत्रीनाद कवित्त-रस, सरस राग, रति-रग।
अनबूडे बूडे, तरे जे बूडे सब अंग ॥

ध्वनि का बहुत सुन्दर उदाहरण है। डूबना और तरना जलाशय आदि मे ही सम्भव है, कवित्त रस या तत्रीनाद जैसे अमूर्त्त तत्व मे नही। अतः इनका अर्थ

बाधित होकर रसास्वादन का बोध कराता है। वाच्यार्थ के अत्यंत तिरस्कृत होने वाली ध्वनि भी बिहारी में अत्यधिक मात्रा में दृष्टिगत होती है :

> वेसरि-मोती, धनि तुही, को बूझै कुल, जाति।
> पीबौ करि तिय-ओठ कौ रमु निधरक दिन राति।।

यहाँ मानवगत गुण, कर्म स्वभाव का अचेतन वस्तु (बेसरि मोती) के सम्बन्ध मे वर्णन करके अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

ध्वनि का दूसरा प्रमुख भेद है विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि। इसके रस, ध्वनि और अलकार, तीन भेद होते हैं। अलक्ष्य क्रम और असलक्ष्य क्रम भेद से इनके आधार भेदो का शास्त्रो मे परिगणन किया गया है। रस ध्वनि भेद का बिहारी ने पूर्ण चमत्कार के साथ प्रयोग किया है। ऊहात्मक शैली से नायिका की विरहजन्य दशा वर्णन मे यह ध्वनि अपने विविध भेद-प्रभेद सहित सतसई मे छाई हुई है। नायिका की कायिक चेष्टाओं से नायक को अर्थ बोध कराने वाला ध्वन्यात्मक दोहा देखिए :

> हरषि न बोली, लखि ललनु, निरखि अमिलु सग साथु।
> आँखिनु ही मैं हँसि, धर्‌यौ सीस हियै धरि हाथु।।

यहाँ नायिका की कायिक अभिव्यक्तियो से गूढ़ाशय का सकेत है, आँखो में हँस कर व्यक्त किया कि तुम मेरे हृदय मे आसीन हो, सिर पर हाथ रखने का अभिप्राय है कि मुझे तुम्हारी कामना शिरोधार्य है, किन्तु उसकी पूर्ति भाग्याधीन है। इन आगिक चेष्टाओ मे ध्वनि मूलक व्यंजना ही रस बोध कराती है। जब तक ध्वन्यात्मक आशय समझ मे नही आएगा, रस प्रतीति का प्रश्न ही नही उठता।

असलक्ष्यक्रम व्यग्य या रस ध्वनि की दृष्टि से भी बिहारी सतसई की सफलता असदिग्ध है। ध्वनि के जितने प्रौढ, परिष्कृत और प्राजल उदाहरण बिहारी के काव्य में हैं, हिन्दी के किसी अन्य कवि मे नही हैं। यथार्थ मे बिहारी का काव्य मूलत॰ ध्वनि काव्य ही है।

भाव पक्ष :

बिहारी के काव्य की आत्मा शृगार है। शृंगार की व्यजना ध्वनि के माध्यम से हुई है। शृंगार वर्णन के लिए सयोग तथा विप्रलंभ, दोनो पक्ष बिहारी ने स्वीकार किए हैं। सयोग पक्ष के चित्रण मे बिहारी ने अपनी मौलिक उद्-भावनाओं का प्रयोग कर संयोग को आनंद की परम स्थिति पर पहुँचा दिया है। कुछ उदाहरणो मे बिहारी का यह कौशल देखा जा सकता है :

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनु हँसै, दैन कहै, नटि जाइ।।

नायिका ने नायक से सम्भाषण करने के लोभ मे उसकी मुरली छिपा ली। नायक के पूछने पर शपथ खाकर मना करती है, किन्तु भौहो मे हँसती है। इस हँसी मे शरारत है, प्रणय-छल है। नायक समझ जाता है तो कहती है कि अच्छा, मैं वापस कर दूँगी, लेकिन फिर सहसा देने से मुकर जाती है बतरस का लोभ जो है। अभी इस बहाने बाते करनी है, प्रेमालाप करना है:

उडति गुडी लखि ललन की अगना अगना माँह।
बौरी लौ दौरी फिरति छुवति छबीली छाँह।।

नायिका को नायक की पतग की छाया-प्रतिबिम्ब से भी प्रेम है, उसी को जमीन पर छूकर प्रेम का आनन्द प्राप्त करती है। भाव विधान की यह निपुणता बिहारी मे ही है:

प्रीतम-दृग-मिचहत प्रिया, पानि-परस-सुखु पाइ।
जानि पिछानि अजान लौ, नैकु न होति जनाइ।।

आँख मिचौनी खेल मे नायक द्वारा आँखे बंद करने पर नायिका पहचानने से इन्कार करती है क्यो कि अभी उसे नायक के कर स्पर्श कर सुख जो मिल रहा है।

बिहारी वर्णन मे तो ऊहात्मक शैली के आतिशय्य ने बिहारी की विरह व्यजनाओ को कही-कही औचित्य की सीमा से बाहर कर दिया है। विरह सतप्त नायिका की दशा देखिए

इत आवति चलि, जाति उत चली, छ सातक हाथ।
चढी हिंडोरैं सैं रहै लगी उसासनु साथ।।
सीरैं जतननु सिसिर-रितु सहि-विरहिनि तन-तापु।
बसिबे को ग्रीषम-दिननु पर्‌यो परोसिनि पापु।।

बिहारी रीति-परम्परा का निर्वाह करने का ध्यान रखते थे, अतः परम्परा मे स्वीकृत गूढाशय को अन्तर्मन मे रख कर उसी पृष्ठभूमि पर दोहा रचा गया है। जब तक परम्परा का पूरा बोध न हो, दोहे का अर्थ अवगत नही हो सकता :

ढीठि परोसिनि ईठि ह्वै कहे जु गहे सयानु।
सबै सदेसे कहि कह्यौ मुसकाहट मैं मानु।।

धृष्ट पडोसिन के सन्देश को नायक तक पहुँचाने वाली नायिका का भाव वर्णन रीति परम्परा शृंखला को अवगत किए बिना नही समझा जा सकता। बिहारी पर रीति परम्परा का इतना गहरा प्रभाव था कि प्रेम की सहज व्यजना करने वाले

अकृत्रिम भावो को भी उन्होंने ऊहा और अतिशयोक्ति से आवृत्त कर दिया है, प्रेम का स्वाभाविक रूप ऊहात्मक शैली मे सामने नही आने पाया ।

शृगार रस के अतिरिक्त अन्य भावो को भी बिहारी ने अपनाया है । यो तो सचारी तथा सात्विक भावो की दृष्टि से प्राय सभी के उदाहरण मिल सकते हैं किन्तु यहाँ प्रमुख भावो की ओर ही सकेत करना पर्याप्त होगा ।

बिहारी भक्त नही थे । भक्ति भाव का उनके जीवन से रसात्मक तादात्म्य रहा हो, इसमे भी सन्देह है । किन्तु निर्वेद और शान्तरस का वर्णन सतसई मे उन्होंने किया है । भक्ति को सामान्य रूप मे ही बिहारी ने स्वीकार किया है, किसी दार्शनिक मतवाद या साम्प्रदायिक आधार पर ग्रहण नही किया । बिहारी जैसे सासारिक कवि के काव्य को साम्प्रदायिक दृष्टि से किसी मतवाद में बाँधना कवि के साथ अन्याय करना है । बिहारी तत्वज्ञानी या दार्शनिक न होने पर भी तत्वज्ञान की बात कर सकते है । उसी तत्व ज्ञान मे निर्वेद समाया रहता है

भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ वार ।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तै भज्यौ, गँवार ।।

वैराग्य भावना का द्योतक, स्त्री-रूप के आकर्षण से दूर हटाने वाला बिहारी का प्रसिद्ध दोहा है

या भव-पारावार कौं उलँघि पार को जाइ ।
तिय-छवि-छायाग्राहिनी ग्रहै बीचही आइ ।।

बिहारी की अन्योक्तियो और सूक्तियो मे जीवन के अनुभूत सत्यो का बडी सजीव भाषा में वर्णन हुआ है । कवि ने अन्योक्ति के व्याज से कृपण, मूर्ख, अविवेकी, स्वार्थी, कपटी और दम्भी व्यक्तियो को प्रबोधा है तो दूसरी ओर विद्वान, धैर्यशील, चतुर प्रेमी और दुर्भाग्य पीडित व्यक्तियो को समझा कर शात रहने का उपदेश दिया है । बिहारी की अन्योक्तियाँ हिन्दी साहित्य मे सबसे अधिक टकसाली रही हैं । उनकी मार्मिकता काव्यत्व के कारण बढ गई है, वे भाव व्यजक होने के साथ गहरा प्रभाव उत्पन्न करने मे समर्थ हैं ।

बिहारी की भाषा :

बिहारी ने रमणीय अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त भाषा का प्रयोग करके रीति कालीन कवियो मे भाषा विषयक व्यवस्था का सूत्रपात किया था । उनसे पहले किसी कवि की भाषा मे ऐसा परिमार्जन दृष्टिगत नही होता । कारण यह है कि पहले के कवि एक ही शब्द को एक ही विभक्ति मे अनेक रूपो मे लिखने मे कोई दोष नही मानते थे । अन्त्यानुप्रास के लिए शब्द को यथारुचि ह्रस्व या दीर्घ कर लेना तो जैसे निर्विरोध मान लिया गया था । बिहारी ने सबसे पहले शब्दो की

एक रूपता और प्रांजलता पर ध्यान दिया। इसके फलस्वरूप परवर्ती कवियों की भाषा मे परिष्कार का मार्ग प्रशस्त हो सका।

विहारी सतसई की भाषा व्रज है। व्रजभाषा का काव्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है। व्रज प्रदेश के अतिरिक्त, राजपूताना, बुन्देलखड, अवध, मध्य भारत, बिहार, गुजरात और महाराष्ट्र तक इस भाषा का काव्यभाषा के रूप मे प्रचार था। व्रजभाषा मे पाडित्य प्राप्त करने के लिए व्रज मे निवास आवश्यक नही था। बिहारी का जन्म ग्वालियर मे हुआ, अत बुन्देलखडी भाषा-के जन्मजात सस्कार उनके पास थे। यौवन मथुरा मे व्यतीत हुआ। फलत व्रजभाषा से साक्षात् सबध होने के कारण उनका ध्यान काव्य रचना करते समय भाषा की मूल प्रकृति की ओर बना रहा और वे उन त्रुटियो से बचे रहे जो अवध या बुन्देलखड के कवि प्राय॰ करते थे। शुद्ध व्रजभाषा का प्रयोग करने वाले बहुत कम कवि हुए है। बिहारी की भाषा को हम अपेक्षाकृत शुद्ध व्रजभाषा कह सकते हैं—साहित्यिक व्रजभाषा का रूप आपकी ही भाषा मे सबसे पहले इतने निखार को प्राप्त हुआ। आपके बाद घनानन्द और पद्माकर ने उसे और अधिक परिष्कृत किया। विहारी की भाषा मे बुन्देलखडी और पूर्वी का प्रभाव है, घनानद पूर्वी प्रभाव से मुक्त है। बिहारी ने पूर्वी के प्रयोग कही तुक के आग्रह से और कही प्रयोग बाहुल्य के कारण स्वीकार किए है किन्तु बुन्देली के प्रयोग तो सहज रूप मे शैशव के अभ्यास के कारण आए है। संग या साथ के लिए 'स्यौ' लखबी, करबी, पायबी आदि अनेक शब्द हैं।

विहारी की भाषा के शब्दकोश का आनुपातिक विवरण तैयार किया जाय तो सबसे अधिक सख्या संस्कृत के तत्सम परिनिष्ठित शब्दो की होगी। बिहारी समास पद्धति मे सस्कृत पदावली के कारण ही सफल हुए है। सस्कृत के अतिरिक्त अरबी-फारसी के इजाफा, ताफता, बिलनबी, कुतबनुमा, रोज़ इत्यादि शब्दो का प्रयोग मिलता है।

बिहारी ने भाषा को प्रवाहपूर्ण तथा प्रेषणीय बनाने के लिए लोकोक्ति एवं मुहावरो का भी प्रयोग किया है। एक ही दोहे मे मुहावरो की बंदिश देखिए :

मूड चढाऐंऊ रहै पर्‌यौ पीठि कच-भारु।
रहै गरै परि, राखिवौ तऊ हियै पर हारू॥

चलते हुए मुहावरो का प्रयोग द्रष्टव्य है

खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।
आक-कलीन रली करै अली, अली,जिय जानि॥
कहि पठई जिय भावती पिय आवन की बात।
फूली आँगन मे फिरै आँगन आँग समात॥

भाषा की रमणीयता का बिहारी ने अत्यधिक ध्यान रखा है। माधुर्य गुण के अनुरूप वृत्तियो का विन्यास, शब्दो का चयन, अनुप्रास का विधान, बिहारी सतसई की विशेषता है। शब्दो की विकृति से भी बिहारी ने अर्थ की रमणीयता पर आघात नही आने दिया है। शब्द सौन्दर्य अपनी सीमाओ मे रहता हुआ अर्थ सौन्दर्य को दीप्त करे तभी प्रयोग की सफलता समझी जाती है। एक दोहा देखिए .

रनित भृङ्ग-घंटावली, झरित दान मधु नीरु।
मन्द मन्द आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज-समीरु ।।

वायु के सचरित होने की ध्वनि कुजर के आगमन के समान प्रतीत हो रही है। दूसरा उदाहरण है :

रस-सिंगार-मजनु किए, कजनु भजनु दैन।
अजनु रजनु हू बिना खजनु गजनु नैन ।।

माधुर्य की प्रतीति प्रत्येक शब्द से पृथक्-पृथक् भी होती है और समूचे अर्थ मे भी रमणीयता भरी हुई है। वर्णों का यथोचित प्रयोग करने मे बिहारी सिद्ध-हस्त हैं

झीनै पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिन्ध मे लसति सपल्लव डार ।।

भाषा के प्रसाधन के लिए यमक, अनुप्रास, वीप्सा आदि शब्दालकारो का कविगण प्रयोग करते हैं। शब्दालंकार केवल शब्दो के चमत्कार के लिए ही नही— अर्थ की रमणीयता के लिए भी होते हैं, यह बिहारी के काव्य से विदित होता है। पद्माकर आदि ने तो अनुप्रास के मोह मे पडकर काव्य की हानि तक कर ली है। किन्तु बिहारी इस दोष से सर्वथा दूर रहे है—अनुप्रास का उदाहरण देखिए .

नभ-लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन।
रति पाली, आली, अनत, आए बनमाली न ।।

अनुप्रास के लिए एक साथ छह शब्दो का आडम्बर होने पर भी नायिका की विरह वेदना की विवृति मे कोई बाधा नही पहुँचती। यमक का उदाहरण देखिए :

तो पर वारौ उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी ह्वै उरबसी-समान ।।

बिहारी ने शब्दो को तोडा-मरोडा अवश्य है, किन्तु छन्दानुरोध से या व्रजभाषा की सहज प्रकृति के अनुरोध से ऐसा किया है। स्मर के लिए समर, ज्यो-ज्यो के लिए जज्यो और त्यो-त्यो के लिए तत्यो, कै कै के स्थान पर 'क कै' आदि।

प्रयोग मिलते हैं जो उचित नही हैं किन्तु सात सौ दोहो मे दस-पाँच शब्दो के कारण उनके भाषा-प्रयोग पर दोषारोपण नहीं किया जा सकता ।

बिहारी ने समास-पद्धति को स्वीकार करके ब्रजभाषा को जैसा परिष्कृत रूप दिया वह व्याकरण की दृष्टि से सुगठित, मुहावरो के प्रयोग से प्रेषणीय और समर्थ पदावली के समन्वय से शोभन बन पडा है । भाषा पर सच्चा अधिकार रखने वाला कवि ही ऐसी प्रौढ़- प्राजल भाषा का प्रयोग कर सकता है ।

बिहारी के काव्य और कृतित्व पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि बिहारी नागरिकता और नागरिक जीवन के प्रबल समर्थक थे । उनके काव्य मे आद्योपान्त नागरिक भावनाओ, कामनाओ और लालसाओ का वर्णन है । उनकी मान्यता के गुणो का विकास सदा नागरिको मे ही होता है अपनी अन्योक्तियो मे इस बात का उन्होने विविध रूप मे सकेत किया है । इसका एक कारण तो यह है कि उनका अधिकाश जीवन राजा-महाराजाओ के निकट सम्पर्क मे व्यतीत हुआ था । वे चाहते थे कि समाज मे असंस्कृत या ग्राम्य व्यक्ति न रहे । उन्होंने बार-बार कहा है कि अपने वर्ग मे ही रहना चाहिए और अपने वर्ग का अभ्युत्थान करना चाहिए । सम्पत्तिशाली व्यक्ति यदि कृपण हो तो वह नागरिकता से शून्य है और उससे सम्बन्ध न रखना ही ठीक है ।

सतसई रचना में बिहारी का उद्देश्य कवि-शिक्षक बनना नही था । शृगार-भावना को काव्य के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने की अभिलाषा से उन्होंने सतसई का प्रणयन किया और उसमे सफलता पाई । शास्त्रीय परम्परा और मुक्तक परम्परा का सुन्दर समन्वय सतसई मे हुआ है । व्यंग्य, अलंकार, नायिका भेद, नखशिख, षट्ऋतु वर्णन आदि सभी विषयो को स्वतंत्र रूप से बिहारी ने सतसई मे स्थान दिया, किंतु लक्षण ग्रंथ लिखने के पचडे मे वे नही पडे । लक्ष्य ग्रथ के रूप मे सतसई का निर्माण किया गया, किन्तु उसका प्रचार लक्षण ग्रंथो एवं पाठ्य ग्रंथो से भी कही अधिक हुआ । टीकाकारो ने तो बिहारी को शृगार का अधिष्ठाता ही बना दिया है ।

सतसई लिखने की परम्परा को हिन्दी मे बिहारी ने बद्धमूल किया । रसिक और कविगण सतसई को आराध्य ग्रथ मानकर इसका अनुसरण और अनुकरण करने लगे । अनेक कवियो के लिये तो अनजाने ही बिहारी सतसई उपजीव्य ग्रथ बनकर ग्राह्य हुई । कुछ कवियो ने तो बिहारी के भाव और भाषा तक पर हाथ साफ किया और कवि-कीर्ति प्राप्त करनी चाही । मुक्तक काव्य के बिहारी चकवर्ती सम्राट बने । मुक्तक रचना मे जितनी विशेषताएँ हैं वे सब बिहारी सतसई मे उपलब्ध होती हैं ।

यही कारण है कि बिहारी के आगे किसी अन्य कवि का मुक्तक काव्य जँचता नही हिन्दी मुक्तक रचना में बिहारी का समास कौशल मूर्धन्य पर है।

हिन्दी रीति परम्परा मे बिहारी ध्वनि सम्प्रदाय के समर्थको मे प्रमुख हैं। तुलसी के रामचरित मानस के बाद सतसई ही अपनी रसात्मकता, कलात्मकता, लाक्षणिकता और वचन-विदग्धता के कारण रसिकों का सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट करने मे समर्थ हुई। बिहारी अपने युग मे रीति-शृंगार के क्षेत्र मे प्रवर्तक के रूप मे अवतरित हुए थे। उन्होंने ध्वनि काव्य को स्वीकार कर रस और अलकार का पूर्ण निर्वाह करते हुए शृगार को अत्यन्त परिष्कृत भूमि पर अवस्थित किया और रीतिबद्ध काव्य के कवियो को आचार्यों के समान गौरवपूर्ण स्थान दिलाया।

बिहारी के काव्य पर चाहे ध्वनि काव्य की दृष्टि से विचार करे, चाहे रस परिपाक की दृष्टि से उसे परखे, चाहे उनकी अलकार-योजना को ले, चाहे नायिका-भेद या नखशिख पर दृष्टिपात करे और चाहे अन्योक्ति-सूक्ति का अवगाहन करे, बिहारी का काव्य सभी दृष्टियो से अनुपम प्रतीत होता है। बिहारी प्रतिभाशाली कवि थे, परन्तु उन्होंने प्रतिभा को काव्य रचना का एक मात्र कारण नही बनाया था। काव्याभ्यास के बाद ही उन्होंने कविता रचने की ओर ध्यान दिया था। इसलिए उनके काव्य मे शक्ति और निपुणता का चरम विकास सम्भव हुआ।

बिहारी सतसई में काव्य रूढ़ियां एवं प्रयोग वैचित्र्य

● योगेन्द्र सिंह

भारतीय काव्य के अन्तर्गत काव्य-रूढियो का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मुक्तको से रहा है। एक श्लोकबद्ध मुक्तक, विशिष्ट अलकारो, नायक-नायिका भेदो, हाव-भाव चेष्टाओ, कथन वक्रताओ एव विशिष्ट कथात्मक सन्दर्भों से पूर्ण सहृदयो मे चमत्कृति एवं विस्तृति का भाव उत्पन्न करते रहे हैं। मुक्तको के रचना स्रोत चाहे जो हो, किन्तु इतना स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास के मध्यकालीन सामन्ती वातावरण मे रसज्ञता एव चमत्कृति को अधिक प्रश्रय मिलने के कारण एक निश्चित अवधि मे समाप्त हो जाने वाली छोटी-छोटी रचनाओ, कौतूहल मिश्रित छन्दो, गेय पदावलियो, सुभाषितो एव सूक्तियो और व्यग्य परिहास पूर्ण काव्यो को अधिक महत्व मिला था। इस सन्दर्भ मे आने वाले सम्पूर्ण रचना रूपो की प्रकृति मुक्तक के ठीक अनुरूप मिलती है। इस परम्परा मे काव्य-शास्त्रीय परम्पराओ एवं तत्सम्बन्धित प्रयोग वैचित्र्यो के प्रयोग की प्रवृति सर्वत्र दिखाई देती है। अलकार एव भाव वैचित्र्य तो इनके प्रधान साधक ही रहे हैं। वक्र गर्भिता एव घननशीलता इनकी आत्मा से सम्बद्ध थी। इस प्रकार आगे चलकर सामान्य परम्पराओ एव रूढियो मे भी प्रयोग वैचित्र्य परिलक्षित होने लगा। धीरे-धीरे मुक्तक-काव्य की परम्परा के विकास के साथ-साथ एक ही काव्य प्रौढि अनेक अर्थ भगिमाओ को स्पष्ट करने लगी। यह अर्थ व्यजना को प्रक्रिया संस्कृत प्राकृत, अपभ्र श एव हिन्दी साहित्य मे अनवरत रूप मे चलती रही। बिहारी को भी यह इसी परम्परा मे प्राप्त हुई है। इन रूढियो के समुचित उपयोग की प्रवृत्ति हिन्दी के मुक्तककारो मे सबसे अधिक बिहारी मे ही दिखाई पडती है। सतसई के भक्ति, गीति, राजनीतिक, आश्रयण विषयक कतिपय दोहो को छोडकर अधिकाशत. इन्ही रूढवक्रताओ से गर्भित है। इसके मूल मे निहित चमत्कार वक्रता के नियोजन मे काव्य रूढियो का बहुत बडा हाथ है। ये रूढियाँ कवि की कलात्मक अभिरुचि से अनिवार्य रूप से सम्बद्ध उसके ऊहात्मक एवं वैचित्र्य पूर्ण रचना पद्धति की ओर सकेत करती है। इस दृष्टि से, बिहारी हिन्दी साहित्य के सबसे अधिक प्रौढ कवि ठहरते हैं।

सम्पूर्ण रूप से सतसई मे प्रयुक्त काव्य-रुढियाँ ५ भागो मे विभक्त की जा सकती है :

१—काव्य शास्त्रीय रूढियाँ।

२—प्रसगात्मक काव्य-रूढियाँ।

३—शब्द प्रौढ़ि ।

४—कथन सम्बन्धी रूढियाँ ।

५—गूढोक्तियाँ ।

बिहारी के दोहो का मूलाधार वस्तुत काव्य-शास्त्रीय रूढियाँ ही हैं। इनसे तात्पर्य काव्य-शास्त्रीय परम्परा मे स्वीकृत ध्वनि व्यापार के लिये प्रयुक्त पारिभाषिक नामावलियो,से है,जिनका प्रयोग सचेष्ट भाव से कवि अपने काव्य मे करता है। सतसई मे प्रयुक्त होने वाली एतद् सम्बन्धी रूढियो का सम्बन्ध निम्न विषयो से हैं·

(अ) नायक-नायिका भेद ।

(आ) काव्यरस, हाव, भाव, एव अन्य आगिक चेष्टाओ के प्रयोग ।

(इ) अलकार विधान की सचेष्टता ।

(ई) कवि विश्वासों का प्रयोग ।

सतसई के अधिकाश दोहो का आधार नायक-नायिका भेद है। नायक-नायिका भेद से सम्बन्धित ये दोहे शास्त्र नियोजन पद्धति से चालित नही है। यह अनुमान कि सतसई नायिका भेद का उदाहरण ग्रन्थ है, पूर्ण रूपेण भ्रान्त है। बिहारी ने शास्त्रीय मान्यता को वर्णन-आधार न बनाकर परम्परा से चली आती हुई मुक्तक काव्य विधा के अन्तर्गत प्रयुक्त नायक-नायिका विषयक प्रौढियो को प्रधान आधार बनाया है। यही कारण है कि रसात्मकता एव शृगार भाव-बोध से प्रत्यक्ष सम्बद्ध नायिकाओ एव नायको का वर्णन यहाँ अधिकता से प्राप्त होता है। इस सदर्भ मे उन्हे नवयौवना, मुग्धा, मिलनोत्कठिता, अभिसारिका, खण्डिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका और अन्यसभोग दुखिता तथा नायको मे दक्षिण एव धृष्ट ही अधिक प्रिय हैं। अन्य प्रौढिवान नायिकाओ मे ग्राम्या, स्वइव्रतिनी, मध्या, पूर्वानुरागिनी एव नायको मे शठ के भी यथास्थान उदाहरण प्राप्त होते हैं।

बिहारी ने मानमोचन, मिलन एव अभिसार, परसार स्नेह, अकुरण के संदर्भ मे दूतिकाओ का प्रयोग किया हैं। ये दूतिकाएँ नायक-नायिका दोनो से सम्बद्ध हैं। नायक के प्रणय व्यापार मे सहायक सखाओ का उल्लेख कवि यहाँ नही करता।

रस की दृष्टि से कवि की दृष्टि एक मात्र शृगार पर ही केन्द्रित है। यहाँ कवि ने मुक्तक काव्यो मे स्वीकृत शृगार रस विषयक समस्त प्रौढियो का प्रयोग किया है। सयोग की समस्त अवस्थाओ, सुरतेच्छा, सुरति, सुरत्यत, विपरीत रति, रत्याभास (गर्भिणी आदि के सन्दर्भ में) मान, प्रवास मानमोचन तथा वियोग-शृङ्गार की सम्पूर्ण स्थितियो का प्रयोग यहाँ मिलता है ये वर्णन क्रम प्राय· परम्परावद्ध ही हैं।

शृंगार रस के सन्दर्भ मे कवि ने विलासवर्धक समस्त चेष्टाओ का प्रयोग

किया है। यहाँ जडता, आलस्य, गर्व, स्वेद, कप, अश्रु, ईर्ष्या, मोह, चपलता, भय, शका, स्तम्भ, पुलक, मद, ताप, तपुता, आदि अनेक भावो से सम्बद्ध चमत्कृति प्राय· परम्पराबद्ध ही है। सतसई मे बार-बार इन भावो की आवृति मिलती है। कही-कही उसमे अनेक भावो को दुहराकर भाववैचित्र्य उत्पन्न किया गया है। इस दृष्टि से कवि अपने पूर्ववर्ती शृगार-काव्य के प्रयोगो एव प्रौढियो पर ही अधिक वल देता है।

अलंकार विधान के सन्दर्भ में कवि ने अधिकाश रूप से काव्य-प्रौढियो का ही प्रयोग किया है। अलकार रूप मे प्राप्त शृगार भाव के उद्दीपक अग, प्रत्यंग, वयक्रम, अलंकरण एव चेष्टाओ आदि को उसने कवि परम्परा से ही प्राप्त किया है। अंग वर्णन मे नेत्र, भौ, वाणी, चिबुक, गाल, गाल के गड्ढे, तिल, नासिक, माँग, टेढी गर्दन, उरोज, कटि, नितम्ब, जाँघ, उगली एव चेष्टाओ मे स्मिति, हास, कटाक्ष, नेत्रो को विशेष भगिमा मे मोडना आदि सूक्ष्म कामोद्दीपक चेष्टाओ की ओर बिहारी की दृष्टि अत्यधिक रही है। अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत कवि ने प्राय परम्परागत उपमानो को ही ग्रहण किया है। इस सन्दर्भ मे खजन, मीन, मृग, चकोर, शशि, कमल आदि अनेक बार आए हैं।

मुक्तक काव्य की प्रक्रिया के अन्तर्गत कवि समयो एव विश्वासो का प्रयोग अधिकांश रूप में मिलता है। बिहारी की भी दृष्टि इन कवि-समयो से प्रत्यक्ष सम्बद्ध है। कविवर ने प्रेम-व्यजना को स्पष्ट करने के लिए प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त होने वाले कवि-समयो का अधिक प्रयोग किया है। नीति-भक्ति एव राजनीतिक भावो के सम्बन्ध मे भी कवि ने इन कवि-समयो का प्रयोग किया है किन्तु वे अपेक्षाकृत कम है।

सतसई मे अनेक स्थलो पर प्रसंगात्मक काव्य-रूढियो का प्रयोग मिलता है। शृंगार भाव से सम्बन्धित चमत्कृति उत्पन्न करने वाली ऊहात्मक कथा ध्वनियाँ यहाँ प्राप्त होती हैं। दुर्योधन की मृत्यु का श्राप, उसकी जलस्तभ विधि, परस्त्री दोष गमन एवं पौराणिक जी, नपुसक वैद्य का सतानोत्पत्ति के लिए नुस्खा बताने पर उसकी पत्नी का परिहास, उपपति ज्योतिषी द्वारा पुत्र का पिताप्पा तक एवं जारज योग बताना, तोते के द्वारा विरहिणी के वचन का कथन, दु शासन का चीर खीचना आदि अनेक कथन कथात्मक रूढियो से ही यहाँ सम्बद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त बिहारी सतसई मे शब्द प्रौढि कथन सम्बन्धी रूढ़ियाँ एवं गूढोक्तियाँ पर्याप्त मात्रा मे मिलती हैं। शब्द प्रौढ़ि के माध्यम से कवि ने अलकार एवं चमत्कार वृत्ति को ही पुष्ट किया है। इस प्रकार की रूढियो की विस्तृत सूची बिहारी सतसई के आधार पर बनाई जा सकती है। ये इस प्रकार हैं—दिठौना

लगाना, कुच का गिरि होना, नेत्रो से बात करना, विरहाग्नि एवं विरह की लपटें, अली का कली मे बँधना, आँख का स्वत कोन देखना, एडी की लालिमा मे महावर का भ्रम, मृगनयन, खंजन नयन, भौंहों से सौंह खाना, हृदय से हृदय की बाते समझना, अग का लगना, आँख की किरकिरी होना, दीपशिखा सी देह, नचौहैं नैन, कली की चटकाहट, विरह ताप, दृगो का वार करना, विरह मे झुलसना, वधिक आँखे, विरह ज्वार, लडैते दृग, नैन पपीहा, नैन नट, नारी का नागिन की भाँति डँसना, लोचन सिंधु, स्पर्श से पहचान, गंध से पहचान, गुलाव की पखरी से खरोच, कुटिल भौंहैं, दृग उरझना, वेणी का बाँह मे लिपट कर चिह्न छोड जाना, विज्जु छटा सी नारि, चष तृषा, चकई-चकवे से रात्रि का ज्ञान, वियोग ताप से लू का चलना, बिना अंको का पत्र आदि। ये प्रौढियाँ परम्पराबद्ध एव शृगार की भाव व्यजना उत्पन्न करने के लिए विशेष-विशेषण भाव से अधिकाशत सम्बद्ध हैं।

शब्द-प्रौढियो से अधिक सतसई मे कथन प्रौढियो का प्रयोग मिलता है। ये कथन की भंगिमा, तत्सम्बन्धी कार्य-व्यापार एवं भाव-बोध से सम्बन्धित हैं। सतसई मे ये इस प्रकार है—यौवन के आगमन से स्तन, मन, नैन, एवं नितम्ब मे विशेष वृद्धि, कामदेव का मकरध्वज होना, खडिता के सन्दर्भ में पलको पे पीक, अधरो पर अजन एव मस्तक पर महावर का लगना, लाज, गर्व, आलस्य एव उमग के समय नेत्रों मे विशेष वर्ण परिवर्तन, रति की बात का सकेत समझ कर नायिका के साथ की अन्य सखियो का खिसकना, भरे भवन मे नेत्रो से वात करना, गुरुजनो के बीच सांकेतिक प्रणय भाव प्रकट करने के लिए नायक-नायिका का परस्पर पगडी छूना तथा प्रतिविम्व को नायक के सम्मुख करके हृदय लगाना, हृदय से हृदय की वातें समझना, वय सन्धि पर शिशुता एव नवयौवन का सयोग, कली की चटकाहट से प्रात का अनुभव, स्तनो के वढने से उसमे कठोरता का आना, नायिका की आवेशपूर्ण वाणी में प्रेम की मिठास, परदेश जाते समय मल्हार का गाना, शिशिर शीत मे गर्मी का भाग कर स्त्रियो के स्तन मे छिपना, मुक्ता का कपूर मणि मे परिणत हो जाना, विरह मे पलको का न लगना, मेघ झडी का अग्नि के समान लगना, गर्दन की कोमल त्वचा मे पीक का रग उतर आना, नायक द्वारा नायिका की चोटी का गुहा जाना, सौत के पाँव का विथुरा हुआ महावर देखकर उसाँस भरना, नायक की वस्तुओ के स्पर्श मात्र से स्वेद या कप का आ जाना, नायक को देखकर कँपना, नायक के शब्द को सुनकर स्वर-भग हो जाना, नायक द्वारा स्तम्भ जन्य कंप से टेढे तिलक के हो जाने से नायिका का इतराना, विरह को दूर करने के लिए गुलाव, घनसार आदि का प्रयोग, कृष्णाभिसारिका को अभिसार के लिए जाते समय हँसा-हँसाकर मार्ग बताना, सुरति के पूर्व नाही करना, नायक द्वारा भेजे गए पखे की वायु से नायिका

के स्वेद का आ जाना, हाथ की मुदरी का आरसी मे नायक का प्रतिबिम्ब देखना, युवावस्था मे कुच एव नितम्ब की प्रतिद्वन्द्विता, शरीर की परछाई का चन्द्रमा मे मिल जाना, वेदी के बहाने प्रणाम करना आदि ।

इन सम्पूर्ण कथन सम्बन्धी प्रौढियो की परम्परा दीर्घकाल से भारतीय-काव्य परम्परा मे भारतीय काव्यो एव शास्त्र ग्रथो मे स्वीकृत होती चली आई है । कवि ने कथन सम्बन्धी प्रौढियो के साथ गूढोक्तियो का भी प्रयोग सतसई मे किया है किन्तु उनकी संख्या कम है ।

बिहारी सतसई की अर्थ-व्यंजना का प्रत्यक्ष सम्बन्ध इन काव्य-रूढियो से है जो कि परवर्ती रीतिकाल की महत्वपूर्ण प्रकृति है, इन रूढियो का बासापन, मूलतः काव्य प्रौढि का ज्यो का त्यो प्रयोग ग्रहण कर काव्य मे विशिष्टता या विचित्रता नही उत्पन्न करता । मात्र रूढियो का कथन ही काव्य का शैथिल्य दोष कहा जा सकता है । रूढियो के माध्यम से व्यंजना शक्ति को तीव्र बनाने एव अर्थ-वक्र के सन्दर्भ को पुष्ट करने पर ही इस दृष्टि से कोई महत्व का अधिकारी हो सकता है । निश्चित रूप से, बिहारी की सबसे बडी विशेषता प्रौढि प्रयोग की ही है । कवि का कल्पनात्मक आश्रय एव वक्रगर्भिता इस प्रयोग के सन्दर्भ मे सदैव सचेष्ट मिलती है । इस अर्थ व्यजना के सन्दर्भ मे कवि रूढियो के प्रयोग का अध्ययन बिहारी-सतसई के वास्तविक मूल्याकन मे सहायक होगा । इनकी स्थिति यहा इस प्रकार है ।

ऊहात्मकता आभास :

कवि ने अधिकाश स्थलो पर काव्य-रूढियो के माध्यम से ऊहात्मकता को पुष्ट करना चाहा है । इस सदर्भ मे प्राय सभी रूढ़ि भेदो को कवि ने आधार बनाया है । विरह वर्णन के सन्दर्भ मे प्रयुक्त काव्य रूढियाँ अधिकाशत उसकी ऊहात्मकता से ही सम्बन्धित है । उदाहरण के रूप मे उसके कई दोहे इस सन्दर्भ मे रखे जा सकते हैं .

औधाई सीसी, सु लखि विरह-बरनि बिललात ।
विच ही सूखि गुलाबु गौ, छीटौ छुई न गात ।।
नाहि न ए पावक-प्रबल, लुवैं चलैं चहु पास ।
मानहु बिरह बसत कैं ग्रीषम लेत-उसास ।।

विरह से सतप्त शरीर तक पहुँचने के पहले उष्मा से गुलाब के छीटे का सूख जाना, उसासो का लू के रूप मे बहना आदि उक्तियाँ अतिरजित कथन के अतिरिक्त और क्या हो सकती हैं । किन्तु इन्ही उक्तियो को यदि विशिष्ट प्रसगात्मकता दे दी जाय तो इनसे समस्त ऊहापोह की स्थिति समाज-सी दीख पडेगी । प्रथम प्रसग मान-मोचन के सन्दर्भ मे है । "विरह बरनि बिललात" के माध्यम से दूतिका नायक को उसकी

प्रेयसी के कष्टों की ओर संकेत करके उससे शीघ्रातिशीघ्र मिलने का आग्रह करती है। दूसरे दोहे मे प्राकृतिक मानवीकरण के माध्यम से आत्मगत विरह की बात कही गई है। सखियाँ कहती है कि लू वसत से वियुक्त ग्रीष्म की उसासे हैं, जिसका ध्वन्यार्थ उनके विरह पर चरितार्थ होता है। बिहारी के अधिकांश ऊहात्मक कथनो मे प्रसग कल्पना कर लेने पर यहाँ उनकी ऊहात्मकता समाप्त हो जाती है। अग-प्रत्यग वर्णन के सन्दर्भ के अधिकाश प्रौढिगत ऊहात्मक कथन प्रसग कल्पना के वाद सामान्य कथन वन जाते हैं इसके लिए और भी उदाहरण देखे जा सकते हैं .

मानहु विधि तन-अच्छछवि स्वच्छ राखिवैं काज।
दृग-पग-पोछन कौ करे भूषन पायंदाज।।
रहि न सकी सव जगत मैं सिसिर-सीत कैं त्रास।
गरम भाजि गढवै भई तिय-कुच अचल म्वास।।

यदि दोनो कथनो मे वस्तु को "अच्छ छवि" एवं "तिय कुच मे स्थित गर्मी" मान ले तो ऊहात्मकता की गति समाप्त हो जाती है। स्वाभाविक रूप से व्यक्ति की दृष्टि सर्वप्रथम अलकरण की चकाचौंध पर पडती है तथा द्वितीय सन्दर्भ में स्वाभाविक रूप से स्त्रियो के स्तनो के पास शिशिर मे गर्मी भी रहती है। इन स्वाभाविक तथ्यो को प्रगट करने के लिए कवि उत्प्रेक्षा एव अतिशयोक्ति की भी योजना करता है।

किन्तु कही-कही रूढि पर आश्रित उसके ऊहापोह मूलक कथन आधारहीन से प्रतीत होते हैं। वस्तु के रूप मे इनमे इतनी सामर्थ्य नही है कि तत्सम्बन्धी अप्रस्तुत योजना से अपना सामजस्य वैठा सके, किन्तु ऐसे रूढि-प्रयोगो की सख्या कम है।

चमत्कृति .

प्रौढ़ि-प्रयोग का सवसे महत्वपूर्ण पक्ष "अर्थ चमत्कार परम्परा से चला आ रहा है। विहारी सतसई मे प्रयुक्त चमत्कृति की प्रवृत्ति रूढियो के सन्दर्भ मे अनेक रूपो मिलती है। सक्षेप मे उन पर विचार कर लेना अनपेक्षित नही होगा।

प्रचलित सामान्य रूढियाँ

प्रचलित रूढि से वस्तु के रूप, गुण एवं स्वभाव की अधिकता दिखाकर कवि ने चमत्कार-वृत्ति के पोपण की ओर सचेष्टता दिखाई है। इस दृष्टि से राहु द्वारा चन्द्रमा का ग्रसा जाना, शशि-मुखी होना, दृग को अलि, खंजन, मीन, वताना आदि रूढियो को वस्तु की तुलना मे कवि किस प्रकार सकुचित कर देता है—यह द्रष्टव्य है :

अरुनसरोरुह-कर-चरन, दृग-खजन, मुख-चद।
समै आइ सुन्दरि सरद काहि न करति अनन्द।।

सामान्य रूप से हाथ एवं पाँव को कमल, दृग को खंजन एव मुख को चन्द

बताना सामान्य काव्य-प्रौढि कथन मात्र है, किन्तु शरद से सम्बन्धित कर देने से वस्तुवैशिष्ट्य मे जो विस्तार होता है, वह यहाँ सुस्पष्ट है ।

सकै सताइ न तमु बिरहु निसि दिन सरस, सनेह ।
रहै बहै लागी दृगनु दीपसिखा सी देह ।।

"दीप सिखा सी देह" एक सामान्य रूढि है, जिसके कथन मे कोई वैचित्र्य नही है, तम-विरह से न सताया जाना एव "नित्यप्रति सरस स्नेह" से पूर्ण रहना वस्तु के स्वभाव का सूचक है । इसी प्रकार अनेक सामान्य रूढियो को लेकर कवि ने सतसई मे इस प्रकार की प्रवृत्ति का पोषण किया है । इस प्रयोग से सामान्य सी काव्य रूढियाँ वक्रार्थ सूचक बन जाती हैं ।

रूढि एव शब्द-विरोध :

कवि ने वस्तु की सगति को ध्यान मे रखकर रूढ़ियो मे शब्द-विरोध की प्रवृत्ति से चमत्कृति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है । इस स्थिति मे विरोधाभास, कवि का मूल प्रतिपादन हो रहा है और इसके माध्यम से वह चमत्कार का ही अन्त तक पोषण करता है :

ज्यो-ज्यो बूडे स्याम रग त्यो-त्यो उज्जल होय ।
गिरि तै ऊँचे रसिक-मन बूडे जहाँ हजारु ।।
अन बूडे बूडे तिरे जे बूडे सब अग ।
बसत सु चित अंतक, तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ।।

कथनो को क्रमश कृष्ण-भक्ति की पवित्रता, रसिको के मन की विशालता, काव्य-मर्मज्ञता, ईश्वर की सर्वव्याप्ति के प्रसंगो को स्पष्ट कर देने पर विरोध के स्थान पर चमत्कृति ही परिलक्षित होती है ।

भावात्मक चमत्कृति :

काव्य-प्रौढि के प्रयोग मे भावात्मक चमत्कृति सम्भवत· इस कवि को सबसे अधिक प्रिय है । वह परम्परागत इसके विभिन्न भावो, आगिक चेष्टाओ, नायक-नायिका के स्वभावो आदि को माध्यम बनाकर भाव-बोध को चमत्कृत करने का सर्वत्र प्रयास करता है । वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को काव्य-प्रौढि का अंग बनाकर रखता है । भाव-बोध एव चमत्कृति का ऐसा सयोग अन्यत्र दुर्लभ है :

कहि,लहि कौनु सकै दुरी सौनजाइ मैं जाइ ।
तन की सहज सुवास बन देती जौ न बताइ ।।
कुंज-भवन तजि भवन कौं चलियै नंदकिसोर ।
फूलति कली गुलाव की,चटकाहट चहुँ ओर ।।

मिलि परछाही जोन्ह सौ रहे दुहुनु के गात ।
हरि राधा इक सग ही चले गली महि जात ।।
छिपै छिपाकर छिति छुवै तम ससिहरि न सभारि ।
हँसति हँसति चलि, ससिमुखी मुख, तैं आँचरु टारि ।।

प्रस्तुत प्रसंगों मे क्रमश पद्मिनि नायिका के शरीर से सोनजुही की गंध से पृथक पद्मिनी की गध, गुलाब की चटकाहट से प्रात का बोध, श्याम परिछाई, एवं श्वेत-चन्द्र प्रकाश मे कृष्ण तथा राधा का परस्पर छिप जाना, रात्रि मे शशि मुखी का आँचल हटा कर हँसने का प्रकाश प्रौढि कथन है । कवि इन्हे आधार बनाकर चमत्कृति उत्पन्न करने का उपक्रम करता है । सतसई मे इस प्रकार की रूढियाँ भरी पडी हैं । इन प्रयोगो से रस एव भाव ध्वनि को अधिकाधिक पुष्टि मिली है ।

व्यंग्य और चमत्कृति :

परिहास एवं व्यग्य के स्थलो पर कवि अधिकाशत काव्य-रूढियो का आश्रय ग्रहण करता है । परिहास एव व्यग्य न केवल शब्दशक्ति को ही व्यजित करते हैं अपितु उनमे भाव-बोध को भी पुष्टि मिली है । सतसई मे इस प्रकार की प्रौढियाँ अधिक मात्रा में हैं । देवर की करतूते, खण्डिता-नायिका की उक्तियाँ, मानिनी के व्यंग्य बचन, पौराणिक एव नपुसक वैद्य जी के प्रसंग इसी प्रकार की रूढियो से सम्बद्ध हैं । उदाहरणार्थ एक-दो दोहे देखे जा सकते हैं :

पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावरु भाल ।
आजु मिले, सु भली करी, भले बने हौं लाल ।।
देवर-फूल-हने जु, सु सु उठे हरषि अंग फूलि ।
हँसी करति औषधि सखिनु देह-ददोरनु भूलि ।।

ये समस्त कथन निश्चित रूप से परिहास की कोटि मे आते हैं । कवि सचेष्ट भाव से इनका माध्यम काव्य-रूढि ही बनाता है ।

क्लिष्ट कल्पना

बिहारी ने वस्तु के स्वभाव नियोजन तथा कल्पनागत क्लिष्ट भाव-बोध के संदर्भ मे अनेक स्थलो पर रूढियो का प्रयोग किया है । इस प्रकार की क्लिष्ट कल्पनाएँ प्राय ऊहा की ही भाँति हैं । काव्य-रूढियो की परम्परा मे इस प्रकार के प्रयोगो की एक विशिष्ट पद्धति संस्कृत के ललित साहित्य मे मिलती है । इस सदर्भ में कवि ने वस्तु के गुणो, स्वभावो, व्यवहारो, का बोध कराना चाहा है । कही-कही कूटो का भी प्रयोग उसने इसी क्लिष्ट कल्पना को ही पुष्ट करने के लिए किया है :

बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति किऐं नीठि ठहराइ ।
सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख,लखी नहिं जाइ ।।

जुवति जौन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ ।
सौंधे कै डोरैं लगी अली चली सग जाइ ।।
पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर कै चहुँ पास ।
नितप्रति पून्यौई रहै, आनन-ओप-उजास ।।

सूक्ष्म-कटि की परम-ब्रह्म की भाँति अपश्यता, शुक्लाभिसारिका का जौन्ह मे मिल जाना, शरीर से निकलने वाली गंध से पहचाना जाना तथा नायिका के पास-पडोस मे पत्रा से ही तिथि का ज्ञान, क्लिष्ट कल्पनाएँ या ऊहापोहमूलक कथन हैं । जो सामान्य रूढियो—कटि की सूक्ष्मता, शुक्लवर्ण पद्मिनी नायिका के शरीर से गंध का निकलना एव नायिका का शशि मुखी होना, सम्बन्धित हैं । किन्तु इन सामान्य रूढ़ियो मे क्लिष्ट कल्पना के माध्यम से कवि ने जो अर्थ विस्तार दिया है वह अतिरजना की सीमा तक पहुँच जाता है ।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि बिहारी सतसई मे प्रयुक्त काव्य-रूढ़ियाँ मुक्तक काव्य-परम्परा एव काव्य शास्त्रीय मान्यताओ से पूर्ण रूपेण शासित हैं । कवि चमत्कारिक कला-कौशल के सामान्य परिवर्तन से उनमे विशिष्ट प्रकार का अर्थ-बोध उत्पन्न कर देता है । सतसई का यही अर्थ विधान काव्य-रूढियो की परम्परा मे जकडे हुए अनेक रीतिकारो एव कवियो की श्रेणी से उठाकर इन्हे किंचित् भिन्न रख देता है ।

———

बिहारी की वाग्विभूति

● डा० राकेश गुप्त

बिहारी का प्रादुर्भाव हिन्दी साहित्य के उस 'अभिशप्त' युग मे हुआ, जिसके ऊपर इतिहास-लेखको द्वारा अनेक लाछन लगाए गए है तथा जो इसी कारण साधारण पाठको द्वारा अत्यत हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है। अतएव बिहारी के काव्योपवन मे प्रवेश करने से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम उन पर तथा उनके समयुगीन अन्य कवियो पर लगाए इन गभीर आरोपो के तथ्यातथ्य पर विचार कर ले।

रीति काल पर सबसे बडा अभियोग यह है कि तत्कालीन राजनीतिक शाति के कारण तथा मुसलमान बादशाह और नवाबो की विलास-प्रियता के प्रभाव-स्वरूप उस युग के हिन्दू राजाओ के दरबार तथा समाज सभी विलासिता के रग मे रँग गए। दूसरा अभियोग उस काल के कवियो पर है, और वह यह है कि वे लोग दरबारी कवि थे, और इस नाते अपने आश्रयदाताओ की विलास-प्रियता को उत्तेजना देने के लिए उन्होंने अत्यन्त वासनापूर्ण शृंगार-रस की कविता की सृष्टि की।

प्रथम आरोप का आधार ढूँढने के लिए प्रवृत्त होने पर हमारे सामने इस आश्चर्यपूर्ण रहस्य का उद्घाटन होता है कि इस आरोप को लगाने वाले विद्वानो ने अपने कथन की पुष्टि के लिए किसी ऐसे ग्रंथ से प्रमाण देना आवश्यक नही समझा, जिसमे उस युग की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का वर्णन हो। उस युग की शृंगार-रस-प्रधान कविता को देख कर वे सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच गए कि अवश्य ही उस युग का वातावरण विलासिता की दुर्गंध से परिपूर्ण रहा होगा। 'साहित्य' समाज का दर्पण है, इस भ्राति पूर्ण सिद्धात पर विश्वास करने के कारण हमारे साहित्य के इतिहास लेखको ने यह भूल केवल रीति-काल के सबंध मे ही नही, साहित्य के अन्य सभी कालो के सबध में भी की है। यहाँ पर इतना अवकाश नही है कि हम साहित्य और समाज के संबध को पूर्णतया स्पष्ट कर सके। सक्षेप मे हम यही कह सकते हैं कि यद्यपि साहित्य का समाज पर और समाज का साहित्य पर कुछ न कुछ प्रभाव प्राय पडता है, पर फिर भी न तो यही आवश्यक है कि समाज की प्रत्येक विचार-धारा का प्रतिबिब हमे साहित्य मे मिल ही जाय, और न यही अनिवार्य है कि साहित्य में जिन भावनाओ की अभिव्यक्ति की गई है, वे समाज मे भी व्याप्त हो। रीति काल के संबध मे हमें कोई ऐसा प्रमाण उपलब्ध नही है,

जिसके आधार पर हम यह विश्वास कर सके कि उस युग के समाज मे अथवा दरबारों मे अन्य युगो की अपेक्षा विलासिता का अधिक प्राधान्य था ।

दूसरे आरोप मे यह ध्वनि निकलती है कि शृंगार रस की कविता करना एक अत्यन्त घृणित कार्य और दरबारी कवि होना एक अक्षम्य अपराध है। पर ऐसा आक्षेप वे ही लोग कर सकते हैं, जो हमारी प्राचीन काव्य-परम्परा से परिचित नही हैं, या जो जानबूझ कर उस परिचय को भुलाना चाहते हैं जिन्होंने रघुवश के उन्नीसवे सर्ग मे राजा अग्निवर्ण के विलास का वर्णन पढा है, जो कुमार-सभव के शिव-पार्वती-शृगार वर्णन से अपरचित नही हैं तथा जिनके सामने श्रीमद् भागवत् एव ब्रह्मवैवर्त पुराणों के कृष्ण-क्रीडा वर्णन हैं, वे रीतिकाल के शृगार वर्णन को देख कर कभी भी नाक-भौ नही सिकोड सकते और सस्कृत के कवियो को जाने दीजिए, हिन्दी मे ही विद्यापति एवं सूरदास ने जिस सीमा तक शृंगार का वर्णन किया है, रीतिकाल का कौन सा कवि उसके आगे बढ़ सका है। सच तो यह है कि हिंदी के भक्त कवियो ने कृष्ण, राधा एवं गोपियो के शृंगार-वर्णन को लेकर जिस परम्परा का आरम्भ किया, वही साहित्य-शास्त्र के सयोग के साथ रीतिकाल मे पल्लवित एवं पुष्पित हुई। इस सबध मे यह कल्पना करना नितात भ्रामक है कि शृंगार-पूर्ण रचना का उद्देश्य आश्रयदाताओ की वासना को उत्तेजित करना था, क्यो कि शृंगार की भावना राजा से लेकर रक तक सभी मे समान रूप से व्याप्त है। यदि प्रमाण की आवश्यकता हो तो किसी भी देश अथवा किसी भी जाति के लोक-गीतो को उठाकर देख लीजिए। रीतिकाल के कवियो को उनके दरबारी होने के कारण हेय दृष्टि से देखने वाले कदाचित् इस बात को भूल जाते हैं कि कालीदास और वाण भी दरबारी कवि थे। वास्तव मे उस युग की परिस्थिति के अनुसार, जब कि पुस्तके मुद्रित नही होती थी, किसी भी कवि के लिए, यदि वह विरक्त अथवा स्वयं श्रीमान् नही होता था, तो यह स्वाभाविक ही नही वरन् अनिवार्य था कि वह किसी न किसी श्रीमान् को अपने आश्रयदाता के रूप मे ग्रहण करे।

बिहारी के काव्योद्यान मे प्रवेश करते ही हमे मगलाचरण के रूप मे जिस प्रथम पुष्प के दर्शन होते हैं, उसमे भक्ति भावना की सुगध, शृगार भावना की कोमलता एव सरसता तथा काव्य के कला-पक्ष की कारीगरी, ये तीनो गुण एक ही स्थान पर एकत्र मिलते हैं। इस रूप मे यह दोहा सतसई की तीन प्रधान विशेषताओ का प्रतिनिधित्व करता है। कवि ने लिखा है :

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परै, स्यामु हरित-दुति होइ॥

(हे चतुर राधा, मेरे जन्म-मरण-संबंधी अथवा सांसारिक दुखो को दूर करो। तुम्हारे शरीर की आभा के आगे कृष्ण का सौन्दर्य भी फीका पड जाता है, अथवा तुम्हारी छाया मात्र को देखने से श्रीकृष्ण जी आनद-मग्न हो जाते हैं, अथवा तुम्हारे शरीर के पीत वर्ण की आभा पडने से नील वर्ण वाले श्रीकृष्ण हरित वर्ण के हो जाते हैं।)

कवि की कला-प्रियता और भक्ति-भावना तो इस दोहे से प्रकट है ही, श्री कृष्ण और राधा के प्रेम-सबध के उल्लेख से इसकी शृगार-प्रियता भी स्पष्ट रूप से ध्वनित है। साहित्य-रसिको द्वारा इसके अनगिनतो अर्थ किए गए हैं, पर यह सोचना कठिन है कि उनमे से कितनो की कल्पना स्वय बिहारी ने भी की थी। एक अर्थ के अनुसार तो यह दोहा मंगलाचरण न रह कर वैद्यक का एक नुस्खा बन जाता है।

सतसई के शृगार-रस-प्रधान होते हुए भी इसमे अनेक ऐसे दोहे बिखरे पडे हैं, जिनमे उक्ति-वैचित्र्य, वाग्विदग्धता तथा अपने पापो के सबध मे स्वीकारोक्ति के सहारे अनन्य भक्ति सबधी भावो की उत्कृष्ट व्यजना की गई है। बिहारी के इस श्रेणी के दोहे श्रेष्ठ भक्त कवियो के समान रचनाओ से किसी भी प्रकार हीन नहीं हैं। निम्नाकित दोहे मे कवि कृष्ण की आधुनिक दानियो से तुलना करता हुआ उन्हे कितना मधुर, पर तीक्ष्ण उपालभ देता है।

थोरै ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह, मनौ भए, आजकाल्हि के दानि॥

और इस दोहे में श्रीकृष्ण की पापियो को तारने की शक्ति को चुनौती है, अथवा उसके प्रति कवि का अटल विश्वास

मोहि तुम्हैं बाढी बहस, को जीतै, जदुराज।
अपनें अपनें बिरद की, दुहूँ निबाहन लाज॥

कवि का विश्वास भगवान् के प्रति सच्चे अनुराग मे है, जप,माला और तिलक आदि बाहरी आडबर मे नही। उसने कहा है :

जपमाला छापैं, तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन-काँचे नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु॥

सतसई के शृगार-वर्णन की ओर उन्मुख होने पर हमारा साक्षात् सबसे पहले उसके रूप-वर्णन से होता है। नेत्रो के सौन्दर्य की व्यजना कवि उसके प्रभाव-वर्णन द्वारा रूपक एवं श्लेष अलकारो की सहायता से अत्यंत चमत्कारपूर्ण शैली मे करता है

खेलन सिखए, अलि भलैं, चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग, नागर नरनु सिकार॥

नेत्र रूपी मृगो को चतुर नागरिको का शिकार करने वाला बना कर लेखक एक ने अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि की है, और काननचारी (अर्थात् कानो तक पहुँचने वाले दीर्घ नेत्र अथवा वन मे विहार करने वाले मृग) को श्लेष के आधार पर नेत्र और मृग दोनो का समान रूप से विशेषण बना कर उसने एक अनूठे कौशल का परिचय दिया है। नेत्रो के इस वर्णन मे चमत्कार प्रदर्शन के साथ यथार्थता का भी योग है। पर कवि की कल्पना कभी-कभी यथार्थता की भूमि पर अपने विहार के लिए समुचित स्थान न पाकर वहाँ से बहुत ऊपर भी उठ गई है। मुख के सौन्दर्य-वर्णन के संबध मे उसकी एक उक्ति देखिए :

पत्रा ही तिथि पाइयै, वा घर कै चहुँ पास।
नितप्रति पून्यौई रहै आनन-ओप-उजास ॥

चद्रमा तो मुख का चिर-परिचित उपमान रहा ही है, पर इसी आधार पर उस चद्रवदनी नायिका के घर के चारो ओर और नित्य प्रति पूर्णिमा का रहना तथा प्रकृत चद्रमा का मलिन हो कर अदृश्य हो जाना, जिससे तिथि केवल पत्रा को देख कर ही विदित हो सके, विहारी ही की सूझ है और पाठक अथवा श्रोता के लिए इस अनूठी सूझ पर वाह-वाह न कर उठना अत्यत कठिन है

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियै, दई नई यह रीति ॥

इस दोहे मे केवल असगति का ही व्यवहार नही, वरन् प्रेम की विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन भी गागर में सागर के समान है। प्रेम का आरंभ नेत्रो के मिलने से होता है। परिणामस्वरूप नायक और नायिका को अपने-अपने घर से संबंध विच्छेद करना पडता है। इससे उन दोनो का प्रेम-संबंध तो दृढ हो जाता है, पर साथ ही दूसरो का सुख न देख सकने वाले दुष्ट लोग उनके प्रेम-सबध को देख कर ईर्ष्या की अग्नि मे जलने लगते हैं।

सयोग शृगार के वर्णन मे कवि ने उन सब परिस्थितियों का चित्रण किया है जिनका नायिका भेद मे निर्देश रहता है। इनमे से कुछ वर्णन तो केवल परपरा-पालन की दृष्टि से ही किए गए हैं, पर कुछ मे स्वाभाविकता का सरल सौन्दर्य है। विशेष सफलता कवि को उन स्थलो पर मिली है, जहाँ उसने किसी चित्र को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए श्री कृष्ण के साथ चिरकाल तक बाते करने का आनन्द प्राप्त करने की इच्छुक एक चतुर गोपी का चित्र देखिए

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौह करैं, भौहनु हँसै, दैन कहैं, नटि जाइ ॥

अनुभावो की सहायता से किए गए इस प्रकार के सुन्दर चित्रण हमको

सतसई के अनेक दोहो मे मिलते हैं। निम्नाकित पक्ति के थोडे से शब्दो मे ही एक बडे चित्र को अपनी पूर्णता मे प्रकट करने की जो अद्भुत क्षमता है, वह बिहारी के अतिरिक्त और किसी कवि की रचना मे सरलता से नही ढूंढी जा सकती :

करत कुलाहल किंकनी, मौन गह्यौ मजीर।

अर्थात् कमर की किंकिनी कोलाहल कर रही है और पैरो के नूपुर मौन धारण किए हुए हैं।

बिहारी के विरह-वर्णन को देख कर हमे सचमुच बडी निराशा होती है। वास्तविकता से दूर, विरहावस्था की सहज करुण भावनाओ की अभिव्यक्ति से विहीन यह वर्णन असम्भव कल्पनाओ एव ऊहात्मक उक्तियो का एक बडा सा जाल है। बिहारी की नायिका की विरहाग्नि इतने जोरो से प्रज्वलित हो रही है कि उसकी सखियाँ, जिन्हे स्नेहवश उसके पास जाना ही है, जाडे की रात मे भी गीले वस्त्रो की ओट करके उसके पास जाने का साहस करती हैं·

आडे दै आले वसन, जाडे हूँ की राति।
साहसु ककै सनेह बस, सखी सबै ढिग जाति॥

और इतना हो नहीं, उसकी विरह-ज्वाला के कारण तो गाँव भर मे माघ मास की रात्रि मे भी लू चलती रहती है और पथिक से यही समाचार सुन कर नायक अपनी प्रेमिका के जीवित रहने के विषय में आश्वस्त हो जाता है'

सुनत पथिक-मुंह माह-निसि चलति लुवैं उहिं गाम।
विंन बूझैं, बिन ही कहे, जियति विचारिं बाम॥

इसके साथ ही विरह जनित कृशता का वर्णन देखिए

करी बिरह ऐसी, तऊ गैल न छाडतु नीचु।
दीनैं हूँ चसमा चखनु, चाहै लहै न मीचु॥

यह नायिका मृत्यु से अपनी कृशता के कारण ही बची हुई है, क्योकि आँखो पर चश्मा लगाकर भी वह इसे ढूढ नही पाती।

इस प्रकार के वर्णन से हमारा थोडा सा मनोरजन भले ही हो जाय, पर ये पाठक तक अपनी वर्ण्य भावना को पहुँचाने मे सर्वथा अक्षम हैं।

बिहारी सतसई मे कुछ नीति-सबधी दोहे भी उपलब्ध हैं। इनका आधार दृष्टात अथवा अन्य कोई अलकार है। इन दृष्टातो से कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है। उनके कुछ दोहे आध्यात्मिक भावनाओ की भी अभिव्यक्ति करते हैं, पर काव्य की दृष्टि से उनका विशेष महत्व नही है। हाँ बिहारी की अन्योक्तियाँ अवश्य प्रभावपूर्ण एव हृदयस्पर्शी हैं। उनमे से कुछ का तो राजनीतिक एवं ऐतिहासिक महत्व भी है। बिहारी की सबसे प्रसिद्ध अन्योक्ति यह है :

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहि काल ।
अली कली ही सौ बँध्यो, आगै कौन हवाल ।।

कहते है कि इसी दोहे को देख कर बिहारी के आश्रयदाता मिर्जा राजा जयशाह अपनी नव-यौवना रानी के मोह को छोड कर राजकाज देखने लगे थे ।

बिहारी अपने समय के प्रवाह के कारण प्रधानतया शृगार रस के कवि होते हुए भी व्यावहारिक जीवन मे सतोष सदाचरण एव एक पत्नीव्रत के पक्षपाती थे। उनके मत का स्पष्ट निर्देश उनकी निम्नाकित अन्योक्ति मे मिलता है .

पट्ठु पाँखै, भखु काँकरै, सपर परेई सग ।
सुखी, परेवा, पुहुमि मैं, एकै तुँही बिहग ।।

बिहारी की रचनाओ का पूर्ण दिग्दर्शन इस छोटे निबध मे संभव नही है। फिर भी जो कुछ कहा गया, उससे बिहारी की मूल प्रवृत्तियो को समझने मे अवश्य कुछ न कुछ सहायता मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है । बिहारी की रचना मे वास्तव मे कलापक्ष की प्रधानता है । उक्ति-वैचित्र्य और चमत्कार उसके प्राण हैं । इस प्रकार की रचना को पढ अथवा सुन कर कोई भी व्यक्ति वाह-वाह तो अवश्य करेगा, पर उसके हृदय मे रस का उद्रेक होना अत्यंत कठिन है । वास्तव मे रस की, यास्मीय उपकरणो के सयोजन मात्र से कोई भी कविता उस समय तक रसपूर्ण नही कही जा सकती, जब तक उसमे पाठक को वर्ण्य भावना से प्रभावित करके उसमे निमग्न कर देने की भी शक्ति न हो और मुक्तक रचनाओ मे परिस्थितियो के पूर्ण एवं स्वाभाविक विकास का अभाव रहने के कारण ऐसा होना अत्यन्त कठिन है । फिर भी इस प्रकार की रचनाओ मे जिनकी सृष्टि करने मे कुछ प्रतिभावान कवि ही समर्थ हो सकते हैं, एक अपना सौन्दर्य है, एक अपना रस है, एक अपना आनन्द है । इस श्रेणी की रचना का काव्य, के क्षेत्र से बहिष्कृत करने का प्रयत्न उतना ही गलत है, जितना केवल इसी प्रकार की रचना को काव्य समझना ।

बिहारी की वाग्विभूति और बहुज्ञता

● प्रो० अम्बा प्रसाद 'सुमन'

कविता कवि के हृदय का मजुल मुकुर है। कवि का हृदय एक अनुपम भावना जगत् है जिसमे परमात्मा-प्रकृति तथा मानवो की लीलाएँ होती रहती हैं। यद्यपि कवि अपने अन्तर्जगत का स्रष्टा है तथापि उसके अन्तर्जगत् की सर्जना उसकी इच्छानुसार ही होती है और वह इच्छा उसकी वश-परम्परा एव वातावरण से पूर्णतः अभिभूत होती है। ऐसा हो नही सकता कि कवि के भावुक हृदय पर तत्कालीन सास्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियो का प्रभाव न पडे। कवि वाह्य जगत् मे जो कुछ देखता है और जो कुछ पढता है, वह सव उसके हृदय रूपी कैमरे में 'फोकस' के प्रतिविम्व रूप आता रहता है और फिर उसकी सहायता से वह अनेक पूर्ण एव परिष्कृत चित्र (से तात्पर्य यह है कि कवि संसार के चित्रो तथा दृश्यो को अपनी कविता द्वारा ज्यो का त्यो ही चित्रित नही करता वरन् अपनी प्रतिभा के बल से उन चित्रो मे निखार भी ले आता है जिससे उसकी कृति प्रेय और श्रेय दोनो बन जाती है। उसमे यथार्थ के साथ-साथ आदर्श भी रहता है) चित्रित करता है। यही कारण है कि पृथ्वीराज के शासन-काल ने 'चन्दवरदाई' और शाहजहाँ के समय ने रसिकेन्द्र 'विहारी' को जन्म दिया। देश की तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियो ने ही चन्दवरदाई को 'वीरगाथा' और बिहारी को 'शृगार-काव्य' लिखने के लिए उत्तेजित किया। रीतिकाल मे जिस मासल झकार का रूप हमें दृष्टिगत होता है उसका बीज तो विद्यापति और सूरदास भक्ति के क्षेत्र में वो चुके थे। उसी वीज का अंकुर मुगलो की विलासिता का जल पाकर यौवन की रंगीनी के साथ पल्लवित और पुष्पित हुआ। सूरसागर के दशम स्कन्ध मे ऐसे अनेक पद हैं जिनमे गोपिकाओ की जवानी और जोबन का शृंगार पूरे उभार के साथ चित्रित हुआ है।

महाकवि विहारीलाल जी की जन्मभूमि ग्वालियर थी। पिता जी के स्वर्गारोहण के उपरान्त बिहारी ग्वालियर छोडकर ओरछा चले गए थे। वही उन्होंने केशवदास जी के काव्य-ग्रन्थो का अध्ययन किया था। युवावस्था मे विवाह हो जाने पर वे अपनी ससुराल मथुरा मे ही रहने लगे थे। अतः विचार किया जा सकता है कि केशवदास जी के शृगार रस-पूर्ण काव्य-ग्रथो को पढ़ने वाले और साली, सलहजों मे रग-रेलियो-भरा जीवन विताने वाले बिहारी किस प्रकार के कवि वन सकते थे ? वातावरण एव परिस्थितियो के प्रभाव से उन्हें जैसा वनना चाहिए था, वे ठीक वैसे

ही बने। ससुराल में निरन्तर पाँच-छ वर्ष रहने वाले जमाई का सम्मान, प्रतिष्ठा, तथा सत्कार बहुत कम हो जाता है, इसे कवि ने स्वय अनुभव किया था। तभी तो शिशिर-काल के दिनमान को उन्होने इन शब्दो मे व्यक्त किया है

"आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ, खरौ पूस-दिन-मानु ॥"
—बि० र० १७१

महाकवि बिहारीलाल ने अपनी आँखो से शाहजहाँ का विलासी जीवन देखा था। मुगलवश के इस बादशाह के शासन-काल तक भारत मे हिन्दू और मुसलमान सामाजिक क्षेत्र मे बहुत कुछ मिल चुके थे। शाहजहाँ का दरबार और दरबारियों की महफिले वासनात्मक शृंगार का केन्द्र बन गई थी। मुगलो के विलासी जीवन की विलासिता हिन्दुओ के घरो मे घुस गई थी और उनके दिलो मे रगीनी पैदा कर रही थी। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली कहावत लगभग सारे उत्तरी भारत मे चरितार्थ हो रही थी। तत्कालीन कवि भी राधा और कृष्ण के नामो की आड मे कामातुरा नायिका और कामी नायक के क्रिया-कलापो का चित्रण करते हुए घोर अश्लील शृंगार, साहित्य मे भरने लगे थे। फिर बेचारे बिहारी ही इससे कैसे बच रह सकते थे।

केशवदास आदि रीतिकालीन कवि, कविता मे 'स्वान्त· सुखाय' हृदयोद्गार प्रकट न करके, 'स्वामिन. सुखाय' पद्य-रचना कर रहे थे। धन प्राप्ति एव दान के लोभ मे साधारण पुरुषो की प्रशसा के पुल बाँध दिए जाते थे। कविता का सरस्वती स्वरूप बनिता मे परिवर्तित हो गया था और अब वह शाही-दरबारो और महलो की वारविलासिनी बन गई थी।

अपने अतीत गौरव एवं स्वातन्त्र्य के पुजारी कुछ हिन्दू राजाओ ने हृदय से मुगल बादशाहो की अधीनता स्वीकार नही की थी। प्रजा की परिस्थिति सकटापन्न थी। उसमे अारण्ड ताण्डव का भीषण बवण्डर उठ रहा था। हिन्दू अपने ही भाइयो के साथ वैमनस्य पूर्ण कपटाचरण कर रहे थे। देश के बहुत से भागो मे दुहरा शासन प्रबन्ध था। देशी राजाओ और मुसलमान सूबेदारो की दो विशाल पाटो वाली चक्की मे जनता पीसी जा रही थी। इस 'दुराज' का दुस्सह दु ख किसी से भी नही सहा जाता था। प्रजा की यह दु ख भरी पुकार विहारी की लेखनी द्वारा इन शब्दो मे व्यक्त की गई थी :

"दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौं न बढ़ै दुख-दुन्दु।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रविचन्दु ॥"
—बि० र० ३५७

इन सामाजिक एव राजनीतिक परिस्थितियो के अतिरिक्त हमारे रीतिकालीन कवियो पर तत्कालीन सस्कृति-साहित्य का भी प्रभाव पडा था। विक्रम की चौदहवी शताब्दि के आस-पास सस्कृत के कवियो को आचार्य बनने की धुन सवार थी। वे प्राय: लक्षण-ग्रन्थो का ही प्रणयन करते थे। प्रबन्ध काव्य के स्थान पर 'मुक्तक काव्य' ही लिखे जाते थे। देश के क्षुब्ध एव अशात वातावरण मे महाकाव्यो का लिखा जाना असम्भव-सा भी थी। इन्ही कारणो के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवियो ने भी मुक्तक-काव्यो की रचना थी। मुक्तको की सफलता मानवजीवन के सरस, मृदुल, मधुर एव आकर्षक अनुवृत्तो के वर्णन पर ही आश्रित है।

इसीलिए हिन्दी के रीतिकालीन कवियो ने सामाजिक और दरबारी जीवन मे से सरस अनुवृत्तो को ही अपनी कविताओ के लिए चुना है। राजा जयसिह को चेतावनी देने वाला निम्नाकित दोहा उक्त कथन की पुष्टि मे प्रस्तुत किया जा सकता है :

"नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल॥"

—बि० र० ३८

कवि की प्रतिभा एव कवित्त शक्ति की सच्ची कसौटी तो वास्तव मे मुक्तक काव्य ही है। मुक्तक रचना का अकेला छन्द ही अपने मे पूर्ण, सरस, चमत्कार पूर्ण तथा स्थिर होता है। परन्तु प्रबन्ध काव्य के छन्द एक धारा के समान गतिमान होते हैं। उसके प्रवाह मे नीरस छन्द भी सरस प्रतीत होने लगते हैं। नालो का गन्दा और खारा पानी भी गगा की धारा मे मिल कर मिठास प्राप्त कर लेता है। हमारे रसिकवर बिहारीलाल जी ने भी मुक्तक रचना ही की है। उनकी 'सतसई' एक मुक्तक काव्य है जिसका प्रत्येक दोहा अमूल्य रत्न है। 'सतसई' के प्रत्येक दोहे मे काव्य-कला-मर्मज्ञ महाकवि बिहारी की कला को देख कर कहना पडता है कि कवि ने कमाल कर दिया है। 'सतसई' का एक-एक दोहा सजा हुआ गुलदस्ता है। आचार्य शुक्ल ने कहा भी है कि "यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।"

अब हम भाषा, भाव, रस और अलकार की दृष्टि से कवि की कला को परखने का प्रयत्न करेंगे।

महाकवि बिहारीलाल की भाषा के विषय मे आचार्य पडित रामचन्द्र शुक्ल का मत उद्धृत करना पाठको के लिए अनुपादेय न होगा। शुक्ल जी का कथन महाकवि बिहारी के विषय मे इस प्रकार है "बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है। शब्दो के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात

बहुत कम कवियो मे पाई जाती है। ब्रज-भाषा के कवियो मे शब्दों को तोड-मरोड कर विकृत करने की आदत बहुतो मे पाई जाती है। भूषण और देव ने शब्दो का अग-भंग किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से बहुत कुछ मुक्त है। कुछ स्थल ही ऐसे हैं जहाँ 'स्मर' के लिए 'समर' और 'ककै' ऐसे कुछ विकृत रूप मिलेगे। जो यह भी नही जानते कि 'सक्रान्ति' को 'संक्रमण' (अपभ्रन्श सक्रोन) भी कहते हैं। 'अच्छ' साफ के अर्थ मे संस्कृत शब्द है। 'रोज' रुलाई के अर्थ मे आगरे के आस-पास बोला जाता है। कबीर-जायसी द्वारा व्यवहृत हुआ है। 'सोनजाई' शब्द 'स्वर्ण जाती' से निकाला है।—जुही से कोई मतलब नही। सस्कृत मे 'वारि' और 'वार' दोनो शब्द हैं। 'वार्द' का अर्थ भी वादल है। 'मिलान' पडाव या मुकाम के अर्थ मे पुरानी कविता मे भरा पडा है। चलती ब्रजभाषा मे 'पिछानना' रूप ही आता है। 'खट-कति' का रूप वहुवचन मे भी यही रहेगा। यदि ऐसे पचासो शब्द उनकी समझ मे न आवे तो इसमे वेचारे बिहारी का क्या दोष ?"

बिहारीलाल जी की भाषा बुन्देलखण्डी मिश्रित ब्रजभाषा है जो कि सरस, चलती तथा साहित्यिक है और जिसमें यत्र-तत्र इजाफा, पायदाज आदि फारसी शब्दो का पुट भी है। मुगल शासको के लोगो के सम्पर्क मे आने से ही बिहारी के काव्य की भाषा ऐसी बनी। अमीर खुसरो, कवीर, सूर और तुलसी मे भी यत्र-तत्र ऐसे शब्दो का प्रयोग मिलता है। खुसरो ने तो विशेष रूप से फारसी-हिन्दी के रूप को मिला कर लिखा है—'जे' हाल मिसकी मकुन तगाकुल दुराये नैना बनाये बत्तियाँ।" कवि का शैशव बुन्देलखण्ड मे व्यतीत हुआ था। इसलिए उनकी कविता मे बुन्देल-खण्डी के शब्दो का आ जाना स्वाभाविक है। बिहारी अलकृत भाषा लिखने मे विश्वास रखते थे। यद्यपि उनके काव्य मे भाव-पक्ष और कला-पक्ष का समन्वय है परन्तु तब भी उनका झुकाव कला-पक्ष की ओर ही अधिक प्रतीत होता है।

काव्य मे कला-पक्ष का अधिकाश ही कवि-भाषा को साहित्यिक वनाने मे सहायक सिद्ध हुआ है। विशेषता यह है कि भाषा अलंकृत होने पर भी वनावटी तथा नीरस कही नही हुई। प० पद्मसिंह शर्मा के कथनानुसार कवि की सहृदयता एवं सरसता ने भाषा को भी एक खाँड की रोटी-सा बना दिया है। जिसको जिधर से काटा जाय उधर ही मीठी मालूम पडती है।

काव्य की भाषा आकर्षक और सरस तभी बनती है जब कि वह पात्र के अनुसार ही प्रयुक्त होती है। कविवर रसिकेन्द्र बिहारी ने नायक-नायिकाओ की योग्यता के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया है। 'सतसई' की ग्रामीण नायिकाएँ सीधी-सादी वाक्यावली मे कवि के द्वारा वर्णित की गई हैं, परन्तु नागरी नायिकाओ का अग-वर्णन साधारण शब्दो मे नही किया गया। उनके वर्णन मे कवि ने आलका-

रिक चमत्कार दिखाया है। एक स्थल पर कवि ने ग्रामीण नायिका के रूप और कार्य को इन शब्दो मे व्यक्त किया है :

"पहुला हारु हियैं लसै, सन की वेदी भाल।
राखति खेत खरे खरे, खरे-उरोजनु बाल॥"

—वि० र० २४८

परन्तु नागरि नायिका के नयनो का वर्णन कवि ने श्लेष और विरोधाभास के साथ चमत्कारपूर्ण ढङ्ग मे किया है .

"खेलन सिखए अलि भलैं, चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग, नागर नरनु सिकार॥"

—वि० र० ४५

कुछ नीति एव कुछ भक्ति के दोहो के अतिरिक्त 'सतसई' के शेष सभी दोहे शृगार रस मे डूबे हुए हैं। कवि ने आलम्बन, विभाव में नायक-नायिकाओ को रख कर उद्दीपन मे नख-शिख, बसन्त, पावस और चन्द्रिका को अपनाया है। भावो के व्यक्तीकरण के लिए अनुभव, चेष्टाओ एव मुद्राओ का वर्णन विहारी ने वडे सुन्दर ढग से किया है। वस्तुत कवि की भाव व्यजना उनके हाव और अनुभाव मे ही सफल रूप से अभिव्यजित हुई है। नायिका, नायक से वार्तालाप करने का साधन ढूँढती है। विचार करने पर नायक की मुरली छिपा देती है। नायक के पूछने पर कहती है कि "मैंने नही छिपाई।" परन्तु उसकी हँसी से प्रकट होता है कि मुरली उसके पास है। दो प्रेमी एव विनोदशील सरस हृदयो का पारस्परिक वार्तालाप कवि ने वडे सुन्दर शब्दो मे व्यक्त किया है। निम्न पक्तियो मे रसिकेन्द्र विहारी ने हाव-भाव पूर्ण चित्र खीच दिया है :

"बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनि हँसैं, दैन कहैं नटि जाइ॥" वि० र० ४७२

दो प्रेमी हृदयो को एक दूसरे से बाँधने के लिए दृष्टि की डोरी किस तरह फेकी जाती हैं, इसे विहारी अच्छी तरह जानते हैं। मुद्रा तथा अनुभावो के निरूपण में कविवर सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापार को स्पष्टरूपेण सामने रख देते हैं। नाज़ भरी निगाहो से नायक के जिगर मे जख्म और दिल मे दर्द पैदा करने वाली नायिका अपना अचल उलटती हुई,और तिरछी नजरों के साथ गर्दन मोडती हुई अन्दर चली गई और नायक देखता ही रह गया। निम्नाकित पक्तियो मे नायिका किस प्रकार अपने नेत्रो को प्रिय के नेत्रो से मिलाती हुई चली जा रही है, यह देखने योग्य है

"भौंह उँचै आँचरु उलटि, मौरि मोरि मुँहु मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, दीठि-दीठि सौं जोरि॥"

—वि० र० २४२

नायिका ठिठक-ठिठक कर जबरदस्ती अन्दर जा रही है। ठिठकते हुए अन्दर जाने की अदा का नक्शा खीचने के लिए ही दोहे के तीसरे चरण मे 'नीठि-नीठि का द्विरुक्ति पूर्ण प्रयोग कवि ने बडे मार्के के साथ किया है। इस 'नीठि' की द्विरुक्ति ठिठकने का चित्र उपस्थित कर रही है।

'बिहारी सतसई' का प्रधान रस शृगार है। संयोग और वियोग दोनो का वर्णन विहारी ने किया है। वियोग शृगार के मुख्य भेद चार है—(१) पूर्वानुराग, (२) मान, (३) प्रवास, (४) करुण।

इन चारो मे प्रवास ही प्रधान है। इसमे वियोग शृगार की सारी सामग्री का समावेश हो सकता है। वेदना की तीव्रता भी इसमे पूर्णतया प्रदर्शित की जा सकती है। बिहारी ने 'सतसई' मे पूर्वानुराग और मान मे मान का और पूर्वानुराग का वर्णन अधिक किया है। परन्तु प्रवास-वर्णन मे तो कवि ने सीमा का अतिक्रमण सा कर दिया है।

कवि का विरह-वर्णन दस-पन्द्रह स्थलो पर ही स्वाभाविक और सगत बन पडा है। अधिकाश मे तो वह अतिशयोक्ति की चरम सीमा ही पार कर गया है। विरह मे नायिका इतनी दुर्बल और क्षीणकाय हो गई है कि साँसो की वायु से ही इधर-उधर उड रही है। इसमे नायिका घडी का पैंडुलम तो बन गई है, परन्तु कवि के ऊहात्मक चमत्कार के आगे उर्दू शायरो ने मस्तक टेक दिया है। बिहारी की नायिका साँसो के झूले पर झूलती हुई दिखाई तो पडती है। परन्तु 'नासिख' के 'आशिक' तो क्षीणता की सीमा को पार कर गए है और माशूक की याद मे इतिहाये लागरी से बिस्तर पर जूं या खटमल ही बन गए है। बिहारी और नासिख के शब्दो मे।

"इत आवति चलि जाति उत चली, छसातक हाथ।
चढी हिंडोरै सैं रहै, लगी उसासनु साथ॥"

(बिहारी)—वि० र० ३१७

"इतिहाये लागरी से जब नजर आया न मैं।
हँस के वे कहने लगे बिस्तर को झाडा चाहिए॥"

—नासिख

अन्य भी कई दोहो से विहारीलाल जी ने नाजुक खयाली और ऊहात्मक चमत्कारो में उर्दू शायरो को मात दी है।

नीचे उर्दू के एक शायर की दो पक्तियाँ देखिए। माशूक की जुदाई मे पैदा हुई नातुवानी ने ही आशिक को मौत से बचा दिया। वर्ना मौत उन्हे जरूर तलाश कर लेती और वे इस दुनियाँ से कूच कर जाते।

"नातुवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र मे।
कोने-कोने ढूँढती फिरती कजा थी, मैं न था ।।"

कला की ताशबाजी मे शायर के इस नहले पर हमारे कवि ने दहला मार कर अपनी जीत रखी है। बिहारी के ऊहात्मक चमत्कार मे कुछ सत्यता अवश्य है, परन्तु शायर की नाजुक खयाली सफेद झूठ तथा सारहीन गप्प बन गई है। बिहारी की क्षीणकाय नायिका से शायर साहब के आशिक की तुलना कीजिए। कवि की नायिका का शरीर इस प्रकार का हो गया है:

"करी विरह ऐसी, तऊ गैल न छाड़तु नीचु।
दीनैं हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु ।।"

कल्पना की उडान तो दोनो ने ही लम्बी भरी है, परन्तु अन्तर इतना है कि बिहारी की नायिका विरह से इतनी क्षीण तथा सूक्ष्म बन गई है कि मृत्यु चश्मा लगा कर भी उसे नही देख सकती, परन्तु उसके शरीर का अस्तित्व है अवश्य। इसके विपरीत शायर साहब के आशिक का तो वजूद ही नही। वे 'नासिख' का समर्थन कर रहे हैं। क्या मजाक हो रहा है? जब आशिक वहाँ थे ही नही तो कज़ा (मौत) उन्हे क्या खाक तलाश कर रही थी? पाठक गण आशिक की हालत देखकर उसके साथ समवेदना प्रकट नही करते और न उनका साधारणीकरण होता है। वे उल्टे उक्तियो की करामात मे फँस जाते हैं और शायर का मजाक उडाने लगते हैं। उर्दू शायरो की नाजुक खयाली और तखय्युल परवाजी में हमारे कवि ने सदा ही बाजी मारी है।

अलंकारो की दृष्टि से 'बिहारी सतसई' के दोहो को देखे तो कोई दोहा ऐसा नही जो किसी शब्दालंकार या अर्थालकार से चमत्कृत न हो। बहुत से दोहे तो दो-दो, तीन-तीन अलकारो से सुसज्जित है। निम्नाकित दोहे मे यमकालकार का चमत्कार देखिए:

"कनक कनक तें सौगुनौ, मादकता अधिकाइ।
उहिं खाऐ बौराइ, इहिं पाऐ ही बौराइ ।।"

—बि० र० १९२

यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षाओ की भरमार तो विहारी ने की ही है। अतिशयोक्ति मे भी कमाल ही किया है, परन्तु ध्वनिमूलक अलकार का चमत्कार तो दो-चार स्थलो पर अपना स्वरूप खडा कर देता है। उनकी शब्द-योजना भी मार्के की हुई है। निम्नाकित दोहो मे ध्वनिमूलक अलंकार देखिए:

"रनित भृङ्ग-घण्टावली, झरित दान मधु-नीरु।
मन्द मन्द आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज-समीरु ।।"

—बि० र० ३८८

"ज्यों-ज्यों आवति निकट निसि, त्यौं-त्यौं खरी उताल ।
झमकि झमकि टहलै करै, लगी रहचटै बाल ।।"

—वि० र० ५४३

"तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट ।
विकट जटे जौ लगु निपट खुटै न कपट-कपाट ।।"

—वि० र० ३६१

प्रथम दोहे के शब्दो मे भौरो की गुञ्जार और हाथी के घन्टो की ध्वनि साफ़ सुनाई पड रही है । दूसरे दोहे मे बाला के आभूषणो की झमझमाहट निहित है । तीसरे दोहे मे तो 'ट' अक्षर की अनेक बार आवृत्ति (वृत्यानुप्रास), किवाडो के खुलने और भिडने की ध्वनि को पूर्णतया प्रकट कर रही है ।

बिहारी ने प्रकृति-वर्णन उद्दीपन रूप मे ही अधिक किया है, आलम्बन रूप में तो बहुत कम । मानव-मानवी शरीर के सौन्दर्योपासक[१] इस कवि ने मानव-मन, प्रकृति और मानव-शरीर को ही सरस शब्दो मे शोभनीय बनाया है । रगो की विचित्र एवं सुभग संयोजना करने मे बिहारी कुशल कलाकार है

"अधर धरत हरि कैं परत, ओठ-डीठि-पट-जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष-रँग होति ।।"

—वि० र० ४२०

—(लाल, सफेद, पीले और हरे रगो की सयोजना)

"तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु ।
जिहिं-ब्रज केलि निकुञ्ज-मग-पग-पग होतु प्रयागु ।।"

—वि० र० २०१

—(श्वेत, श्याम और रक्त की सयोजना)

"सोहत ओढै पीतु पटु स्याम, सलौनै गात ।
मनौ नीलमनि-सैल पर, आतपु पर्‌यौ प्रभात ।।

—वि० र० ६८६

—(नीले और पीले रंग का सुयोग)

'सतसई' के मगलाचरण वाले दोहे मे कवि ने नीले और पीले रगके सयोग से हरे रंग का निर्माण किया है .

"मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परैं, स्यामु हरित-दुति होइ ।।"

—वि० र० १

यदि हम 'सतसई' को गम्भीर दृष्टि से देखें तो कहना पडेगा 'आर्या सप्तशती' और 'गाथा सप्तशती' के छन्दो का अनुवाद करने मे भी कवि ने कमाल कर दिया

है। प्राय: यह देखा जाता है कि एक बोतल का इत्र जब दूसरी में उडेला जाता है तो उसकी गन्ध थोड़ी बहुत उड जाती है। परन्तु न मालूम कुशल कलाकार महाकवि बिहारीलाल ने शृंगार के इत्र को किस कौशल से अपनी बोतल मे उडेला है कि गन्ध उडने के बजाय दूनी बढ गई है।

"जावरण कोस विकासं परवइ ई सीस मालई कलिम्रा।
मग्ररन्द-पाण-लोहिल्ल भ्रमर तावच्चित्र मलेसि।।"

(गाथा सप्तशती)

"नहि परागु,नहि मधुर मधु, नहि बिकासु इहि काल।
अली,कली ही सौ बँध्यौ, आगैं कौन हवाल।।"

(बिहारी सतसई) वि० र० ३८

कवि के दोहे मे 'आगे कौन हवाल' मे जो ध्वनि है उनके कारण अनुवाद मूल की अपेक्षा सरस और सुन्दर हो गया है।

" वाचया किं भण्यता, कियन्मात्र वा लिख्यते लेखे।
तव विरहे यद् दुखं, तस्य त्वमेव गृहीतार्थः।।"

(आर्या सप्तशती)

"कागद पै लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात।।"

(बि० स०) बि० र० ६०

"तस्य त्वमेव गृहीतार्थः" की अपेक्षा "कहि है सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात" मे सरसता, माधुर्य तथा संकोच मिश्रित प्रणय-निवेदन की कसक अधिक मिलती है। 'आर्या सप्तशती' के रचयिता से बढ कर बिहारी ने काव्य-कला की कलाबाजी मे बाजी मार ली है। कवित्व के क्षेत्र में दोहा श्लोक से आगे निकल गया है।

अब हम महाकवि बिहारी की बहुज्ञता पर भी विचार करे तो पता लगता है कि कवि का सासारिक ज्ञान बहुत विस्तृत है। उसे मानव-समाज के सज्जन से सज्जन और दुर्जन से दुर्जन की पहिचान है। जहाँ वह सच्चे प्रेमी के हृदय की दशा व्यक्त करता है वहाँ लम्पट और काइयाँ नायक का मनोविज्ञान भी समझता है। मनोविज्ञान के आधार पर कौन सी बात कब कहनी चाहिए, इसे बिहारी खूब जानते थे। इशारेबाजी और चालबाजी भी कोई सीखे तो इस कवि से। जैसे :

लरिका लैबे के मिसनु लंगरु मो ढिग आइ।
गयौ अचानक आँगुरी, छाती छैलु छुवाइ।।"

बि० र० ३८६

वासना और रूप के लोभी, लम्पट और चंट नायक किन-किन बहानो से

नायिकाओ के उरोजो का स्पर्श किया करते हैं, उन सब की जानकारी बिहारी को थी। विपरीति रति की बाते भी लम्पटो की घोर कामवासना की परिचायिका हैं। नायिकाओ की प्रचण्ड कामवासना का परिचय भी कवि ने अपनी कविता द्वारा कराया है।

"विहँसि बुलाइ,विलोकि उत, प्रौढ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति, पूत कौ पिय-चूम्यो मुँहु चूमि ।।"

—वि० र० ६१७

बिहारीलाल जी ने बाजीगरो, नटो और दानियो (नट के ढोलियो) का वर्णन भी अप्रस्तुत रूप से अपने दोहो मे किया है।

"थोरैं ही गुन रीझते, विसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए, आजकाल्हि के दानि ।।"

—वि० र० ६८

सतसई के कुछ दोहो मे सहेट आदि के सिलसिले से खेत की फसलो का विवरण भी मिलता है। अत्तार लोग अर्क किस तरह खीचते हैं, इसे भी बिहारी जानते थे। नटसाल का वर्णन भी कई दोहो मे मिलता है। इस प्रकार की बाते कवि की रचना मे गौण रूप से मिलती हैं। इन बातो का साधारण ज्ञान कवि को अवश्य था। हम यह नही कह सकते कि वे इनमे पारंगत थे।

बिहारी मे जहाँ अनेक प्रकार का ज्ञान है वहाँ बात को सूत्र रूप मे कहने की चमत्कारमयी वाक्पटुता भी है। उनके दोहो मे भरी हुई व्याख्या यह सिद्ध करती है कि कविवर बिहारी ने गागर मे सागर को लाकर भर दिया है। दोहा जैसे छोटे छन्द मे भावो का समुद्र भरा पडा है। निम्नांकित दोहो की व्याख्या मे पृष्ठ के पृष्ठ रंगे जा सकते हैं·

"मेरी-भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं, स्यामु हरित-दुति होइ ।।

—बि० र० १

"चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यौ न सनेह गँभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ।।

—वि० र० ६७७

बिहारी की कविता को पढने से विदित होता है कि कवि को वेदान्त-दर्शन की भी अच्छी जानकारी थी। ससार मिथ्या है। केवल एक ब्रह्म ही सत्य है। संसार उसी का रूप है।[२] इस अद्वैत वादी सिद्धान्त का प्रतिपादन कवि ने कविता के रस मे डुबाकर किया है।

'मैं समुझ्यौ निरधार,यह जगु काँचो काँच सौ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥'

—वि० र० १८१

'मोहन-मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
वसतु सु चित-अन्तर, तऊ प्रतिबिम्बितु जग होइं ॥'

—वि० र० १६१

सांसारिक बधनो को कवि ने माया का रूप बताया है और इस बन्धन से छूटना भी असम्भव सा ही माना है।

को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत, कुरङ्ग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥

—वि० र० ६७१

नीति तथा मनोविज्ञान के पडित बिहारीलाल अच्छी तरह जानते हैं कि मित्रता किस प्रकार बनी रह सकती है। राजसी ठाट-बाट की रज (धूल) से मित्र का मन मलिन हो जाता है। समान भूमि पर खडे होकर ही मित्रता निभाई जा सकती है।

"जौ चाहत,चटक न घटै,मैलौ होइ न मित्त।
रज राजसु न छुवाइ, तौ नेह चीकर्नौ चित्त ॥"

—वि० र० ३६६

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो का अध्ययन करके महाकवि बिहारी जान गए थे कि दुहरा शासन प्रबन्ध प्रजा को कितना दु खदाई होता है। तभी लिखा भी है कि

" दुसह दुराज प्रजानु कौ क्यों न बढै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि-चन्दु ॥"

—वि० र० ३५७

इसे हम जानते हैं कि एक बिन्दी के लगाने से कि अंक का मूल्य १० गुना हो जाता है। दो के आगे एक बिन्दी लगाने से (२०) बीस हो जायेगा। इस बीस का मूल्य दो से दस गुना है। रकम लिखने मे टेढी बकारी लगा देने से दाम रुपए बन जाते हैं। गणित की इन बातो को तो सभी जानते हैं। परन्तु काव्य के कलेवर मे कला की कुशलता के साथ उन्हे प्रदर्शित करना हमारे कवि का ही काम है। गणित भी कमनीय काव्य का सुयोग पाकर सरस बन गया है ·

" कहत सबै बेदी दियैं आंकु दसगुनौ होतु।
तिय-लिलार बेदी दियैं अगिनितु बढतु उदोतु ॥"

—वि० र० ३२७

" छुटत अलक मुख परत हो, वढिगो इतो उदोत ।
बंक वकारी देत ज्यो दाम रुपैया होत ।।"
(वि० र० मे नही है)

ज्योतिष का यह एक सिद्धात है कि एक राशि पर जव मगल, चन्द्रमा और वृहस्पति आ जाते हैं तब सारी पृथ्वी वर्षा के कारण जलमयी हो जाती है । इस बात को नारी (स्त्री, नाडी या राशि) शब्द के साथ कवि ने खूब समझाया है ·

" मगल बिंदु सुरगु, मुखु ससि,केसरि-आड गुरु ।
इक नारी लहि सगु,रसमय किय लोचन-जगत ।।
—वि० र० ४२

" आयुर्वेद का प्रसिद्ध सुदर्शन चूर्ण भयकर से भयकर ज्वर का नाश कर देता है । नायिका का भी काम-ज्वर अपने नायक के सुदर्शन (सुन्दर दर्शन) के द्वारा ही विनष्ट होगा ।" इसे कवि ने एक दोहे मे बताया है ।

क्या भक्ति क्या शृगार, क्या शिकार, क्या काइयाँपन और क्या भोग-विलास सभी कुछ बिहारी की लेखनी की नोक पर सधे हुए हैं । कविवर बिहारी अपनी 'सतसई' के दोहो मे अनेक रूपो मे अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । उनके गागर मे भरे सागर की गहराई कितनी है और सागर के रत्नो का मूल्य क्या है यह कोई बिरला कला-मर्मज्ञ ही समझ सकता है । 'सतसई' पर हुई दर्जनो टीकाएँ भी इस महाकवि की प्रवीणता और प्रगाढ पाडित्य की परिचायिका हैं।

सदर्भ सकेत :

१—डा० रामविलास शर्मा के अनुसार विहारी के सौन्दर्य-चित्रण मे इन्द्रिय-बोध की प्रधानता है परन्तु फिर भी उसमे भावना और विचारो का पुट है । शर्मा जी का कथन है—"रूप, भावना और विचार की एकता से ही कला की दृष्टि सम्भव है ।" देखिये 'अवन्तिका' मार्च ५४ ।

२—एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या ।
जीवो ब्रह्मैव नापर , सर्व खल्विद ब्रह्म ।।
—अद्वैतवाद, स्वामी शकराचार्य

कवि बिहारी की चित्रकार दृष्टि

● रामगोपाल विजयवर्गीय

कविको कवि बनने से पहले चित्रकार बनना पडता है। वह चित्रकार की दृष्टि से अपने निर्धारित विषय को देखता तथा उसके सौन्दर्य को चित्र की भाँति अपने मस्तिष्क मे अंकित करता है, तदुपरान्त शब्दो की खोज मे निकलता है और यत्र-तत्र बिखरे हुए शब्द समूहो को भाषा के विस्तृत क्षेत्र से निकाल कर उनकी मालाएँ गूंथने लगता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सर्वप्रथम शब्दो की एक पंक्ति जिसमें शब्द स्वत अपने-अपने स्थान पर विजडित से होते हैं, मस्तिष्क मे घूमने लगती है और कवि उन शब्दो मे भावो के अनुकूल दृश्यो की खोज करता है तथा सौन्दर्य निरीक्षण में तत्पर होता है। चित्रकार के सौन्दर्य बोध का कौशल कवि के लिए उतना ही वाछनीय है जितना चित्रकार के लिए।

कवि कभी-कभी तो इतना चित्रकार बन जाता है कि चित्रकार को कुछ करने देने का अवसर ही नही देता। रग-रेखा सब कुछ समाप्त करके रख देता है। सफल कवि भी वही है जो चित्रकार की दृष्टि रखता है और कवि कल्पना की ऐसी कृतियाँ जनसाधारण के अधिक निकट पहुँचती है और अधिक प्रिय भी होती हैं। कारण कि मानव बुद्धि को सूक्ष्म से स्थूल ग्रहण करने मे अधिक सुविधा जान पडती है। इस प्रकार के रूप की व्याख्या करने वाले कवियो मे बिहारी का नाम उल्लेखनीय है। बिहारीजी ने कविता से अधिक चित्र ही बनाये हैं। उनके अधिकतर दोहो मे एक रूपसी नायिका यौवन की प्रथम अरुणिमा से अनुरजित दिखलाई पडती है बिहारी अपनी इन नायिकाओ को रसिको के सम्मुख लाकर खडा कर देते हैं। उनके नूपुरो की झकार और लावण्य के मनमाने रूप नेत्रो मे नाचने लगते हैं। वे चित्र इतने सजीव इतने मनमोहक और चित्रकना की दृष्टि से इतने सर्वांग सुन्दर हैं कि कोई बात कहने को बाकी नही रह जाती। कही रेखा सौन्दर्य, कही वर्ण-वैचित्र्य, कही आकृति विधान, कही रमणीयता और कमनीयता, प्रत्येक अगों को पृथक-पृथक रूपो मे चित्रित किया गया है। उनका प्रथम दोहा जो सतसई के प्रारम्भ मे आता है वर्ण-वैचित्र्य का सुन्दर उदाहरण जान पडता है। दोहा :

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होइ॥

राधा का पीत चम्पई रग है और कृष्ण नीले हैं। नीले रग दो प्रकार के

होते है नील और अति नील अर्थात (इराडीगो) यही रग श्याम मेघ का होता है । यह नील जब पीत मे मिल जाता है तो गहरा हरित हो जाता है । यही हरितद्युति चित्र की पृष्ठ भूमि मे चारो ओर आभा सी बनकर छा गयी है, वैसे भी पृष्ठ भूमि मे हरित रग का होना स्वाभाविक है । कारण कि किसी घने कुंज मे राधा-कृष्ण खडे हैं, कुजो के वृक्षो मे छाई हुई हरित आभा के लिए हरा रग ही पृष्ठ भूमि मे होना यथार्थ था, यह कविका चमत्कार है कि पृष्ठ भूमि को हरित रंग की वनाने के लिए एक कारण उपस्थित कर दिया है । वैसे भी नील और पीत रग के लिए पृष्ठ भूमि यदि हरित न हो तो आकृतियाँ प्रकाश मे न आती और अन्य रग अनुपयुक्त सा जान पडता । सारा चित्र हरी झाँई मे डूवा हुआ दिखाया गया है। दर्शक के नेत्र किसी विजातीय रग की ओर आर्कषित होकर प्रधान आकृतियो की ओर से विचलित नही हो सकते। आकृति विधा की दृष्टि से उनके सयोजन मे कवि ने वडी कुशलता दिखलाई है । राधेश्याम के अतिरिक्त और कोई वस्तु विक्षेप के रूप मे सम्मुख नही आती । पृष्ठ भूमि का रग भी आकृतियो को प्रकाश मे लाने का निर्देश करता है । पीत और नील दो ही रगो की दृष्टि तल्लीन होकर रह जाती है, इसी प्रकार का कौशल निम्न दोहे मे दृष्टिगत होता है

निसि अँधियारी नील पटु पहिरि,चलो प्रिय-गेह ।
कहो, दुराई क्यो दुरै दीप-सिखा सी देह ।

अभिसारिका नायिका अपने प्रियतम से मिलने जा रही है, उसे कोई देख न ले इसलिए नीले वस्त्र पहिने है, गहन तिमिरा रजनी की कालिमा मे नील वस्त्रो का चुनाव नायिका के चातुर्य का द्योतक है, कवि को ज्ञान है नीला रग काले मे तदकार हो जायगा, अभिसारिकाओ को प्राय इसी रग के वस्त्र पहिने देखा गया है । क्या संस्कृत कवियो की कल्पना मे और क्या हिन्दी, मे दीपशिखा जैसी मनोहारिणी उपमा है, काले रग मे पीले रग की प्रखरता सहसा नेत्रो को आर्कषित कर लेती है । कवि नायिका की रूप छटा दिखाने के लिए दीपशिखा की ओर सकेत करता है । अन्धेरी रात मे जलती दीपक की शिखाने भी चमत्कार उत्पन्न कर दिया है, नेत्र कुछ न देख पाएँ केवल दीपशिखा, वह दुराई दुर भी तो नही सकती, दीपशिखा का प्रकाश मानो आगे बढता जाता है । दृष्टि के सम्मुख दीपशिखा के अतिरिक्त कोई आधार ही नही है जहाँ वह रुक सके । सारे चित्र मे एक ही आकृति है, पर वह चित्र का प्राण बन गयी है यही भाव लेकर अनेको चित्रकारो ने चित्र बनाये हैं बनाये भी क्यो न ? कैसी अपूर्व सौन्दर्य छटा उपस्थित की गयी है । ऐसा ही एक दोहा है :

लै चुभकी चलि जाति जित जित जल-केलि-अधीर ।
कीजत केसरि-नीर से तित तित के सरि नीर ।

कोई किशोरी प्रथम आरूढ यौवना सरिता के उज्ज्वल नीर में स्नान कर रही है। उसकी क्रीडाओ से विलोडित हुए जल मे गोरा प्रतिबिम्ब कैसी अनुपम छटा दिखला रहा है, मानो सरिता के नीर मे केसर घोल दी गयी है। उसकी काति से युक्त जल मे नायिका के गोरे अगो की आभा चारो ओर बिखर गयी है,जहाँ वह जाती है जल केसरमय बन जाता है। पारदर्शक जल मे प्रतिलक्षित होता हुआ कमनीय कलेवर आँखो को चित्रलिखित सा बना देता है, चुभकी लेती नायिका और केलि मे रत उसका चापल्य दर्शनीय है :

रेखा सौन्दर्य का एक उदाहरण देखिए :

वढत निकसि कुच-कोर-रुचि, कढत गौर भुजमूल।
मन लुटि गौ लोटनु चढ़त, चोटत ऊँचे फूल।

एक नायिका फूल तोड रही है, कवि की दृष्टि कैसे यह दृश्य देखकर मौन रह जाती है ? उसके भुज-मूल तथा कुच कोर ऊँचे फूल चूटते समय दिख जाते हैं, उदर की त्रिवली पर मन लुटकर रह जाता है। आकृति मे कैसी अनुपम भंगिमा, कैसा अनुपम लावण्य है। ऊँचे होकर फूल तोडने की क्रिया मे रत होने से कैसी विलक्षण सौन्दर्य धारा बह निकली है। पीछे मुडकर देखती है एक पार्श्व से दृष्टि मे आई आकृति का रेखा सौन्दर्य किसी कुशल कलाकार का अकन जान पडता है। साधारण चित्रकार इसी आकृति को बनाने मे कठिनता से सफलता प्राप्त करेगा।

एक और रेखा सौन्दर्य देखे जो बिहारी जी का प्रसिद्ध दोहा है। रूप की साधारण शब्दो मे केवल रेखाएँ खीच डाली हैं

सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल।
इहि बानक मो मन सदा बसौ, बिहारीलाल।

मुकुट, काछिनी, मुरली, माल सारी शोभाएँ दौडती अँगुलियो से रेखाबद्ध कर दी हैं। बानक कितना सुन्दर है। त्रिभगीलाल कृष्ण अनोखी अदा से खडे हैं, कवि यह बानक-बनाव देखकर मुग्ध रह जाता है, कामना करता है यही आकृति मरण-पर्यन्त सदा मेरे सम्मुख रहे। मुकुट का झुकाव मुरली को धारण किए अँगुलियाँ, पुष्पो की माला कटिपर काछिनी, कैसा-कैसा मनोहर रूप भगवान् का प्रस्तुत किया है इसमे रग नहीं केवल रेखाएँ हैं।

रग इसमे दिया गया है देखिये :

सोनजुही सी जगमगति अँग अँग जोवन-जोति।
सुरँग कसूँभी कचुकी दुरग देह-दुति होति।

देह की द्युति दुरग हुई जाती है, यौवन की प्रखर ज्योति अग-अग से छलकी पडती है, बिखरी जाती है,इसपर कचुकी ने तो गजब ढा दिया है। जुहीं का पीला रग, कचुकी का लाल,रग पूरा लाल भी नही कुसुम्मी। कुसुम के फूल जैसी जुही और

कुसुम्मी रंगो मे अन्तर ही कितना है। पीला रंग थोडा भी लाल मे मिश्रित होकर कुसुम बन जायगा। देह द्युति पर भी यही रग होते हैं पीला, लाल अर्थात् सिन्दूर और घना पीला। शरीर के रंग गौरिक आभा के लिए यही होते हैं। रक्ताभकांति यौवन की पूर्णता को प्रतिलक्षित करती है। चम्पई रग पर कुसुम बिखेरी गयी है, कंचुकी का रग तो रहता ही कहा है, रग मे रग मिल जाने से कवि को विवस्त्र नायिका के अंगो की झाँकी हो गयी है। देह की द्युति दुरंग हो गयी अर्थात् द्विगुण रग चढ़ गया है और कुसुम मे लाल रग अधिक होने से दो रग बन गए हैं।

अब आकृति सयोजन का एक उदाहरण देख लें। आप विश्वास करेंगे कि कवि बिहारी, कवि से अधिक चित्रकार है। वे प्रत्येक दोहे मे चित्रो के भिन्न-भिन्न गुणो को स्थान देते हैं। कही रेखा का चमत्कार, कही भाव का, कही रग का, कही संयोजन का, कही पृष्ठ भूमि का कोई भेद नही छोडा है। सब पर एक और अनेक अनेक दोहो को शब्दबद्ध किया है .

पाइ महावरु दैन कौं, नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एडी मीडति जाइ।

दो आकृतियो का संयोजन चित्र मे है नायिका और उसकी नाइन दोनो आकृतियाँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, यदि एक हटा दी जाय तो चित्र अपूर्ण हो जायगा। दोनो के बैठने मे चित्र की पृष्ठभूमि तक परिपूर्ण हो गयी है। एक रंग सयोजन का चित्र देखिए :

चमचमात चचल नयन बिच घूँघट-पट झीन।
मानहु सुरसरिता-विमल जल उछरत जुग मीन॥

झीने घूघट मे दोनो चचल नयन चमचमा रहे हैं, जो ऐसे जान पडते हैं, मानो गगा के निर्मल नीर मे दो मछलियाँ उछल रही हो, दो उछलती मछलियो का रूपक कितना सुन्दर पडा है झीने पट में नयनो की ऐसी चचलता प्राय. ऐसा ही दृश्य उपस्थित कर देती है, मीन के अतिरिक्त उछलने के लिए और उपमा भी क्या होती। झीना पट सुर सरिता के नीर जैसा पारदर्शक और उसमे मीन समान नयनो की उछल-कूद दर्शनीय है, जिन्होंने ऐसे नयन देखे हैं कवि के सौन्दर्य बोध की सराहना किए बिना न रहेगे।

इस प्रकार कवि चित्रकार के लिए प्रेरणा देता है और चित्रकार कवि को प्रेरणा दिया करता है। दोनो एक दूसरे की कृतियो को ग्रहण करने मे दत्तचित्त रहते हैं लेकिन कवि की कल्पना कभी-कभी चित्रकार की रेखाओ से इतनी दूर चली जाती है कि तूलिका को लिए देखता रह जाता है और यही कार्य बिहारी ने किया है।

बिहारी सतसई में संयोग श्रृंगार

● डा० हरीश

मध्य युग के कवियों मे प्रसिद्ध ग्रन्थ सतसई की रचना द्वारा बिहारी को शीर्षस्थ स्थान प्राप्त है। उनकी सतसई एक ओर उन्हे लक्षण ग्रन्थ रचयिता आचार्यों की गरिमा से अभिमडित करती है, तो दूसरी ओर उनमे रस-सिद्धि कवि की असाधारण क्षमता का आधान करती है। राज दरबारी कवि होने से कवि का व्यक्तिगत जीवन भी रंगीनियो से भरा पूरा था। शृंगार राजदरबारो के लिए काव्य का प्रधान रस माना जाता रहा। इस काल मे रति भाव की प्रमुखता एव अतिव्याप्ति पर हमे अनेक वर्णन मिल जाते हैं और शृगार की शास्त्रोक्त व्याख्या ने उसे रस-राजत्व प्रदान किया है। बिहारी ने भी अपनी कृति सतसई में सबसे अधिक वर्णन शृंगार के ही किए हैं। उनके कृतित्व मे शृगार का सागर सर्वत्र ठाठे मारता परिलक्षित होता है और उनका कवि शृगार के अनूठे चित्र प्रस्तुत करने मे आकठ निमग्न है।

शृगार सामान्यत. दो रूपो मे प्रस्तुत किया गया है। एक सयोग पक्ष और दूसरा वियोग पक्ष। यो वियोग पक्ष को अधिकतर कवियो ने बडे सामर्थ्य से कहने का प्रयास किया है। उस पर हरेक पारम्परिक कृतिकार का मन झूमता है। यही नही, कुछ आलोचको ने तो वियोग को इतना महत्व देने का प्रयास किया है यह कह कर कि वियोग मे प्रेम का सचय होता है और सयोग मे प्रेम का क्षय। परन्तु हमे यह धारणा कि सार्वभौमिक या पूर्व स्वायत्त नही लगती। वियोग चाहे स्वकीया का हो, चाहे परकीया का, वह सयोग के बाद ही होगा। बिना सयोग के जीवन मे आनन्द कैसा? और बिना संयोग के काव्य के प्रति व्यामोह होना भी असम्भव है। केवल दर्शन मात्र से प्रेम हो जाना और उसके बाद वियोग की स्थिति उपस्थित हो जाने मे कदाचित् वह तीव्रता आना कठिन है, जो संयोग के मर्मस्पर्श के पश्चात् होने वाले वियोग मे आती है। अत. सयोग पक्ष की क्षमता वियोग पक्ष से अधिक होना अत्यन्त स्वाभाविक है, पर वियोग मे चाहे वह प्रेमी का हो अथवा काव्य का, अधिक ऊहापोह और वर्णन चमत्कार करने का अवसर तो कवि को मिल ही जाता है। लगता है वियोग होते ही जैसे कवि का वर्णन परिसर अपेक्षाकृत सयोग के अधिक व्यापक हो जाता है। इसलिए कवि उनका परोक्ष और अपरोक्ष दोनो रूपो मे खुल कर वर्णन कर लेता है। सयोग के साथ स्थिति ऐसी नही है। सयोग मे सभोग शृंगार के मर्यादा पूर्ण वर्णन का प्रतिबन्ध कवि पर होता है और यदि प्रगल्भ होकर

उसने कही भी मर्यादा का अतिक्रमण किया भी तो वही संयोग उसके काव्य को निर्दोष नही रहने देता । सयोग मे अधिक उत्तानता, वर्णन की गहराई और रसोद्रेक की अभिसिद्धि कई बार कवि के लिए बाधा बन जाती है और सम्भवतः सचेतक कवि इसीलिए संयोग वर्णन मे अधिक मनोयोग से रहने मे झिझक और सकोच का अनुभव करता है । पर यह सारी बात रसज्ञ कवि बिहारी के काव्य मे प्रतिकूल दिखाई पडती है । बिहारी सतसई मे बिहारी ने सयोग शृगार के ऐसे अद्भुत और विदग्ध वर्णन किए हैं जिन्हे पढकर पाठक को विशिष्ट आनन्द की अनुभूति होती है । सकोच और वर्णन मे झिझक ने बिहारी का कही भी रास्ता नही रोका है ।

सतसई के इन छोटे-छोटे दोहो मे संयोग की ऐसी जीवन्त अनुभूतियाँ मिलती हैं कि पाठक बरवस उनके सौन्दर्य के अतराल मे प्रविष्ट होता जाता है । यो बिहारी को भी संम्भवत· अपने शृंगार वर्णन की तीव्रता का बोध उस समय हो गया था, जिसे वे अपनी आवाज मे—"अनबूडे बूडे तरे जे बूडे सब अग" कह कर स्पष्ट करते हैं ।

बिहारी का प्रेम अथवा यह रति-रग सौन्दर्य सापेक्ष है । बिना सौन्दर्य के आदमी मे अनुराग नही उभरता । उसके आलबन को सुन्दर होना ही चाहिए । अत· बिहारी-सौन्दर्य की मासलता से तथा उसके बाह्य रूप-स्वरूप से ही अधिक प्रभावित थे । वे सदैव चाक्षुष-सौन्दर्य पर ही रीझते थे । सौन्दर्य के परोक्ष आलम्बन पर उन्हे शायद ही कभी विश्वास हुआ हो । उनका प्रेम सौन्दर्य-जन्य प्रेम होने से कही भी अलौकिकत्व का संस्पर्श नही कर पाता, उसका सीधा सम्बन्ध तो हमारे इन्द्रिय-जन्य विलास व्यापारो से ही रहा है । पर इतना होने पर भी यह मानना पडेगा कि जो कुछ भी अपने आप मे है, सामान्य नही, भव्य और भाव्य दोनो है । उनकी नायिकाओ और उनके प्रेमियो के प्रेम मे आत्म-बलिदान, त्याग और किसी भी प्रकार के जीवट को कही स्थान नही है । वह अपने ही ढग से चलता है और उसके सभी पात्र, लगता है, जैसे प्रेमी की एक पद्धति विशेष मे बधे हो और उस प्रतिबन्ध मे सब अत्यन्त सन्तुष्ट हों, वस्तुत. इसीलिए उनका समस्त सयोग परम्परा भुक्त संयोग ही अधिक लगता है पर फिर भी वह अपने आपको "गिरि ते ऊँचे रसिक मन" कह कर सुख की सांस लेता है ।

बिहारी सतसई के शृगार वर्णन पर उनके व्यक्तिगत जीवन, राजदरबारी शान-शौकत और विलासिता का प्रभाव तो स्पष्ट लगता ही है परन्तु सतसई के वर्ण्य विषय (कान्टेट) पर अमरूक और हाल जैसे कृतिकारो की भी पूरी-पूरी छाप है । सतसई मे संयोग के स्थूल चित्र इस कथ्य के प्रमाण हैं और उनसे यह बात बडी सरलता से बोध गम्य होने लगती है कि बिहारी स्वय शृगारिक वातावरण मे आमूल-चूल डूबे रसज्ञ पुरुष थे । बिना शृगार मे आकठ डूबे उसके मर्म को इतने

सूक्ष्म रूपो मे प्रकट करना किसी साधारण प्रतिभा सम्पन्न कृतिकार के लिए सम्भव नही होता।

सयोग शृंगार का प्रधान आलम्बन नारी है। उसके अंग-प्रत्यग, उसकी शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाएँ उसे उद्दीप्त कर रसोद्रेक के लिए पुष्ट करती हैं। इसी तरह नायक की चेष्टाएँ और कार्य-व्यापारो का भी अपना महत्व है जो नारी की समस्त उद्दीप्त भावनाओ के मूल मे प्रधान तत्वो के रूप मे कार्य करते हैं। बिहारी के संयोग वर्णन मे जो अनूठे और विदग्ध-चित्र मिलते हैं उनको यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। ये सब वर्णन नायिका और नायक के आलम्बन प्रसूत हैं। पहले किसी नायिका की कल्पना कर लीजिए जो अनिद्य सुन्दरी और अभिन्न नवयौवना हो और फिर उसके किसी असाधारण प्रेमी की बात भी सोच लीजिए तभी इस वस्तुनिष्ट सौन्दर्य की विद्ग्ध अभिव्यक्ति को आप हृदयगंम कर पाएँगे। इन सयोग-जन्य तत्वो मे काम तत्व (रौमाटिसिजम), सौन्दर्य तत्व और सौन्दर्य-बोध एवं नारी का आगिक, वाचिक और कायिक सौन्दर्य-शृगार आदि प्रेम-तत्व ही प्रधान हैं। इन विविध चित्रो मे सयोग शृगार अनेक कोटियो मे मुखरित हुआ है और वह सब अपने आप मे भौतिक आधार को लेकर ही चला है इन नायिकाओं मे शारीरिक आकर्षण और तज्जन्य कार्य व्यापारो के भावन-मूल्य ही देखने को मिलेगे। बिहारी ने नायिकाओ के विविध रूपो मे सयोग के वर्णन किए हैं। चाहे वह स्वकीया मुग्धा हो, नवोढा हो, मध्या हो, प्रौढा हो, धीरा हो या अधीरा। लगता है बिहारी के सयोग वर्णन के मिठलौने शिल्प मे वे सभी सराबोर हैं। परकीया के वर्णन इनमे अपना एक विशिष्ट ही रूप प्रस्तुत करते हैं, इनमे अखण्ड नवयौवना, परकीया नवोढ़ा, गुप्ता, भाव तया सुरतगोपना, विद्ग्धा तथा विलक्षिता, मुदिता, अनुशयाना तथा कुलटा और साधारणी नायिकाएँ भी आती हैं।

स्वकीया मुग्धा मे यौवन और काम के प्रथम संचार के कारण लज्जाधिक्य होता है। उसमे रति चातुर्य अत्यन्त तीव्र नही होता। यही नहीं उसका भोलापन उस समय मुखर होता है जब वह स्वयं नही जान पाती कि उसके अगो मे यह विलक्षण परिवर्तन कैसा है। वह छिप-छिप कर एकान्त में उन्हे देखकर विस्मित होती है, किशोर और चापल्य की इस अनूठी अन्विति को कवि ने खूब खुल कर कहा है, वय सन्धि का एक सुन्दर उदाहरण है :

> छपि छपि देखति कुचनि-तनु कर सौ अगिया टारि।
> नैननि मे निरखति रहै, भई अनोखी नारि।।

कटि मे कम्प, वक्ष पर भार और चाल मे एक विचित्र प्रकार का वजन यौवनारम्भ की प्रतिक्रिया है। उसमें संकोच नही, डर नही, उसे क्या पता कि उसकी देह-देहरी पर काम और यौवन के कदम पड गए हैं।

बरजै दूनी हठ चढै ना सकुचै, न सकाय।
टूटति कटि दुमची-मचक, लचकिलचकि बचि जाय।। ६८६।।
छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोवनु अंग।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता-रग।।

वय. सन्धि के परिप्रेक्ष्य मे आगे कवि का सौन्दर्य चित्रण और नख-शिख वर्णन अवसर सहज ही उपलब्ध हो जाता है। नायिका की कोमलता का इन्तहा देखिए :

छाले परिबे के डरनि सकै न हाथ छुवाय।
झझकत हियैं गुलाब के, झँवा झँवैयत पाइ।। ४८३।।

यही नही, केसर का अंगराग भी नायिका के रग मे मिलकर खो जाता है :

कंचनतन धन बरन बर रह्यौ रग मिलि रग।
जानी जाति सुबास ही, केसरि लाई अंग।। ३५६।।

इस तरह नायिका की सौन्दर्य जन्य आभा किन्ही बाह्य प्रसाधनो की अपेक्षा नही रखती। वह तो खरे स्वर्ण की भाँति है। बाह्य अलंकरण उसके शरीर पर सजकर स्वयं फीके पड जाते है। पर कवि के ऐसे वर्णन केवल परम्परा भुक्त ही कहे जायेंगे क्योकि कवि नायिका का एक ओर ऐसा वर्णन करता है और दूसरी ओर परिधानो और अलंकारो से नायिका को लाद देता है। विचित्र असंगति है।

सौन्दर्य के ऐसे वर्णनो मे कवि से कई बार अतिरजनाएँ भी हुई हैं। इस अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन से पाठक का मर्म स्पर्श तो नही हो पाता, हाँ कवि उसे अपने वर्णन सामर्थ्य से चमत्कृत अवश्य कर लेता है। उदाहरण के लिए एक-दो दोहे पर्याप्त होंगे :

अंग अग-प्रतिबिंब परि दरपन से सब गात।
दुहरे, तिहरे, चौहरे, भूषन जाने जात।। ६८०।।
खरी लसति गोरे गरे धंसति पान की पीक।
मनौ गुलूबंद-लाल की, लाल लाल दुति-लीक।। ४४०।।

नख-शिख वर्णन मे भी इस तरह के उदाहरण मिल जाते हैं, फिर भी कवि का सौन्दर्य वर्णन एक विशिष्ट सौन्दर्य के साथ अपना प्रभाव छोड़ता चलता है। नख-शिख के कुछ वर्णन यहाँ प्रस्तुत हैं :

सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ, लखि बिथुरे सुथरे बार।।
कच समेटि कर उलटि, खए सीस पट टारि।
को की मन बाँधै न यह, जूरै बाधनि हारि।। (केशराशि)

भाल-लाल बेंदी छए छुटे बार छवि देत ।
गह्यो राहु, अति आहु करि, मनु ससि सूर-समेत ।
मिलि चन्दन-बेंदी रही गोरे मुख न लखाइ ।
ज्यों ज्यों मद-लाली चढ़ै त्यों त्यों उघरति जाइ ॥
मगंलु बिन्दु सुरंग, ससि मुख केसर आड गुरु ।
इक नारी लहि सग, रसमय किय लोचन-जगत ॥ (बेंदी)
रस सिंगार मंजनु किये, कजनु भंजनु दैन ।
अंजन रंजन हू बिना, खंजनु गजन नैन ॥ ४६ ॥
खेलन सिखए, अलि भलैं, चतुर अहेरी मार ॥
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार ॥
बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न ।
हरि नीके नैनन ते हरि नीके ए नैन ॥
चमचमात चचल नयन बिच घूंघट-पट झीन ।
मानहु सुर सिरता-विमल जल उछरत जुग मीन ॥ (नयन)
बरन बास सुकुमारता, सब विधि रही समाय ।
पँखुरी लगी गुलाब की, गाल न जानी जाय ॥ (कपोल)

नायिका के उरोजो का वर्णन करते समय कवि सौन्दर्य की सहारक व्यंजना का आश्रय लेता है । रसिक नायक की दृष्टि ज्योंही मेरु-कुच पर पड़ती है वह वहाँ से फिसल कर सदा के लिए चिवुक के गढे मे जा गिरती है :

कुच-गिरि चढि, अति थकित ह्वै, चली डीठि मुंह-चाड ।
फिरि न टरी, परियै रही, गिरी चिबुक की गाड ॥ २६ ॥
दुरत न कुच बिच कचुकी चुपरी सारी सेत ।
कवि-आंकन के अर्थलौं प्रगटि दिखाई देत ॥
चलन न पावत निगम-मग जग उपजी अति त्रास ।
कुच उत्तंग गिरिवर गह्यौ मैना मैंन मवास ॥ (कुच)

नख-शिख वर्णन के एक-दो उदाहरण और देकर हम संयोग शृंगार के अन्य तत्वो पर प्रकाश डालेंगे । इनमे कटि, नितंब, जघा, एडी, नाखून आदि के वर्णन हैं :

लहलहाति तन तरु नई लचि लग लौं लफि जाइ ।
लगैं लंक लौइन भरी लोइनु लेति लगाइ ॥ (कटि)
लगी अनलगी सी जु, बिधि करी खरी कटि खीन ।
किए मनौ वैं ही कसर कुच, नितब अति पीन ॥ (नितंब)

जघ जुगल लोइन निरे, करे मनौ बिधि मैन।
केलि तरुनु दुखदैन ए, केलि तरुन-सुखदैन।। (जाँघ)
पाइ महावरु दैंन कौं, नाइनि वैठी ग्राइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एडी मीडति जाइ।। (एडी)
ग्ररुन-बरन तरुनी-चरन-ग्रगुरी ग्रति सुकुमार।
चुवत सुरगु रगु सी मनौ चपि विछियनु कै भार।। (पग ग्रगुली)
मानहु बिधि तन-ग्रच्छछवि, स्वच्छ राखिवैं काज।
दृग-पग-पोछन कौं करे, भूषन पायदाज।। (देहद्युति)
भूषन-भारु सँभारिहै क्यौ इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं, सोभा ही कैं भार।। (सुकुमारता)

नख-शिख वर्णनो मे कवि ने यद्यपि ग्रतिरजित शैली का ही सहारा लिया है, परन्तु फिर भी उसकी दृष्टि शास्त्रोक्त परम्परा का ग्रनुसरण भी करती है। नख-शिख मे बिहारी के उपमानो ग्रौर उत्प्रेक्षाग्रो की मौलिकता का ग्रपना ही महत्व है।

सयोग का दूसरा पक्ष वय सन्धि के बाद प्रारम्भ होता है। नायिका को प्रेम का ग्राभास होता है ग्रौर वह यह ग्रनुभव करती है कि यह क्या है जो उसके मर्म का स्पर्श करता है। वरबस उसकी ग्राँखे कही, किसी मे उलझ जाती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी कवि ने उसकी ग्रवस्था ग्रौर सौन्दर्य बोध के मूल्य ग्रांके हैं। नायक का साथ उसे मिलता है, सकोच दूर होने लगता है। विश्राम की वृद्धि होती है ग्रौर नवोढा के इसी रूप को कवि ने :

हँसि ग्रोठनु-विच करु उचै, कियैं निचौ हैं नैन।
खरैं ग्ररैं प्रिय कैं प्रिया, लगी बिरी मुख दैन।। कहकर स्पष्ट किया है।

प्रेम को क्रीडा का रूप देने के लिए नवोढा की स्थिति देखिए। 'चोर मिहीचनी' का खेल चल रहा है ग्रौर नायिका किस व्याज से प्रिय का ग्रालिगन करने का ग्रवसर निकालती है .

दोऊ चोरमिहीचनी, खेलु न खेलि ग्रघात।
दुरत हियैं लपटाइ कै, छुवत हियैं लपटात।।

नेत्रो का एकटक दर्शन प्रेम-क्रीडा को ग्रौर ग्रधिक तीव्रता प्रदान करने मे सहायता करता है। बिहारी की वाणी-विदग्धता को, सखी की नायक को नायिका के प्रति कही उक्ति मे देखिए .

ग्रनियारे, दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान।
वह चितवनि ग्रौरै कछू, जिहिं बस होत सुजान।।

प्रेम की यह हिचक धीरे-धीरे उसे और अधिक संकोच मुक्त कर देती है और अब वह स्वयं इस व्यापार मे निस्संकोच आनन्द लेने लगती है। नायक सो रहा है नायिका वहाँ पहुँच जाती है। वर्णन का यह सात्विक भाव काव्य को उदात्तता प्रदान करता है। वस्तुत. नायक सोने का व्याज किये है और नायिका उसे सोता समझ लेती है। भान उसे तब होता है, जब नायक उसे आलिंगन-पाश में आबद्ध कर लेता है :

मुखु उघारि पिउ लखि रहत रह्यौ न गौ मिस-सैन।
फरके ओठ, उठे पुलक, गए उघरि जुरि नैन ।।

इसमे नायक से आत्यंतिक सामीप्य के मनोभाव ने उसके आवेग को इस तरह संवेदनाशील बना दिया है कि उसके शरीर पर शृंगार रस के अनेक अनुभाव उभर गए। कवि ने इसी तरह धीरे-धीरे नायिका के प्रौढा, मध्या, धीरा, अधीरा आदि रूपो मे सयोग वर्णन किए हैं, जिनमे उसके अनेक हाव, भाव, अनुभाव और संचारी भावो के सहज उद्रेक मिलते हैं। प्रौढ़ा को अपयश और लोकलाज की चिन्ता नही। वह क्या करे, वह तो विवश है। इन नेत्रो का वह क्या करे, जो न चाहते हुए भी उसे देखने को बरबस खिंचे चले जाते हैं :

लाज-लगाम न मानही, नैना मो मन नाहिं।
ए मुंहजोर तुरग ज्यौं ऐंचत हूँ चलि जाहिं ।।

प्रौढा की क्रीडाएँ भी अपेक्षाकृत अधिक मुक्त और झिझकहीन होती हैं। अटारी पर स्थित नायिका की एक सयोग क्रीडा द्रष्टव्य है :

छिनकु चलति, ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम-गल डारि।
चढी अटा देखति घटा विज्जु-छटा सी नारि ।।

इसमे "भुज प्रीतम गल डारि" की व्यंजना की मनोवैज्ञानिकता अप्रतिम है और इसी सन्दर्भ मे चुम्बन का एक दृश्य देखिए :

अगुरिनु उचि, भरु भीति दै, उलमि चितै चख लोल।
रुचि सौं दुहूँ दुहूँन के चूमे चारु कपोल ।।

स्वकीया मुग्धाओ से परकीया मुग्धाओ के सयोग वर्णनो मे रसज्ञ कवि बिहारी का मन अधिक रमा है। क्योंकि उनमे उत्कंठा अपरिमित होती है। मध्या मे वाणी का सयम होता है और वह प्रिय के अपराध को लाक्षणिक शब्दावली से ही प्रकट करती है :

पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावरु भाल।
आजु मिले, सुभली करी, भले बने हौ लाल ।।

जब कि मध्या अधीरा अपनी वेदना को इस वाणी संयम से प्रकट करती है :

नख-रेखा सौहैं नई, अलसौहैं सब गात।
सौहैं होत न नैन ए तुम सौ हैं कत खात ॥

एक-दो उदाहरण सुरत गोपना और क्रिया विदग्धा के भी देखिए। विहा। ने इन उदाहरणों को अपने कर्तव्य के भारी सौष्ठव से अलंकृत किया है.

लटकि लटकि लटकतु चलतु डटदु मुकुट की छाँह।
चटक-भर्‌यौ नट्टु मिलि गयौ अटकभटक-बट माँह ॥ (सुरत गोपना)
न्हाइ, पहिरि पट्टु डटि, कियौ वेंदी-मिसि परनामु।
दृग चलाइ घर कौ चली बिदा किए घनस्यामु ॥ (विदग्धा)

यही नही, बिहारी ने इन नायिकाओ मे अनुशयाना और कुलटा आदि तक को स्थान दिया है। सयोग वर्णन मे नायिकाएँ उसकी कृति का विषय क्यो नही बनती। कवि ने जैसे इनके प्रेम-क्रीडा व्यापारो मे भी वैशिष्ट्य अनुभव किया हो। इनके सकैतो का वर्णन भी उल्लेखनीय है—देवर के विवाह के बाद नायिका उसके प्रेम से वचित हो जायेगी, उसकी वेदना देखिए

फिरि फिरि बिलखि ह्वै लखति, फिरि फिरि लेति उसासु।
साँई! सिर-कच-सेत लौ बीत्यौ चुनति कपासु ॥ (अनुशयाना)
लखि, लौने लोइननु कैं कोइनु होइ न आजु।
कौनु गरीबु निवाजिबौ-कित तूठ्यो रतिराजु ॥ (कुलटा)

इस तरह और भी अनेक नायिकाओ के सौन्दर्य और प्रेम वर्णन सतसई मे मिल जाते हैं। कवि की दृष्टि जैसी किसी भी नायिका के काम और प्रेम-जन्य सवेग को छोडना नही चाहती और यही कारण है कि सतसई मे कवि ने सभी वरिष्ठ नायिकाओ के प्रेम सौन्दर्य को अपने सयोग वर्णन मे स्थान दिया है। क्यो न हो यदि वे इनके लिए न कहते तो इनका एक कितना दर्द अनकहा और अनछुआ रह जाता।

शृंगार रस के शास्त्रीय रूप को आधार बनाकर यदि सयोग का विश्लेषण किया जाय तो भी बिहारी उसमे पूर्ण सफल कृतिकार उतरते हैं। शृंगार के सयोग पक्ष के मूलभूत शास्त्रीय तत्वो मे आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव सचारी-भाव और स्थायी-भाव, आ जाते हैं। संयोग शृंगार के मूल मे शारीरिक सौन्दर्य और आकर्षण चेष्टाओ और प्रेम-जन्य मनोविकारो का उत्कृष्ट वर्णन किया गया है, इनमे नायक-नायिका की संयोग-जन्य दशाओ और भगिमाओ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उद्दीपन विभाव की समस्त स्थितियो के मूल मे प्रेम-क्रीडा, ऋतु वर्णन, मद्यपान, और नायक-नायिकाओ की आंगिक चेष्टाए आ जाती हैं। इन प्रेम-जन्य चेष्टाओ को कवि ने दर्शन, श्रवण, संभाषण और स्पर्श आदि के माध्यम से स्पष्ट किया है। यहाँ तक कि रति स्थायी-भाव के चरम रूप सुरत और सुरतान्त के चित्र भी बिहारी ने अत्यन्त

कुशलता से उरेहे है, । ऐसे कुछ उदाहरणों को हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे शृगार के सयोग पक्ष का शास्त्रीय स्वरूप स्पष्ट हो जायेगा ।

ज ज्यौ उझकि झाँपति बदनु, झुकति बिहँसि सतराइ ।
तत्यौ गुलाल मुठी झुठी झझकावत प्यौ जाइ ।।

जहाँ नायक का गुलाल डालने के लिए झूठे ही मुट्ठियाँ बाँधना और नायिका का तंग करना उद्दीपन भगिमा है ।

नाँक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल ।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौं कँकरील गैल ।।

नायक और नायिका रास्ते चल रहे हैं । एक रास्ता साफ और दूसरा ककरीला है । नायिका को वह अच्छे रास्ते चलाकर स्वय ककरीले रास्ते चलता है । इससे पैर मे ककर चुभते हैं और नायिका सी-सी करती है जैसे उसे दर्द होता है । नायिका की इस सी-सी करने के व्यापार से नायक इतना उद्दीप्त होता है कि वह बार वार ऐसा चाहता है कि वह सी-सी करती रहे और वह इसीलिए फिर-फिर उसी रास्ते मे चलता है ।

अहे, दहेडी जिनि धरै, जिनि तूँ लेहि उतारि ।
नीकैं व्है छीकै छुवै, ऐसे ई रहि, नारि ।।

यू नायिका तू ऐसे ही रह, न तो तू दहेडी छीके पर रख और न उसे उतार, वस तू तो छीके को छूने की इसी भगिमा मे खडी रह । इस स्थिति मे नायिका का एक उत्तेजन भगिमा (पोज) बन जाता है और नायक को उसकी इस इन्द्रियोत्तेजक वक्ष उभार की आकर्षक मुद्रा को जी भर देखने का लालच है । सद्य स्नाता का एक उदाहरण देखिए .

बिहँसति, सकुचति सी, दिए कुच-आँचर-बिच बाँह ।
भीजैं पट तट कौं चली, न्हाइ सरोवर माँह ।।

उसके अंगो की शोभा और उसका चिपके वस्त्रो मे स्तनो को बाहो से ढक कर निकलने की अवस्था नायक के प्रेमोद्दीपन का द्योतक है

सयोग सुख की अवस्था मे होने वाले शारीरिक आनन्द से उत्पन्न स्वेद, रोमाच, भय, हर्ष, वैवर्ण्य आदि को सात्विक अनुभावो के अन्तर्गत लिया गया है । इन अनुभावो का उद्भव गुण, श्रवण, दर्शन, तथा प्रिय के स्पर्श के कारण होता है, इन सवकी प्रतिक्रिया स्वरूप हुए मनोवेगो और विकारो को ही सात्विक अनुभाव कहा जाता है । इन अनुभावो के सचारशील कार्यव्यापारो मे स्पर्शक्रिया सबसे प्रमुख होती है । नायक नायिका की वेणी गूँथ रहा है । स्पर्श मिलने से स्नान करने के बाद उसके स्वेद से केश पुन गीले हो जाते हैं । कवि ने नायिका का सात्विक स्पष्ट किया है :

रहौ, गुही बेनी, लखे, गुहिबे के त्यौनार।
लागे नीर चुचान, जे नीठि सुकाए बार।।

कृष्ण उँगली पर गोवर्धन उठाये हुए थे, इतने मे उन्हे राधा दिखाई पडी। उन्हे कंप सात्विक हो आया। हाथ हिला, पहाड हिला और सारा व्रज दुखी हुआ। कृष्ण मारे लाज के पानी-पानी हो गए, —यहाँ कवि की परिकल्पना अनूठी है :

डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब व्रज बेहाल।
कपि किसोरी दरसि कै खरै लजाने लाल।।

इस तरह कवि इन सात्विक भावो का सफल वर्णन कर सयोग-शृगार को पुष्ट करता है। इन वर्णनो मे कुछ और श्रेष्ठ उदाहरणो का समावेश किया जा सकता है पर सभी पर लिखना यहाँ सम्भव नही है। सिर्फ दो उदाहरण और दिए जा रहे हैं :

मुखु उघारि पिउ लखि रहत रह्यौ न गौ मिस-सैन।
फरके ओठ, उठे पुलक, गए उघरि जुरि नैन।।
ऊँचै चितै सराहियतु गिरह कबूतरु लेतु।
झलकित दृग, मुलकित वदनु तनु पुलकित किंहि हेतु।।

वियोग के चारो प्रकारो—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण आदि मे खंडिता-नायिका के वर्णन मान के अन्तर्गत ही आते हैं। प्रणय मे मान स्वाभाविक है और मनोवैज्ञानिक भी। परन्तु यह मनोवैज्ञानिक नही लगता कि मान को वियोग के अन्तर्गत रखा जाय। इसे तो विशुद्ध रूप से उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ही रखा जाना चाहिए। हमने मान के कुछ उदाहरण नायिकाओ के प्रसग मे पहले दिए हैं। यहाँ मान का केवल एक उदाहरण पर्याप्त है

सतर भौह, रूखे वचन, करति कठिनु मन नीठि।
कहा करौ व्है जाति हरि हेरि हँसौ ही डीठि।।

पूर्वानुराग के भी एक दो उदाहरण देखिए

इत तैं उत, उत तैं इतै, छिनु कहूँ ठहराति।
जक न परति, चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति।।

(विकलता)

पिय कैं घ्यान गही गही रही वही व्है नारि।
आपु-आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि।।

(तन्मयता)

संयोग की इन स्थितियो और अनुभाव प्रेरित सचारियो के सन्दर्भ मे बिहारी के हावो का वर्णन भी महत्वपूर्ण है। कुछ आलोचक इसे उद्दीपन के अन्तर्गत लेते हैं

और कुछ अनुभावो के । आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' मे इनकी संख्या १८ मानी है । लाल चन्द्रिका के टीकाकार ने भी इनका वर्णन अनुभावो के सन्दर्भ मे ही किया है । जो हो, इतना अवश्य मानना पडेगा कि हाव नारी की सभोग-इच्छा को प्रकाश मे लाने वाले सचेष्ट व्यापार हैं । मनोविज्ञान की दृष्टि से आलोचक इसे "प्लेइन्स्टिक्ट" मानते है वस्तुत हाव चेष्टाओ का वह सूक्ष्म व्यापार है जिसे केवल प्रेमी पुरुष ही समझ पाता है । उसकी अभिव्यजना अत्यन्त तीव्र होती है । अत यह स्पष्ट है कि "हाव" का वर्णन केवल शृगार रस में ही हो सकता है अन्य रसो मे इसका स्थान नगण्य है । विहारी सतसई मे कवि का मन हावों के वर्णन मे खूब रमा है तथा उन्होंने सतसई मे लगभग सभी हावो का वर्णन किया है । हम यहाँ कुछ प्रमुख हावो के उदाहरण दे रहे हैं

सुनि पग-धुनि चितई इतै न्हाति दियौ ही पीठ ।
चकी, झुकी, सकुची, डरी, हँसी लजी सी दीठि ।।

(किलकिंचित)

नाहिं नाहिं नाही ककै नारि निहोरै लेय ।
छुवत ओठ विच अंगुरिनु बिरी बदन प्यौ देय ।।

(कुट्टमित)

सकुचि सरकि पिय-निकट तैं मुलकि कछुक तनु तोरि ।
कर आँचर की ओट करि, जमुहानी मुहु मोरि ।।

(मोट्टायित)

उडति गुडी लखि लालन की अँगना अँगना माँह ।
बौरी लौ दौरी फिरति छुवति छबीली छाह ।।

(विक्षेप)

"छुवति छबीली छाँह" मे स्पर्श सुख की जैसी प्रतीति हो और इसी भ्रम मे नायिका बावरी होकर नायक की पतग की छाया छूने को आँगन मे दौडती फिरती है ।

बिधि बिधि कौन करै टरै नहीं पा परै हूँ पानु ।
चितै, कितै तैं लै धर्यौ इतौ इतै ते मानु ।।

इन वर्णनो के अतिरिक्त रति स्थायी का भावन करने के लिए कवि ने सुरत और सुरतान्त तक के अनूठे वर्णन किए हैं । काम-कला प्रवीण नायक नायिकाएँ प्रेम की सभी क्रीडाओ मे जैसे अत्यन्त प्रवीण हो और उनके इगितो की भाषा केवल वही समझते हो पर सुरत की इच्छा और उसकी प्रतिक्रिया मे उभरे सचरणशील मनोविकार भी कही छिप सकते हैं ? विहारी के ऐसे वर्णन उनकी विदग्ध रसज्ञता का परिचय देते हैं ।

संभोगेच्छा के कुछ उदात्त चित्र जिनमे केवल इंगितो और तज्जन्य शारीरिक व्यापार ही कार्य करते हैं, दृष्टव्य हैं। इन चित्रो के बाद ही कवि ने नायिका के सुरत वर्णन किये हैं, जो रसोद्रेक के चरम को प्रस्तुत करते हैं :

लाज गहौ, वेकाज कत घेरि रहे, घर जाँहि।
गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरसु चाहत नाँहि ।।
देख्यौ अनदेख्यौ कियै, अग अग सवै दिखाइ।
पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ ।।
भौहनु त्रासति मुंह नटति, आँखिनु सौ लपटाति।
ऐंचि छुडावति करु इँची आगैं आवति जाति ।।
त्रिवली, नाभि दिखाइ कर सिर ढकि, सकुचि, समाहि।
गली, अली की ओट कै, चली भली विधि चाहि ।।

उक्त सभी दोहो मे विहारी की नायिका की रति-जन्य कामना स्पष्ट होती है। कितनी विलक्षणता से वह मन का भाव स्पष्ट कर निश्चित हो जाती है। वस्तुत ये सब कार्य-व्यापार उसकी रागात्मकता, प्रेम-विदग्धता और चातुर्य को स्पष्ट करते है। ऐसे कार्य-व्यापार नगर की कला कुशल नायिकाएँ ही कर सकती है।

उक्त वर्णनो के परिप्रेक्ष्य मे कवि द्वारा वर्णित सयोग शृंगार की कुछ सुरतिमूलक मुद्राओ की परिचिति भी महत्वपूर्ण है। कुछ चित्र प्रस्तुत हैं :

चमक, तमक, हाँसी, ससक, मसक झपट, लपटानि।
ए जिहि रति, सो रति मुकति, और मुकति अति हानि ।।

परम आनन्द देने वाली रति-मुक्ति वही है, 'जिसमे उक्त लक्षण हो। सुरति के कुछ वर्णन देखिए :

सकुचि सुरत-आरम्भ ही विछुरी लाज लजाइ।
ढरकि ढार, ढुरि ढिग भई ढीठि ढिठाई आइ ।।

नायिका की देहद्युति रति के आनन्द को किम प्रकार और अधिक वढा देती है। नायिका से रति करने के लिए नायक ने दीपक वुझा दिया पर नायिका की देह-द्युति से अँधेरा न मिटा। लाज दूर न हुई, वह और लजाकर नायक से लिपट गई '

दीप, उजेरैं हू पतिहि हरत वमनु रति-काज।
रही लपटि छवि की छटनु, नेकौ छुटी न लाज ।।
अँगुरिनु उचि, भरु भीति दे, उलमि चितै चख लोल।
रुचि सौं दुहूँ दुहूँन के चूमे चारु कपोल ।।

यही नही, कवि ने विपरीत-रति तक के वर्णन किये हैं और ये वर्णन इतने सक्षम हैं कि इनमे कवि ने कही नग्नता नही आने दी। नायिका क्रीडा-गर्व और

कृत्रिम झल्लाहट आदि को उभारने की ही कवि की चेष्टा रही है, जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सहज स्वाभाविक लगता है। कुछ उदाहरण देखिए

परयो जोरु, विपरीत रति रुपी सुरत-रन-धीर।
करति कुलाहलु किंकिनी, गह्यौ मौनु मंजीर।।
विनती रति विपरीत की करी परसि पिय पाइ।
हँसि, अनवोलैं ही दियौ ऊतरु दियौ बताइ।।
राधा हरि, हरि राधिका बनि आए सकेत।
दंपति रति-विपरीत-सुखु सहज सुरतहूँ लेत।।
रमन कह्यो हठि रमनि कौ रतिविपरीत-विलास।
चितई करि लोचन सतर, सलज सरोस, सहास।।

इसके साथ ही कवि ने इसी धैर्य और शालीनता से सुरतान्त के वर्णन भी किये हैं। एक उदाहरण एतदर्थ अलम् होगा .

नीठि नीठि उठि वैठि हूँ प्यौ प्यारी परभात।
दोऊ नीद भरैं खरैं, गरै लागि, गिरि जात।।

इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण करने पर विहारी का सयोग शृगार पूर्ण सफलता की कसौटी पर उतरता है। यो आज के काम-तत्व, सौन्दर्य बोध और प्रेम को दृष्टि मे रख कर भी यदि विहारी के इस सयोग शृगार का मूल्याकन किया जाय तो भी उसे असफल कवि नही ठहराया जा सकता। आज के कवि मनोविज्ञान की आड मे शृंगार के अन्तर्गत काम-भावना के विकृत रूप प्रस्तुत करते हैं। यह 'सेक्स' चाहे उचित हो, मर्यादा पूर्ण हो या 'परवर्टेड' उसे साहित्य के नाम पर पचा तो लिया ही जाता है। फिर विहारी जैसे रसज्ञ और मर्मस्पर्शी कवि के इन वर्णनो को अश्लील कहकर नाक-भौं सिकोडने का अभिनय करने वाले आलोचको का यह कौन सा धर्म है ? विहारी को ही क्या समस्त रीति-काल को घोर शृगारिक काल कहा जाता है। कहा जाय ! पर इस काल के कवियो के साथ न्याय तो हो। उनके सृजन-कर्म को इतनी सतही दृष्टि से देखा गया है, कि उसकी मर्मस्पर्शी कविता भी इन आलोचको के हाथ पडकर अत्यन्त सस्ते निर्णयो का शिकार वन गई है। यह सही है कि विहारी के शृगार वर्णन पर संस्कृत, अपभ्रंश, फारसी, लक्षण ग्रन्थो तथा राज दरबारी परम्पराओ का प्रभाव है, पर उससे कवि के वर्णन कौशल, रसोद्रेक और वस्तु विषय को मौलिकता से रहित कहकर उसके सृजन की उपेक्षा की दृष्टि से देखना कहाँ तक सगत है। हमारी पुष्ट धारणा है कि रीतिकाल के साथ न्याय होना चाहिए और इस काल के कवियो के सृजन का उचित मूल्याकन होना चाहिए। आलोचको ने भावोत्कर्ष की दृष्टि से उसके काव्य को अनुत्कृष्ट कहा है यह वात समझ मे नही आती। एक और उनके शृंगार को एक सिद्धि माना जाता है

और दूसरी ओर उसमे दोष निकालने की दृष्टि से दोष ढूढे जाते है। इसमें आलोचक अपनी दृष्टि को, पूर्ण निसंग हो, कहाँ तक अनामिल रख पाता है, यह सोचने की बात है।

बिहारी का एक-एक दोहा अपने आप मे प्रबन्ध है। उसके विषय-वैविध्य पर असगति का, शृगार वर्णन की कुत्सितता, रीति लक्षणो की पूर्ति और उपदेशक की प्रकृति एव अलकरण की अनावश्यकता के लाछन लगाए गए हैं। यह दोष दृष्टाओ की विद्वत्ता का परिचायक तो लगता है कि वे छिद्रान्वेषण मे कुशल हैं परन्तु साथ ही उनकी रस-दृष्टि, सौन्दर्य बोध, प्रेमजन्य विदग्धता एव मनोवैज्ञानिक दृष्टि आदि के सम्बन्ध मे उनके मत ही ज्ञान का बोध भी कराते हैं। हम अपने विश्लेषण मे पहले भी यह कह चुके हैं कि मध्ययुगीन दृष्टि से देखने पर तो बिहारी की काव्य-विदग्धता और वस्तु-वर्णन सौदर्य मे पर्याप्त सौष्ठव मिलेगा ही, परन्तु यदि उसे आज के चश्मे से या आधुनिक दृष्टि से देखने पर भी उनका काव्य रस की उसी रससिद्धि को प्राप्त करता हुआ खरा उतरता है। बिहारी जैसे रससिद्ध कवियो का ही नही, रीतिकाल के लगभग सभी श्रेष्ठ कवियो का एक अनाविल दृष्टि से एक बार फिर उचित ही या न्यायोचित मूल्याकन होना चाहिए, ताकि रीति काल के साहित्यिक महाप्राणत्व का सच्चा प्रतिनिधित्व हो। रीतिकाल सिद्धान्त-सापेक्ष और सिद्धान्त-निरपेक्ष दोनो प्रकार की दृष्टि लेकर रचे गए साहित्य से सम्पन्न काल है और बिहारी इसी रीतिकाल के एक रस प्रणेता सिद्धि प्राप्त कवि हैं।

एक बात और है, वह है बिहारी के पाठ की। उसका प्रमाणिक पाठ उपलब्ध न होने से बिहारी के सम्बन्ध मे कई निर्णय ठीक से नही लिए गए। बिहारी का प्रमाणिक पाठ सम्पादन हो, इस ओर हम विद्वानो का ध्यान आकर्षित करते हैं और साथ ही यह बात भी विनम्रता से कहना चाहते हैं कि पूर्वाग्रह या किसी भी अन्य आग्रह से मुक्त हो, यदि वे बिहारी का एक बार सही मूल्याकन करने की अन्तर्दृष्टि जुटाये तभी इस कवि के काव्य का वास्तविक आनन्द ले सकेगे और बिहारी मध्य युग के अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न रस-सिद्ध कवि थे या नही इस तथ्य का नीर-क्षीर विवेक हो सकेगा।

बिहारी का वियोग श्रृंगार

● प्रोफेसर ससार चन्द्र

बिहारी हिन्दी-जगत मे श्रृंगार रस के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं, इस पर दो मत नही हो सकते । इनकी तीक्ष्ण दृष्टि ने मानव जीवन की सर्वप्रधान वृत्ति प्रेम के अन्तरतम मे पैठ कर जिस प्रकार उसके कोने-कोने, अणु-अणु को आलोकित किया, उसी तरह प्रेम के आधारभूत सौन्दर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म सकेत को, उसकी क्षण-क्षण मे परिवर्तनमान छटा को भी निहारा और फिर उनके ऐसे सर्वांगपूर्ण चित्र खीचे जैसे शायद ही अन्यत्र मिलें । प्रसिद्ध अगरेज मनीषी डा० ग्रियर्सन ने—"मैंने बिहारी के जैसी कविता योरप की किसी भाषा मे नही देखी" कह कर उन्हे विश्व के प्रेम कवियो मे जो सर्वश्रेष्ठ पद दिया है, उसमे स्वल्प मात्र भी अतिरजना नही है ।

बिहारी ने अपने चित्रण कौशल से श्रृगार की सर्वांगीण अभिव्यक्ति की है । उनकी सारी सतसई एक विशाल चित्र वीथिका है, जिसमे विभाव, अनुभाव और संचारी-भाव की स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म दशाओ के मार्मिक,सजीव एवं स्वाभाविक चित्र हैं । विलक्षण कल्पना, प्रतिभा-पाटव तथा पैनी अन्तर्दृष्टि की तूलिका से जो फडकता रंग-रूप इन चित्रो को प्राप्त हुआ है, वह बिहारी जैसे कुशल कलाकार का अपना चमत्कार है । श्रृंगार के दोनो सयोग और वियोग बिहारी की प्रत्युत्पन्न प्रतिभा के स्पर्श से सम्यक् प्रतिमा सिद्ध हुए हैं । वियोग मे तो बिहारी की सर्वतोमुखी श्रृंगार भावना की सुख्वरी विशेष रूप से निखर आई है । वास्तव मे श्रृंगार को "रसराज" पद देने का अधिकतर श्रेय विप्रलभ वियोग को ही है, और यही कारण है कि सभी कलाकारों ने सयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष को अधिक महत्व दिया है । हम देखते हैं कि हृदय वीणा की कितनी मधुरतम तान वियोग मे छिडती है उतनी सयोग के मधुर क्षणों मे नही । एक अगरेज कवि के ये शब्द" लव इज् लवलिएस्ट ह्वेन एवन्डैन्ट इन टियर्स ।" अर्थात् अश्रु परिलक्षित होने पर ही प्रेम सौन्दर्य की पराकोटि मे पहुँचता है,सर्वथा तथ्य पूर्ण है । सोना प्रबल अनलताप में जब खूब तप जाता है तब कही कुन्दन बनता है । प्रेम परीक्षा की कसौटी भी विरहानल की भट्टी ही है ।

कुछ लोग विरह में प्रेम को क्षीण प्राय समझते है । वे "मुंह देखे की मुहब्बत" के पक्षपाती हैं । दूसरे शब्दो मे वे "आँख की ओट, मन से बाहर" "आउट आफ साइट आउट आफ माइन्ड" वादी हैं । उनके कानो में कालिदास के ये शब्द

"स्नेहानाहु· किमपि विरहे ध्वसिन· "अर्थात् कुछ लोग विरह मे प्रेम को समाप्त हुआ कहते है, अवश्य गूंजते रहते है। वास्तव मे यह उनका महान् भ्रम है। केवल शरीर एव उसकी क्षण-भंगुर सौन्दर्य छटा की उपस्थिति मे भडक जाना और उसके अभाव मे ठडा पड जाना प्रेम नही होता। वह वासना होती है जिसे हम प्रेम के ऊपर चढी हुई मल की परत कह सकते हैं। इस मल का तो कालिदास ने स्वत परिशोधन किया है। मेघदूत, कुमार सम्भव और शाकुन्तल प्राय: प्रेम यज्ञ है, जिनमे क्रमश· कुवेर के शापानल, महादेव की तृतीय नेत्रार्चि और दुर्वासा की क्रोधाग्नि से यह मल सर्वथा फूक डाला गया है। इसके अतिरिक्त यक्ष, पार्वती और शकुन्तला तपोवन मे उतर कर साधना करने के बाद ही सच्चे प्रेम के पात्र बन सके हैं। इस तरह प्रेम भौतिकता के ऊपर एक अध्यात्मिक वस्तु है। इसका निखार विरह मे ही हुआ करता है। कारण यह है कि अपनी मुक्त दशा मे होने से सयोग मे तो यह केन्द्रानुग-समस्त संसार से सिमट कर एकनिष्ठ ही रहता है, उसमे आगे नही जाता किन्तु वियोग मे ऐसी बात नही। प्रेम भावना वियोग मे अपनी सीमित-परिधि से निकल कर असीम रूप मे अभिव्यक्त होने लगती है। फिर तो क्या अन्य सभी जड-चेतनो में प्रियतम अथवा प्रियतमा के दर्शन होने लगते हैं। इस तरह प्रियतमात्मकता के अद्वैतवाद की पुनीत अनुभूति मे परिनिष्ठित हुआ प्रेम विरही जन को सान्त से अनन्त की ओर ले जाता है और मर्त्य से अमर बना देता है।

वियोग-चित्रण मे बिहारी को निसंदेह प्राचीन सस्कृत कलाकारो से मिली है। विरहियो की अपनी अग्नि-परीक्षा मे दस दशाओ से होकर निकलने की जो प्राचीन परम्परा है, उसका विहारी ने पूरा-पूरा उपयोग किया है। वे हैं "अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, व्याधि, जडता और मरण। सभी पर उन्होंने तूलिका चलाई है। इसमे सन्देह नही कि व्याधि पर आपने अधिक रंग विखेरा है। इसके अतिरिक्त स्वप्न-दर्शन, सन्देश एवं पत्रादि द्वारा मनोविनोद के भी चित्र खीचे हैं। अभिप्राय यह है कि विरह-व्यथित मानव-हृदय की जितनी दशाएं और वेदनाएं होती है, सभी का सफल अकन किया है। दोहो का शब्द-शब्द अक्षर-अक्षर, वियोग की गहरी आहे भरता हुआ अन्तर्व्यथा की सूक्ष्म से सूक्ष्म धडकन से स्पन्दित है। यहाँ तक कि सारी वाह्य प्रकृति भी संवेदना पूर्ण हो स्वय भी विरह की आग उगलने लगती है। इस तरह के चित्रण मे बिहारी ने अवश्य यत्र-तत्र कुछ अतिशयोक्तियो और अत्युक्तियो का भी आश्रय लिया है किन्तु वे सब लाक्षणिक है, व्यथा की गहराई को हृदयगम बनाने के लिये हैं, व्यग्यार्थ को अधिक चुभता रूप देने के अभिप्राय से हैं। उन्हें अपने वाक्यार्थ मे लेना और कवि पर अस्वाभाविकता का दोप मढना सरासर अनुचित है।

वियोग पक्ष के चित्र खीचने से पूर्व बिहारी प्रारम्भ मे नायिका को प्रवत्स्यत्पतिका के रूप मे यो अंकित करते हैं :

ललन चलन सुनि चुपु रही बोली आपु न ईठि।
राख्यो गहि गाढ़ै गरे मनो गलगली डीठि ।।

ललन-प्रियतम की चलने की बात उन्ही के मुंह से सुनकर बेचारी चुप रह गई। स्वय ईठि-प्रेम-पूर्वक जैसे पहले बोला करती थी, वैसे आज न बोली। वह समझदार थी, देख रही थी, कि परदेश-गमन के दुख से स्वय प्रियतम की आँखें डबडबा गई हैं। वह भी यदि अपनी वियोग-व्यथा कह देती तो बेचारे को और भी दुख होता, इसलिए दिल मसोस कर चुप खडी रही, ऐसी लगती थी कि मानो प्रियतम के आँसुओ से गीली दृष्टि ने बेचारी के गले का मार्ग रोक रखा हो। बोले तो कैसे बोले ? प्रियतम भी क्या है ? विवश था । घर बैठे भी कही आजीविका चलती है। अन्त मे हृदय पर पत्थर रख कर परदेश चल ही पडा। युगल का यह जुदाई का यह क्षण कितना मर्मान्तिक हुआ करता है तभी तो कालिदास के विरही यक्ष ने मेघ के हाथो अपनी प्रियतमा को सन्देश भेज कर अन्त मे कृतज्ञता के रूप मे मेघ के लिये केवल यही मगल कामना की थी

"माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः
उत्तर मेघ—५५

"परमात्मा करे तुम्हे क्षण भर भी अपनी "बिजली" से ऐसा वियोग न हो"। मेघ तो निमित्त मात्र है। वास्तव मे कवि मेघ के व्याज से मनुष्य मात्र के लिए यह कामना करता है कि उनका अपनी प्रियतमाओ से वियोग न हो। किन्तु यहाँ तो लाचारी है। बेचारी के सिर पर वियोग का पहाड टूटने का पहला ही अवसर है। प्राणो पर आफत आने लगी। शैतान की आँत की तरह लम्बी वियोग की रातें काटे नही कटती। हृदय का दुख भरा संसार किसे दिखाए। मन किसी भी काम में तो नही लगता। मन बहलाव का साधन अपनाने पर भी उसकी बेचैनी का चित्र बिहारी ने यो खीचा है :

ह्यां तें ह्वाँ ह्वा तें इहाँ नेकौ धरति न धीर।
निसि दिन ठाढी सी फिरति बाढी गाढी पीर ।।५२५

यहाँ से वहाँ जाती है और वहाँ से यहाँ आती है, परन्तु जरा भी धीरज नही धर सकती। "गाढी पीर" ऐसी अधिक बढी हुई है कि जली हुई सी रात दिन इधर-उधर फिरा करती है। जले हुए आदमी को चैन कहाँ ? तडपता ही रहता है। वियोग भी जलाने वाली अग्नि ही तो है। चेहरे का सारा रग जाता रहा। कुछ ही दिनो में देखिये क्या थी और क्या हो गई :

कर के मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाय ।
सदा-समीपिनि सखिनि हूँ नीठि पिछानी जाय ।। ५१६

हाथ से मसले हुए फूल की तरह बेचारी ऐसी कुम्हिला गई है कि सर्वदा पास मे रहने वाली सहेलियो द्वारा भी बडी मुश्किल से पहचानी जा रही है । सखियाँ हैरान हैं कि उसकी फूल जैसी देह कहाँ गई । वियोग रोग होता ही ऐसा है कि मनुष्य सूखकर काँटा बन जाता है । इस पर कोई भी औषधि अपना प्रभाव नही दिखा सकती । यह सर्वथा लाइलाज है । किन्तु एक बात अवश्य अच्छी है और वह है "विरह सुकाई देह, नेहु कियो अति डह डहो ।" देह को नि.सन्देह विरह ने सुखाकर क्षीण बना दिया है, परन्तु स्नेह को हरा-भरा-लहलहाता कर किया । यह तो जवासा और जवाकुसुम की सी बात हो गई है । वर्षा ऋतु के मेघ के बरसने पर जवासा तो क्षीण हो जाता है, किन्तु जवाकुसुम नये कोपलो से सम्पन्न होकर लहलहा उठता है वास्तव मे प्रेम का निष्कर्ष विरह ही होता है । क्यो न डहडहा हो । बेचारी की शरीर-क्षीणता का चित्र देखिए :

करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाडत नीचु ।
दीने हूँ चसमा चखनि चाहै लहै न मीचु ।। (१४०)

विरह ने ऐसा बना दिया कि मीचु (मौत) आँखो पर चश्मा लगा कर भी देखना चाहे तो भी न देख सके । देखे और ढूँढे भी कैसे ? वह तो क्षीण होकर परमाणु बनी हुई है । जहाँ आँख की गति ही नही, चश्मा क्या करेगा ? कृशता की भी हद हो गई है । इतना होने हर भी मुआ विरह उसका पीछा नही छोडता । आलोचक इसे अतिशयोक्ति कहेगे, किन्तु इस वाच्यार्थ के पीछे छिपा हुआ व्यग कितना मार्मिक एवं हृदय से सम्वद्ध है,यह सहृदय ही जानेंगे । बिहारी के इस चित्र को देख कर एक उर्दू कवि की उक्ति वरवस याद आने लगती है :

इन्तहाए ला गरी से जब नज़र आया न मैं ।
हँस के वो कहने लगे विस्तर को झाडा चाहिए ।।

कालिदास ने भी यक्ष के मुँह से मेघ को कहलवाया था :

"जमीन पर एक करवट से पडी हुई मेरी प्रिया को तुम आस-पास विखरे हुए मोतियो की लडियो जैसे आँसुओ से ही पहचान सकोगे । वैसे उनका पता लगाना कठिन है" :

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां ।
तामिवोष्णै विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ।। उत्तर मेघ—२६

विहारी की कल्पना ने तो ऐनक धारी मृत्यु को भी पहचानने मे असमर्थ ठहराकर कालिदास से टक्कर ली है ।

कृशता के साथ-साथ विरहिणी को जब देखो ताप भी चढा रहता है। "विरह बरनि बिललात" देखकर सखियाँ ठडक पहुँचाने के लिए गुलाब जल लाती हैं किन्तु शरीर पर डालते-डालते वह बीच मे ही सूख जाता है। अहो! कैसा तीव्र ताप है कि एक भी बूंद गात्र तक पहुँचने नही पाती। श्री हर्ष की विरहिणी दमयती का भी ऐसा ही हाल था। सखियाँ उसके हृदय पर "सरस सरसी रूहम्" रखना हीचाहती थी कि वह तत्काल "श्वसित निर्मित मर्मरम्"—मुख के भभके से पापड बन जाता था। यहाँ तो खस-खस की "रावटी" का भी प्रबन्ध किया गया, जो जेठ की दोपहरी को भी माघ की जैसी रात बना देने के लिए प्रसिद्ध है, किन्तु क्या किया जाय, वह भी यहाँ "उबली जाती है"। पडोसिने हाल पूछने के लिए आया करती हैं। शीत-ऋतु मे तो उन्हे नायिका के पास बैठे रहने मे कोई असुविधा नही होती, बल्कि सुख ही पहुँचता है क्योकि हीटर जो पास ठहरा, किन्तु ग्रीष्म मे उन्हे भली-भाँति ज्ञात हो जाता है कि इसकी पडोसिन होना अपनी जान जोखिम मे डालना है। वास्तव मे दुगना ताप सहना कोई सरल बात नही है। कोटि यत्न करने पर भी बेचारी की "तन की तपनि" तब तक नही जा सकती "जौ लौ भीजै चीर लौं रहे न प्यौ लपटात" इसका ऐसा भाग्य कहाँ? "प्यौ" देवता तो सुदूर परदेश मे हैं जिनका जल्दी लौट आना बडा कठिन है। इसे तो अपने देवता के ध्यान और चिन्तन मे तिल-तिल कर जलना ही बदा है।

हृदय का पिघल-पिघल कर आँखो से बह आने का करुण चित्र देखिए :

तच्यौ आँच अब बिरह की रह्यौ प्रेम-रस भीजि।
नैनन के मग जल बहै हियो पसीजि पसीजि ॥ ३७८

अर्थात् प्रेम रूपी रस (जल) से भीगा हुआ तथा विरहाग्नि की आँच से सतप्त बेचारी का हृदय पसीज-पसीज कर नैनो के रास्ते जल के रूप मे बह रहा है। यही बिहारी ने सारी की सारी अर्क प्रक्रिया ही सामने रख दी है। किसी वस्तु को खूब भिगो दो और फिर नलिका यन्त्र मे आग पर चढा दो, अर्क निकल आयेगा। नायिका का हृदय तो प्रेमरस मे भीगा हुआ है ही, अग्नि विरह बन गई और आँखे नालिका हैं ही। कलाकार की कूची ने समासोक्ति का कैसा बढिया रग चढाया है कि देखते ही बनता है। सुकवि पं० अम्बिकादत्त व्यास ने उपरोक्त दोहे पर कुण्डलियाँ बनाकर चार चाँद लगा दिए हैं।

दोहो के साथ मिला कर आगे पढ़िए .

"हियो पसीजि-पसीजि हाय दृग द्वार बहत है।
काजर नहिं जरि गए अधिक रगस्याँम गहत है॥
"सुकवि" बूंद मिस टूक-टूक ह्वै निकरि चल्यौ सब।
हाय याहि मे प्रीतम है यह लच्यै आँच अब॥"

अन्त मे अपने को जीवन से निराश अनुभव करती हुई नायिका ने पत्र मे नायक जो सन्देश भेजा वह भी पढ़िए .

बिरह बिपति-दिन परतही तजे सुखनि सब अग ।
रहि अब लौ,ब दुखौ भए चलाचली जिय सग ।। (४४५)

अर्थात् विरह विपत्ति के दिन आने पर सुखो ने तो सभी अग छोड ही दिए थे । दु:ख ही अब तक साथ रहे किन्तु अब वे भी प्राणो के साथ चला-चली कर रहे है—न जाने की ही तैयारी कर रहे है । कितनी मर्मान्तिक एव करुण भरी पत्रिका है । पढ़ते ही सारा शृगार करुण की सीमा पर मँडराने लगता है । उस बेचारी का भी वश नही चलता था । प्राणो का घर हृदय ही हुआ करता है और, जैसा कि ऊपर कह आये हैं जब वही पिघल-पिघल कर बाहर-निकलने लगे तो वह कब तक टिका रह सकता है । एकदम शरीर को मूर्छा और जडता घेरने लगी, और वह दिन भी आ पहुँचा कि रही कराहि आज मुँह "त्राहि न त्राहि" सारे मोहल्ले मे हल्ला मच गया । पडोसिने इकट्ठी हो गई जो भी हाल देखती करुणा के दो आँसू बहा देती, दारुण यत्रणा देखकर किसी एक के मुख से तो निकल ही पडा—"विरह ज्वाल जरिबो लखै मरिबौं भई असीस" अर्थात् इस प्रकार जलती हुई देखने से तो इसका मर जाना एक असीस होगा, क्योकि मर जाने से बेचारी इस महान् कष्ट से तो छूट जायगी । झट उत्तर मे दूसरी भी बोल उठी "मरन मिटे दुख एक को विरह दुहूँ दुख होइ" । यो एक दम सारा वातावरण करुणा से भर गया और बुरे आसार प्रकट होने लगे । सभी देखने वालो के हृदय पुकार उठे कि "अब मरी कि तब मरी", और अन्तत ना हुई भी नहीं । "मीचु सचानु" मृत्यु रूपी जो अब तक "विरह अगिनि लपटनु" के डर से झपट न सकता था, साहस बटोर कर झपट ही पडा और देखते ही देखते बेचारी के "संसौ-हसौ" श्वास रूपी हंस को ले उडा । सबके सब अवाक रह गए । ट्रेजिडी होकर ही रही । एक देवी प्रेम बेदी पर बलि चढ़ गई और भविष्य मे प्रेम के घर मे प्रवेश करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सदा के लिए एक ज्वलत चेतावनी दे गई—"सीस उतारि भुइमाँ धरे तब बैठे घर माँहि ।" मृता ने मनोविनोद के लिए घर मे एक तोता पाल रखा था । बाद मे अकेला वही जिस तरह अपनी मालकिन की करुण कहानी आने-जाने वालो को सुना-सुना कर रुलाया करता था, उसका भी चित्र बिहारी ने खीच रखा है और यह उसके वियोग पक्ष का अतिम चित्र है :

कहे जु बचन बियोगिनी बिरह-बिकल बिललाय ।
किए न को अंसुआ सहित सुवाति बोल सुनाइ ।।

विरह से विकल हुई उस वियोगिनी ने (प्राण त्यागते समय निराश हो) विललाकर जो वचन कहे थे -- उन्हे सुना सुना कर सुग्गे ने किसको अश्रु पूर्ण नही किया ? एक स्वामीभक्त सेवक की तरह वह सुग्गा स्वय भी जीवन पर्यन्त रोता

रहा, सुग्गा क्या रोया, वल्कि सुग्गे के रूप मे स्वय प्रकृति रोई। मृता की चितानल से जो धुआँ निकला वही बादल बन कर आज तक आँसू बहाता रहता है और वियोगिनी के प्रेम-बलिदान की करुण कहानी को सदा हरा-भरा किये रहता है।

हम पीछे कह आये हैं कि वियोग की अन्तिम दशा मृत्यु हुआ करती है, । किन्तु क्या सस्कृत-साहित्य और क्या हिन्दी-साहित्य कहो किसी बिरले ही कलाकार ने मृत्यु का चित्र खीचा होगा। कवियो ने अधिक से अधिक मरणावस्था तक ही वियोगियो को पहुँचाया है, उसके आगे नही गए। बिहारी एक ऐसे कलाकार हुए है जिन्होंने वास्तविक मृत्यु तक का चित्र खीचा है जो हिन्दी-साहित्य मे एक सर्वथा नवीन उद्भावना है।

यहाँ बिहारी सतसई मे बिखरे हुये वियोग के उच्छ्वासो को बटोर एवं पिरोकर एक लडी के रूप मे पाठको के सामने रखा है। यद्यपि कलाकार के एलबम मे अनेक ऐसे चित्र हैं जिनमे वियोग अपनी चरम अवस्था को पहुँच चुका है, परन्तु यहाँ उनमे से कुछ एक का ही उपयोग किया गया है। वियोग की तरह बिहारी का सयोग पक्ष भी अत्यन्त उत्कृष्ट है। कहना न होगा कि कवि ने प्रेम के किसी भी पहलू को अछूता नही छोडा। यही कारण है कि शृगार मे बिहारी से टक्कर लेने वाला अन्य कोई हिन्दी कवि नही है। हिन्दी साहित्य गगन मे यदि "सूर सूर तुलसीससी" है तो श्री राधाचरण गोस्वामी के शब्दो मे "बिहारी पीयूष वर्षी मेघ हैं, जिनके उदय होते ही सबका प्रकाश आच्छन्न हो जाता है। फिर जिसकी दृष्टि से कवि कोकिल कुहकने, मन मयूर नृत्य करने और चतुर चातक चहकने लगते हैं। फिर बीच मे जो लोकेतर भावो की विद्युत चमकती है वह हृदयच्छेद कर जाती है।

———

बिहारी सतसई में नायक-नायिका भेद

● डॉ० भगवानदास तिवारी

हिन्दी-साहित्य के उत्तर मध्यकाल मे रीति-परम्परा का जो चरमोत्कर्ष विहारी सतसई मे परिलक्षित होता है, उसका मूल उत्स सस्कृत-साहित्य-शास्त्र मे पाया जाता है। सस्कृत-साहित्य-शास्त्र मे नायक-नायिका-भेद-निरूपक ग्रन्थो के तीन वर्ग हैं। यथा,नाट्य-शास्त्र, काव्य-शास्त्र और काम-शास्त्र। नाट्य-शास्त्र के अतर्गत भरत मुनि का नाट्य-शास्त्र, धनजय का दशरूपक, सागरनन्दी का नाटकलक्षणरत्न-कोप तथा रामचन्द्र गुणचन्द्र का नाट्यदर्पण उल्लेखनीय हैं। काव्य-शास्त्र मे नायक-नायिका भेद निरूपण दो प्रकार के ग्रन्थो मे पाया जाता है। प्रथम प्रकार के वे ग्रन्थ हैं, जिनमे शृगार रस के अन्तर्गत नायक-नायिका भेद का विवरण मिलता है, जैसे—रुद्रट का काव्यालकार, भोज का सरस्वती कठाभरण और शृगार प्रकाश, आचार्य विश्वनाथ का साहित्य दर्पण आदि। शृगार रस की चर्चा करते हुए नायक-नायिका प्रकरण लिखने वाले रुद्र भट्ट, श्रीकृष्ण कवि, वाग्भट्ट प्रथम, हेमचन्द्र, शारदा तनय, विद्यानाथ, शिग भूपाल, वाग्भट्ट द्वितीय, केशव मिश्र आदि कवि भी इसी वर्ग मे परिगणित किए जा सकते है। दूसरे प्रकार के वे ग्रन्थ हैं, जिनमे केवल नायक-नायिका भेद ही निरूपित किया गया है। भानु मिश्र की रसमजरी या अकवरशाह 'वडे साहव' की शृगार मजरी इसी वर्ग की रचानाएँ है। इनमे भी भानु मिश्र की रसमजरी वडी प्रभविष्णु रचना है, क्योकि कृपाराम कृत हित तरगिणी, सूरदास कृत साहित्य लहरी, नन्ददास की रसमजरी, रहीम कृत वरवै नायिका भेद और सुन्दर कवि कृत सुन्दर शृगार आदि पर भानुमिश्र की रसमजरी का व्यापक प्रभाव पाया जाता है। रीति-काल के आचार्य केशव की रसिक प्रिया पर रसमजरी के अतिरिक्त, साहित्यदर्पण, रसार्णव सुधारक, सरस्वती कण्ठाभरण आदि की भी हल्की सी छाया पायी जाती है। इसी परम्परा मे काव्यशास्त्र के अन्तर्गत रीतिकाल मे अनेक नायक-नायिका भेद निरूपक ग्रन्थो की रचना हुई है।[1] नाट्य-शास्त्र और काव्य-शास्त्र के वाद काम-शास्त्र मे नायक-नायिका भेद का अत्यन्त सूक्ष्म और विस्तीर्ण विवरण मिलता है, इसके लिए वात्स्यायन का कामसूत्र, कक्कोक या कोका पण्डित का रति रहस्य, महाकवि कल्याण मल्ल कृत अनग रंग एवम् ज्योतिरीश्वरी कृत पंच-सायक पठनीय ग्रन्थ हैं।

कामशास्त्र मे नायक-नायिका की रतिक्रीडा को अत्यन्त सूक्ष्म, विशद, व्याव-हारिक एवम् वैज्ञानिक दृष्टि से शास्त्रीय अध्ययन का विपय वनाया गया है और

स्त्रियो के अंग-प्रत्यंग की रचना, उनकी कामशक्ति, प्रेमप्रिया, परिस्थिति, प्रवृत्ति आदि के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया है। काम-शास्त्र के अनुसार स्त्रियो के चार प्रमुख भेद किए गए हैं—(१) पद्मिनी, (२) शखिनी, (३) चित्रिणी, और (४) हस्तिनी। इनके साथ-साथ उसमें कन्याप्रकरण, पारदारिक प्रकरण, वैशिक प्रकरण, ज्येष्ठाक निष्ठावृत्त, अनेक कान्तानुवृत्ति इत्यादि के माध्यम से स्त्री-पुरुष की कामवृत्ति का सागोपाग विवेचन भी किया गया है।

बिहारी की समसामयिक और पूर्ववर्ती नायक-नायिका भेद निरूपक साहित्य-परम्परा के परिपार्श्व मे यदि उनकी सतसई का अन्तर्मन्थन और विश्लेषण किया जाय और बिहारी सतसई मे विद्यमान नायक-नायिका के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदोपभेदो को देखा जाय तो साधिकार इस तथ्य की घोषणा की जा सकती है कि बिहारी पूर्ववर्ती और युगप्रचलित नायक-नायिका भेद परम्परा के केवल ज्ञाता ही नही अपितु उसके निष्णात् आचार्य और प्रकाण्ड विद्वान् भी थे, इसीलिए नायिका के चक्षुग्राह्य रूपसौंदर्य, उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव एवम् क्रियाकलापो के चित्रण मे उन्होंने अद्वितीय सफलता पाई है। संक्षेप मे, बिहारी नायिका की अन्तर्वृत्ति, उसके रूप, यौवन, शृंगार, हाव भाव, कटाक्ष. वाह्य चेष्टाएँ आदि के चतुर चितेरे थे। उनकी वृत्ति नायिका के संयोग शृगार वर्णन मे जितनी रमी है, उतनी वियोग शृंगार वर्णन मे नही, इसीलिये बिहारी की नायिका के विरह वर्णन अतिरजना से आक्रात, अस्वाभाविक और किसी सीमा तक हास्यास्पद तक हो गये हैं। विरह मे उनकी नायिका का साँसो के हिंडोले पर झूलना इसका अच्छा प्रमाण है।[२]

यद्यपि बिहारी सतसई में निरूपित नायक-नायिका भेद काव्यशास्त्रानुमोदित है, फिर भी यदि बिहारी की नायिका को कामशास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तो वह कोमलागी, सहज सौन्दर्य सम्पन्न, साज शृंगार समलंकृता, यौवन श्री विभूषिता पद्मिनी नायिका ही प्रतीत होती है। इस मत के समर्थन मे बिहारी सतसई के कुछ दोहे दिए जाते हैं :

लिखन वैठि जाकी छवी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।

तन भूषन, अजन दृगनि, पगन महावर-रग।
नहि सोभा कौं साजियत, कहिवे ही कौं अग।।

मानहु विधि तन-अच्छ-छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग-पग पोंछन कौं किये, भूषन पायंदाज।।

पहिरि न भूषन कनक के, कहि आवत इहि हेत।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत।।

अंग अंग छवि की लपट, उपटति जाति अछेह।
खरी पातरीऊ तऊ, लगै भरी सी देह॥
कहा कुसुम कह कौमुदी, कितक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखैं, आँख ऊजरी होति॥
बरन बास सुकुमारता, सब बिधि रही समाय।
पँखुरी लगी गुलाव की, गात न जानी जाय॥
अरुन बरन, तरुनी-चरन-अँगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरग रंग सो मनौ, चपि बिछुवन के भार॥
भूषन-भार सँभारिहै क्यो इहि तन सुकुमार।
सूधे पाय न धर परत, सोभा ही के भार॥
रससिंगार मजन किये, कंजन-भजन-देन।
अंजन-रजन हू बिना, खजन-गजन नैन॥
बेदी भाल, तँबोल मुह, सीस सिलसिले बार।
दृग आँजे राजै खरी, एई सहज सिगार॥

बिहारी सतसई मे कामशास्त्र की दृष्टि से शखिनी, चित्रिणी और हस्तिनी के वर्णन नही मिलते। अपनी नायिका की मासलता, ऐन्द्रिकता, रूपछटा, शृगार, भाव, गुण, लक्षण और कार्य-व्यापारो के वर्णन मे बिहारी ने कही-कही मन की कुण्ठाओ और असामाजिक प्रवृत्तियो का भी परिचय दे डाला है। यथा

सहज सचिक्कन स्याम रुचि, सुचि, सुगन्ध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि, बिथुरे सुथरे बार॥

नायिका के बिखरे–सुथरे बालो को देखकर नायक मन के पथ-अपथ की चिन्ता छोड[3]एकदम नायिका की ओर खिच जाना मर्यादा के प्रतिकूल है, किन्तु बिहारी द्वारा इस प्रकार की भाव व्यजना तदयुगीन दरवारी साहित्य और सामन्ती भोगवादी प्रवृत्ति के उन पर पडे हुए क्षयिष्णु प्रभाव का फल है। इसे स्वीकर करने मे हमे किसी प्रकार का सकोच नही होना चाहिये।

नायक-नायिका भेद विषयक साहित्य की परम्परा, बिहारी की नायिका का स्वरूप, तद्युगीन दरबारी साहित्य और सामन्ती प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि मे बिहारी सतसई मे विवेचित जो नायक-नायिका भेद पाया जाता है वह इस प्रकार है :

शास्त्रीय दृष्टि से नायिकाओ के तीन प्रमुख वर्ग किये जा सकते हैं—(१) स्वकीया, (२) परकीया, और (३) साधारणी या सामान्या नायिका। कामवासना की प्रवृत्ति और प्रिय-मिलन की उत्कण्ठा की तीव्रता के अनुसार स्वकीया मे काम-प्रवृत्ति और उत्कण्ठा समान रूप से पाई जाती है। सामाजिक सकोच और भय से

मुक्त वातावरण मे नायक उसके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक विहार कर सकता है। काम-शास्त्र, शृंगार शास्त्र और धार्मिक मान्यता के अनुसार यह स्वकीया प्रधानरस की नायिका बनने मे सक्षम होती है, अत. नायिका के समस्त भेदोपभेदो मे स्वकीया सर्वश्रेष्ठ नायिका होती है। परकीया मे काम की प्रवृत्ति और मिलन की उत्कण्ठा तो समान रूप से पाई जाती है, किन्तु नायक सामाजिक संकोच के कारण भय-मुक्त वातावरण मे उसके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक विहार नही कर सकता, अत जिस नायिका के साथ विहार करने मे उत्कण्ठा और सकोच मे द्वन्द्व हो, उसे परकीया नायिका कहा जाता है। परकीया के भी दो भेद होते है—(१) कन्या और (२) प्रौढा। इन दोनो मे कामवासना और उत्कठा समान रूप से हो सकती है, किन्तु कन्या सामान्यत रतिकला से अनभिज्ञ होती है, वह कालान्तर मे विवाह की समाजिक स्वीकृति पाकर स्वकीया भी हो सकती है, परन्तु प्रौढा कामकला विशारदा होती है अत नायक के साथ उसका प्रच्छन्न संभोग ही संभव होता है। साधारणी नायिका को सामान्या या वेश्या भी कहा जाता है। इसमे न तो मिलन की उत्कठा होती है और न उससे मिलन मे सामाजिक सकोच या भय का भाव ही रहता है। समाज और धर्म की दृष्टि से यह निकृष्ट नायिका है।

(१) स्वकीया :

वय-विचार की दृष्टि से स्वकीया नायिका के तीन भेद होते हैं—(१) मुग्धा, (२) मध्या और (३) प्रौढा। महापात्र विश्वनाथ ने स्वकीया मुग्धा की पाँच विशेषताएँ बताई हैं, जिनके अनुसार उसमे यौवन का प्रथम आगमन, काम का प्रथम संचार, रति मे वामाचरण, मान मे मृदुता एवम् लज्जा का आधिक्य पाया जाता है। बिहारी सतसई मे स्वकीया मुग्धा की पाँचो अवस्थाएँ पाई जाती हैं .

(क) यौवनागम : नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सो बन्ध्यो, आगे कौन हवाल ।।
देह दुलहिया की बढे, ज्यौं ज्यौं जोबन-जोति।
त्यौं त्यौ लखि सौत्यैं सबै, बदन-मलिन दुति होति ।।

यौवन के विकास के साथ ही साथ शारीरिक कान्ति वृद्धिगत होती है। वयः सन्धि भी इसी के अन्तर्गत आती है ·

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग।
दीपति देह दुहूनि मिलि, दिपति ताफता-रग ।।

(ख) काम का प्रथम सचार :

काम का सचार होते ही .

औरे ओप कनीनिकनि, गनी घनी-सिरताज।
मनी घनी के नेह की, बनी छनी पट-लाज ।।

(ग) रति मे वामाचरण :

काम के प्रथम सचार के साथ ही नायिका की आँखो मे कान्ति छाना, उसका लज्जित होना, नाक मोडना, नाही करना, निहोरे लेना, प्रिय द्वारा दिये गये पान को मुख मे लेने से बचने की चेष्टा करना आदि वामाचरण है

नाक मोरि नाही करै, नारि निहोरे लेइ।
छुवत ओठ पिय आँगुरिन, बिरी बदन प्यौ देइ ।।

(घ) मान मृदुता :

मुग्धा का मान कठोर नही मृदु होता है, अत वह दीर्घजीवी नही होता :

मोहि लजावत निलज ये, हुलसि मिलत सब गात।
भानु-उदै की ओस लौ, मान न जान्यौ जात ।।

(ङ) लज्जाधिक्य :

लज्जा का आधिक्य मुग्धा का स्वभावगत गुण है, जो उत्कण्ठा और मिलन मे प्राय प्रकट होता है। यथा .

समरस-समर-सकोच-बस-बिबस न ठिक ठहराय।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति, दुरि दुरि उझकति जाय।

केवल शरीर विज्ञान ही नही, मनोविज्ञान और कामशास्त्र की दृष्टि से वयः सन्धि का काल मनुष्य के जीवन मे भाव, विचार और कार्य व्यापारो मे बड़ा सक्रमण उपस्थित करता है। जब नायिका के शरीर मे यौवनागम प्रारम्भ हो जाता है, तब उसके स्वभाव में सकोच, भीरुता आदि पाये जाते है। मना करने पर हठ करना उसकी किशोरावस्था के चापल्य का लक्षण है और चलते समय कटि मे लचक आना यौवनागम का सकेत है। बिहारी के शब्दो मे इस प्रकार की अज्ञात यौवना नायिका का रूप देखिए :

बरजैं दूनी हठ चढे, ना सकुचै न सकाय।
टूटति कटि दुमची मचक, लचकि लचकि बचि जाय।

यही अज्ञात यौवना नायिका यौवनागम पर एतद्व्यजक शारीरिक परिवर्तनो से परिचित हो उन्हे एकान्त मे देखती है और आयु के साथ-साथ होने वाले शारीरिक परिवर्तन के प्रति सजग हो जाती है। तब उसे ज्ञात यौवना नायिका कहते हैं। बिहारी ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है

छपि छपि देखति कुचनि-तन कर सो अँगिया टारि।
नैन मे निरखति रहै, भई अनोखी नारि ।।

जब ज्ञात यौवना नायिका कुछ दिन नायक के साथ उसके निकट सम्पर्क मे रहती है तब उसकी झिझक कुछ कम हो जाती है। ऐसी स्थिति मे उसे नवोढ़ा

नायिका कहा जाता है। नवोढ़ा मे विश्रम्भ का पदार्पण होते ही वह विश्रब्ध नवोढा कहलाती है। बिहारी सतसई मे इनके वर्णन इस प्रकार मिलते हैं :

नवोढा :

मानहु मुह दिखरावनी दुहिनि करि अनुराग।
सास सदन मन लल हूँ, सौतिन दियौ सुहाग ।।

विश्रब्ध नवोढा :

हँसि ओठन विच कर उचै, किये निचौहैं नैन।
खरै अरैं पिय के प्रिया लगी बिरी मुख दैन ।।

मध्या

मुग्धा मे लज्जाधिक्य के कारण उत्कण्ठा का पूर्ण प्रस्फुरण नहीं हो पाता, किन्तु यौवन के क्रमिक विकास मे जब उसकी उत्कठा और लज्जा-भावना समान स्तर पर पहुँच जाती हैं तब वह मध्या नायिका कहलाती है। मध्या नायिका अपने यौवन-जनित अंगो के विकास की पूर्णता, लावण्य की मधुरिमा और उत्कण्ठा की तीव्रता का प्रदर्शन करती है। यथा :

दुरत न कुच बिच कचुकी चुपरी सारी सेत।
कबि-आँकन के अर्थ लौं, प्रगट दिखाई देत ।।
भई जु छवि तन वसन मिलि बरनि सकै सु न वैन।
आँग-ओप आँगी दुरी, आँगी आँग दुरै न ।।
गडी कुटुम की भीर मे रही बैठि दै पीठि।
तऊ पलक परि जात इत, सलज हँसौही दीठि ।।

कुटुम्ब की भीड मे गडी हुई और प्रिय की ओर पीठ करके बैठी हुई नायिका की उत्कंठा का अतिरेक हँसौही दीठि मे प्रकट होना और उसका नायक से दृष्टि समागम करना मध्या के सहज कार्य हैं। मुग्धा के वचन, चेष्टा, कार्यों और प्रेम-व्यंजना में ज्यो-ज्यो प्रगल्भता आती जाती है, वह प्रौढा होने लगती है। प्रिय के समागम की इच्छा से नीद का बहाना बनाकर सखियो को विदा करना या रतिसुख के बाद अधखुले नेत्रो से नायक के गले लगना उसके प्रौढ होने के लक्षण है; उदाहरणार्थ बिहारी सतसई के दो दोहे यहाँ उद्धृत किए जाते हैं।

झुकि झुकि झपकौहैं पलनु, फिरि फिरि जुरि जमुहाइ।
बीदि पियागम नीद मिस, दी सब सखी उठाइ ।।
लहि रति सुख लगियै हियै, लखी लजौही नीठि।
खुलति न मो मन बँधि रही वहै अधखुली डीठि ।।

प्रौढा :

प्रौढा नायिका मे यौवन का चरम विकास अंगप्रत्यंग मे दिखाई देता है :

लगी अनलगी सी जु विधि, करी खरी कटि खीन ।
कए मनौ वै ही कसर, कुच नितम्ब अति पीन ।।

यौवनोन्माद मे उसके नेत्र लाज के बधन मे बँध नही पाते :

लाज लगाम न मानही, नैना मो मन नाहि ।
ये मुँह जोर तुरग लो, ऐंचत हू चलि जाहिं ।।

प्रिय मिलन की उत्कण्ठा के आधिक्य से वह लोकलाज, गुरुजनो की चिन्ता, या वक्ताव्यावक्तव्य की भी चिन्ता नही करती । बिहारी के शब्दो मे प्रौढा का यह रूप इस प्रकार दिया गया है ·

तजी सक, सकुचति न चित, बोलति बाक कुबाक ।
दिन छिनदा छाकी रहति, छुटतु न छिन छवि छाक ।।

प्रौढा की क्रीडाएँ स्वच्छन्द और सभाषण एक दम निस्सकोच होते है । उसके कथनो मे उपालम्भ, वक्रोक्ति, आदि के कारण जो वाग्वैदग्ध्य उत्पन्न होता है, उसमे विब्बोक का आधिक्य होता है । यथा

स्वच्छद क्रीड़ाएँ ·

छिनक चलति, ठिठुकति छिनक, भुज प्रीतम गल डारि ।
चढी अटा देखत घटा, विज्जु छटा सी नारि ।।

निस्संकोच सभाषण

मोहि दियो, मेरो भयौ, रहत जु मिलि जिय साथ ।
सो मन बाँधि न सो पिये, पिय सौतिन के हाथ ।।

वाग्दवैदग्ध्य :

नेकु उतै उठि वैठिये, कहा रहे गहि गेहु ।
छुटी जाति नहदी छिनकु, महदी सूखन देहु ।।

आयु और स्वभाव के अनुरूप प्रौढा मे काम-भाव का अतिरेक पाया जाता है, जिसका वर्णन करते समय बिहारी ने विपरीत रति आदि के चित्र खीचे हैं । शालीनता के दायरे कुछ दूर होने पर भी बिहारी सतसई से इस प्रकार का एक उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :

पर्यौ जोरु विपरीत रति, रुपी सुरत रनधीर ।
करति कुलाहल किंकिनी, गह्यो मौन मंजीर ।।

सामन्ती युगो मे प्राय सर्वत्र बहुपत्नी प्रथा, परदारागमन, वेश्यावृत्ति आदि दुर्गुण पाये जाते थे । ये दुर्गुण समाजव्यापी भोगवादी वृत्ति के प्रदेय हैं । इनका

परिणाम नायक नायिका-भेद पर भी पडा है। यदि नायक अन्य नायिका से सभोग करता है और उसके इस अपराध का पता मध्या या प्रौढा नायिका को चलता है तो मानसिक प्रतिक्रिया के आधार पर उनके तीन तीन अवान्तर उपभेद किए गये हैं। यथा—धीरा, अधीरा, धीरा अधीरा।

मध्या धीरा

जब मध्या नायिका को अपने प्रिय के पर नारी प्रेम का पता चल जाता है, तब वह प्रिय के अपराध को जानते हुए भी लाक्षणिक उक्ति या वक्र कथनो द्वारा अपना क्रोध प्रकट करती है, इसीलिए वह धीरा है। कभी कभी वह उपहास मय वचन कहकर भी अपना उद्दिष्ट स्पष्ट कर देती है। यथा ·

पलनु पीक, अजन अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिले सु भली करी, भले बने हौ लाल॥

मध्या अधीरा :

प्रिय के अपराध को जानकर जब मध्या के धैर्य का बाँध टूट जाता है, तब वह मध्या अधीरा नायिका कहलाती है। वह परुष वचन द्वारा प्रिय के समक्ष अपना आक्रोश प्रकट करती है। उसकी और प्रौढा की अधीरता मे अन्तर इतना ही है कि मध्या की उक्तियों मे प्रौढा की अपेक्षा वाणी का संयम अधिक होता है, अत. उसके बोल अधिक कटु नहीं होते। जैसे

नखरेखा सोहैं नई, अलसौहे सब गात।
सौहैं होत न नैन ये, तुम सौहे कत खात॥
सदन सदन के फिरन की, सद न छुटै हरिराइ।
रुचै जितै विहरत फिरौ, कत विहरत उर आइ॥

मध्या धीरा अधीरा

यह नायिका न तो धीरा सी गभीर होती है, न अधीरा सी अधीर हो नायक के प्रति परुष वचन ही कहती है, न वह उसका उपहास ही करती है और न कटु शब्दों से अपना क्रोध व्यक्त करती है। यह केवल चेष्टा और मुद्रा द्वारा मान जताती है :

नहिं वचाइ चितवति दृगनु, नहिं बोलति मुसकाइ।
ज्यो ज्यो रूखी रुख करति, त्यो त्यो चित चिकनाइ॥
हौं हारी करके हहा, पायन पार्‌यो प्यौर।
लेहु कहा अजहूँ करे, तेह तरेरे त्यौर॥

प्रौढा धीरा :

प्रौढ़ा धीरा अपनी चतुराई से नायक के प्रति अपने क्रोध भाव को छुपाकर उसके प्रति अधिक सम्मान और शिष्ट व्यवहार प्रदर्शित करती है। उसके व्यवहार

व। व्र परिवर्तन ही नायक के मन पर नायिका की मनोदशा का प्रभाव प्रकट करता है। यथा :

खरै अदब इठला हठी, उर उपजावति त्रास।
दुसह संक विस को करै, जैसे सोठि मिठास॥

प्रौढा अधीरा :

प्रौढ़ा अधीरा क्रोधातिरेक में कटु शब्दो का प्रयोग करते समय नही हिचकती बिहारी कहते हैं कि

मार्‌यौ मनुहारिनि भरी. गार्‌यौ खरी मिठाहिं।
वाको असि अनखाइबो, मुस्काहट बिन नाहिं॥

प्रौढा धीरा अधीरा :

यह न तो यह अपना क्रोध छिपाती है न अधीरा की तरह कटु शब्द बोलती है। यह नायक पर करारे व्यग्य कसती है और व्यग्योक्तियो द्वारा अपना आन्तरिक क्षोभ प्रकट कर स्पष्ट शब्दो मे नायक के दोषो का वर्णन करती है·

कत लपटइयतु मो गरै, सो न जुही निसि सैन।
जा चम्पक बरनी किए, गुल्लाला रग नैन॥
तुरत सुरत कैसे दुरत, मुरत नैन जुरि नीठि।
डौडी दे गुन रावरे, कहति कनौंडी डीठि॥

२ परकीया

कन्या और प्रौढा, परकीया नायिका के दो भेद होते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि संभावना के आधार पर कन्या स्वकीया भी हो सकती है किन्तु जब तक उसका परिणय नही होता तब तक गुरुजनो के आश्रित होने के कारण कन्या परकीया नायिका ही मानी जाती है। इसके साथ सामान्यत· स्वच्छन्दतापूर्वक विहार संभव नही होता। कन्याप्रेम धर्म द्वारा वर्जित अत. अनुचित होता है किन्तु यदि वह दाम्पत्य प्रेम मे परिणत हो जाय तो उसके दोष का मार्जन हो जाता है। दुष्यन्त और शकुन्तला का गन्धर्व विवाह इसका अच्छा उदाहरण है। यो भी लरिकाई के प्रेम की जडे बडी गहरी होती हैं। बिहारी ने इसका विवरण इस प्रकार दिया है :

दोऊ चोर मिहोचनी, खेल न खेलि अघात।
दुरत हियैं लपटाइ कै. छुअत हिये लपटात॥

दाम्पत्य सम्बन्ध के बिना भी कन्या को मिलन-स्पर्श आदि के सुख की रसानुभूति यौवनागम के साथ-साथ होने लगती है। सामान्य कार्यव्यापारो मे भी वह हँसकर. मुस्काकर, नेत्र-समागम द्वारा मन मिलाने की कला मे कुशल हो जाती है।

जैसे .

सहित सनेह संकोच सुख, स्वेद कंप मुस्कानि ।
प्रान पानि कर आपने, पान धरे मो पानि ।।
उन हरकी हँसि कै इतै उन सौपी मुस्काई ।
नैन मिले मन मिलि गये, दोऊ मिलवत गाइ ।।

नायिका के इस प्रेम प्रकरण का यह प्रभाव पडा कि

चलतु घैरु घर-घर तऊ, घरनि न घर ठहराइ ।
समुझि उही घर कौ चले, भूलि उही घर जाइ ।।

परकीया प्रौढ़ा का प्रेम, लोक और शास्त्र दोनो के द्वारा वर्जित है, फिर भी साहित्य मे परकीया का जितना वर्णन हुआ है, उतना स्वकीया का नही । कदाचित सावाध होने के कारण परकीया का प्रेम अधिक मादक और आनंदकारी होता है, इसीलिए उसकी साहित्य मे अधिक चर्चा हुई है । बिहारी ने परकीया का अत्यन्त अल्प वर्णन किया है । फिर भी उनकी सतसई मे इसके प्रमाण हैं ही

अँगुरिनु ऊँचि भरु भीति दै, उरनि चितै चख लोल ।
रुचि सौ दुहूँ दुहूँन के, चूमे चारु कपोल ।।
देवर फूल हने जु सू, उठे सबे अँग फूलि ।
हँसी करत औषधि सखिनु, देह ददोरनु भूलि ।।

नायिकाएँ स्वभावत अपने प्रेम रहस्य को गोपनीय रखने मे निपुण होती हैं । अतएव नायिका भेद-निरूपक आचार्यो ने प्रेम रहस्य के आधार पर भी नायिकाओ के अनेक भेद किये हैं । प्रस्तुत निबन्ध की सीमा मे उन समस्त भेदोपभेदों का विवेचन तो सभव नही है, फिर भी बिहारी-सतसई के सन्दर्भ मे उनमे से प्रमुख भेदो की चर्चा करना अत्यन्त आवश्यक है ।

(क) जो नायिका अपनी वाणी, चेष्टा और मुद्राओ द्वारा अपने प्रेम-व्यापार तथा तत्सम्वन्धी भाव को छुपाने का यत्न करती है, उसे गुप्ता नायिका कहा जाता है । गुप्ता नायिका के दो उपभेद होते हैं .

(१) भाव गोपना

जो नायिका प्रेमजनित कंपादि सात्विक भावो को अन्य माध्यम से उत्पन्न बताकर मूल भाव छिपाना चाहे, उसे भाव गोपना कहते हैं । जैसे

कारे बदत डरावने, कत आवत इहि गेह ।
कै वा लखी सखी लखैं, लगै थरथरी देह ।।

(२) सुरत गोपना :

जो नायिका बहानेवाजी से अपनी सुरति को गोपनीय बनाने का यत्न करती

है, उसे सुरत गोपना नायिका कहा जाता है। बिहारी की सुरत गोपना नायिका का उदाहरण लीजिये :

लटकि लटकि लटकत चलत, डटत मुकुट की छाँह।
चटक भर्यौ नट मिलि गयौ, अटक भटक बन माँह ।।

रतिव्यापार मे होने वाले विलम्ब को बन मे मार्ग भूलने का बहाना, करके छुपाने वाली उक्त नायिका सुरत गोपना है।

(ख) जो नायिका परिस्थितिवश नायक के प्रति अपने अनुराग का परिचय वाणी और क्रिया की साकेतिकता के द्वारा देती है, उसे विदग्धा नायिका कहते हैं। विदग्धा नायिका कहते हैं। विदग्धा उक्ति-कौशल से या सकेत से अपना प्रेम प्रकट करती है। यथा

घाम घरीक निवारिये, कलित ललित अति पुज।
जमुना तटहिं तमाल तरन, मिलत मालती कुज ।।
लखि गुरुजन बिच कमल सौं सीस छुआओ स्याम।
हरि सम्मुख कर आरसी, हियैं लगाई बाम ।।

उक्त दोहे मे प्रथम दोहे मे नायिका का उक्तिकौशल से यमुना तट पर नायक से सकेत स्थल पर सुरत का अनुरोध करना तथा दूसरे दोहे मे क्रिया विदग्धा का प्रेम व्यापार दृष्टव्य है।

(ग) विलक्षिता नायिका भरसक प्रयत्न करने पर भी अपने भाव अपने भाव या सुरत को गोपनीय नही रख पाती, अत. विलक्षित हो जाने के कारण वह विलक्षिता कहलाती है·

नाउँ सुनत ही ह्वै गयौ, तन औरे मन और।
दवै नही चित चढि रह्यौ, अवै चढ़ाये त्यौर ।।

(घ) अनेक पुरुषो से रति-सम्बन्ध रखने वाली अनिश्चितैककान्ता नायिका कुलटा कहकाती है। जैसे .

लखि लोने लोयननुके, कोयन होइ न आजु ।।
कौन गरीव निवाजिवौ, को तूठ्यो रति राजु ।।

उक्त दोहे मे 'आजु' शब्द कुलटा की नित्य नूतन प्रेम-प्रवृत्ति का सकेत करता है, अत· उक्त दोहे मे वर्णित नायिका कुलटा है।

(ङ) अनुशयाना नायिका उस नायिका को कहते हैं, जो संकेत स्थल के नष्ट होने पर, समय पर नायक से न मिल सकने पर या नायक के मिलन की सभावना की समाप्ति पर पश्चाताप करती है। देवर के विवाह में उसके प्रेम से वंचित होने वाली सतसई की अनुशयाना नायिका की स्थिति देखिये .

और सबै हरखी हँसति, गावति भरी उछाह ।
तूँ ही वधू बिलखी फिरै, क्यौ देवर के ब्याह ।।

स्पष्ट है कि देवर का विवाह हो जाने पर नायिका उसके प्रेम से वंचित हो जायगी, अतः वह दुखी है । वह अनुशयाना से बिल्कुल विपरीत स्थिति की नायिका संभोग-सुख-प्राप्ति की सभावना से जब प्रसन्न होती है, तब उसे मुदिता कहते हैं :

चलत देत आभास सुनि उही परोसिहि नाह ।
लसी तमासे की दृगनु, हाँसी आँसुन माँह ।।

३—साधारणी :

बिहारी सतसई में साधारणी नायिका या वेश्या का कोई उदाहरण हमारे देखने मे नही आया । वेश्या का प्रेम, प्रेम के लिए नही धन के लिए होता है, उसकी उत्कंठा भावजन्य न होकर व्यवसाय प्रेरित होती है । अर्थ की काफी खीच-तान के बाद निम्नलिखित दोहा साधारणी से जोड़ा जा सकता है :

ज्यो ज्यों पटु झटकति हठति, हँसति नचावति नैन ।
त्यो त्यो निपट उदारहू, फगुआ देन बनै न ।।

साधारणत. फगुआ देने की प्रथा स्वकीया के लिए नही होती । फगुआ निश्चित रूप से परकीया के लिए दिया जाता है, किन्तु उक्त दोहे मे वर्णित परकीया का वस्त्र झटकना, हँसना, नेत्र नचाना आदि कुछ कार्यव्यापार ऐसे है, जो साधारणी या वेश्या की क्रियाओ से मिलते-जुलते हैं । यो चचल प्रवृत्ति की नटखट परकीया नायिका मे, उक्त दोहे मे विवेचित नायिका के गुण-धर्म मिल सकते हैं ।

नायक के प्रेम के परिमाण के आधार पर भी नायिकाओ के दो भेद किये जाते हैं । जिस नायिका के प्रति नायक का अत्यन्त उत्कंठापूर्ण प्रेम होता है, उसे ज्येष्ठा और जिसके प्रति नायक का अपेक्षाकृत कम प्रेम होता है, उसे कनिष्ठा कहा जाता है । सतसई के एक ही दोहे मे उक्त दोनो प्रकार की नायिकाओ के प्रमाण लीजिये .

मिस ही मिस आतप दुसह, दई सबै बहराइ ।
चले ललन मन मनभावतिहि तन की छाँह छिपाइ ।।

आतप के बहाने टरकाई गई सब नायिकाएँ कनिष्ठा और तन की छाँह मे छिपकर चलने वाली नायिका ज्येष्ठा है ।

बिहारी ने इस दिशा मे एक मौलिक उद्भावना का परिचय दिया है । उन्होने एक दोहे मे दो नायिकाओ को एक ही नायक की समप्रिया होने का सकेत किया है

आयो मीत विदेस ते, काहू कह्यो पुकारि।
सुनि पुलकी बिहँसी हँसी, दोऊ दुहुन निहारि॥

नायक-नायिका भेद और मानव स्वभाव के अनुसार बिहारी का उक्त वर्णन किस सीमा तक सत्य के निकट है ? इसका निर्णय हम रसिक पाठकों पर छोड देना चाहते हैं।

अवस्था-भेद के अनुसार भी नायिकाओ के नौ भेद होते हैं, जिन सबके उदाहरण बिहारी सतसई मे बडी सतर्कता से गूँथे हुए मिलते हैं। इनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

१—स्वाधीनपतिका

जिस नायिका का पति अन्यत्र अनासक्त होकर केवल अपनी ही नायिका के अधीन रहता है, उसी के शृगार मे रुचि लेता है तथा उसी के ही सान्निध्य मे नित्य रहना चाहता है, उसे स्वाधीनपतिका नायिका कहते हैं। बिहारी की स्वाधीनपतिका नायिका की अकड देखिए :

कियौ जु चिबुक उठाइ कै, कम्पित कर भरतार।
टेढीयै टेढी फिरति, टेढे तिलक लिलार॥

२—कृष्णाभिसारिका :

अँधेरे मे काले वस्त्र धारण कर प्रच्छन्न रूप से प्रिय समागम के लिए संकेत-स्थल पर जाने वाली नायिका को कृष्णाभिसारिका कहते हैं :

निसि अँधियारी नील पट, पहिरि चली पिय गेह।
कहौ दुराई क्यो दुरै, दीपशिखा सी देह॥

३—शुक्लाभिसारिका :

चाँदनी रात्रि मे शुभ्र वस्त्र धारण कर जो नायिका प्रिय से अभिसार करने के लिए जाती है, उसे शुक्लाभिसारिका नायिका कहते हैं। बिहारी ने इसके वर्णन मे अतिशयोक्ति की सीमा छू ली है :

जुबति जोन्ह मे मिलि गई, नैकु न होति लखाइ।
सौंधे के डोरैं लगी, अली चली सँग जाइ॥

नायिका का चाँदनी मे अदृश्य होना बिहारी की नाजुक ख्याली का अच्छा प्रमाण है। अभिसार के क्षेत्र मे बिहारी ने नायक-नायिका मिलन की एक नई पद्धति भी ईजाद की है। जिसके अनुसार नायक-नायिका वेष परिवर्तन कर दाम्पत्य रति का सुख लूटते हैं। इसका प्रमाण है :

राधा हरि, हरि राधिका, बनि आए संकेत ।
दम्पति रति विपरीत सुख, सहज सुरत हूँ लेत ।।

४—कलहान्तरिता :

प्रणय के समय कलह हो जाने के कारण जब नायिका रूठ जाती है और नायक से कलह करती है, तब उसे कलहान्तरिता कहते हैं। सखियाँ ऐसी नायिका को प्रिय से मिलाने का हर सभव उद्यम करती हैं। यथा .

सौहे हू हेर्यौ न तैं, केती द्याई सौंह ।
ए हो क्यौं वैठी किये, ऐठी ग्वैंठी भौंह ।।
हम हारी कै कै हहा, पायनु पार्यौ प्यौर ।
लेहु कहा अजहूँ किये, नेह तरेरे त्यौर ।।

५—वासक सज्जा :

प्रियतम की प्रतीक्षा मे साज-शृंगार-सुसज्जिता नायिका वासक सज्जा कहलाती है।

वेदी भाल तँबोल मुख, सीस सिलसिले बार ।
दृग आँजे राजे खरी, एई सहज सिंगार ।।

६—विप्रलब्धा :

जब नायिका संकेत स्थान पर पहुँचने पर भी नायक को नही पाती तब उसे विप्रलब्धा कहते हैं :

साहस करि कुंजन गई, लख्यौ न नन्दकिशोर ।
दीपशिखा सी थरहरी, लगै बयार झकोर ।।

७—विरहोत्कंठिता :

रात भर प्रतीक्षा करने पर भी जब प्रात काल तक नायक नही आता और नायिका विरह वेदना से अत्यन्त उद्विग्न हो जाती है, तब उसे विरहोत्कंठिता नायिका कहते हैं :

नभ लाली चाली निशा, चटकाली धुनि कीन ।
रति पाली आली अनत, आये बनमाली न ।।

८—खंडिता :

जब कोई नायक अन्य नायिका से संभोग कर उसके संभोग-चिन्ह धारण किए हुए अपनी नायिका के पास पहुँचता है, तब उस नायिका को खडित कहते हैं। खडिता के वर्णन मे नायक के अन्य नायिका-संभोग-चिन्हो का वर्णन भी समाविष्ट होता है। जैसे :

पावक सो नैनन लगै, जावक लग्यो जु भाल ।
मुकुर होहुगे नैकु मे, मुकुर विलोकहु लाल ।।

९—प्रोषित पतिका :

प्रवासी पति की विरहिणी नायिका प्रोषित पतिका कही जाती है। इसके तीन भेद होते हैं :

(क) प्रवत्स्यत्पतिका :

जिस नायिका का पति परदेश जाने वाला है और उसके प्रवास की कल्पना से नायिका को विरह भासमान हो रहा है, उसे प्रवत्स्यत्पतिका नायिका कहते हैं :

रहि है चंचल प्रान ए, कहि कौन की अगोट।
ललन चलन की चित्त घरी, कल न पलनु की ओट ॥

(ख) प्रवसत्पतिका :

जब नायिका घर मे और नायक परदेश मे हो तब विरहिन, नायिका को प्रवसत्पतिका नायिका कहा जाता है :

कागद पै लिखत न बनै, कहत सदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियौ, मेरे हिय की बात ॥

प्रवसत्पतिका का विरह पाचाली के चीर सा लम्बा होता है :

रह्यौ ऐचि अत न लहै, अवधि दुसासन वीर।
आली बाढत विरह ज्यौ, पाचाली को चीर ॥

(ग) आगत पतिका :

जिस नायिका का पति परदेश से लौट तो आया हो किन्तु घर मे आने पर भी उसका नायिका से मिलन न हुआ हो, उसे आगत पतिका नायिका कहते है। ऐसे अवसर पर सुदीर्घ विरह के अन्त की कामना और मिलन की अदम्य आकाक्षा के कारण आगत पतिका को एक-एक पल ब्रह्मा के एक-एक पल सा लगता है :

गहे बरोठे मे मिलत, पिय प्राननु के इंसु।
आवत आवत ही भई, विधि की घरी घरी सु ॥

भानुदत्त ने रसमंजरी मे नायिका की दशा-भेद के अनुसार उनके तीन भेद किए हैं : (१) अन्य सभोग दु खिता, (२) गर्विता और (३) मानवती। बिहारी सतसई मे इन तीनो प्रकार की नायिकाओ के विधिवत् विवरण और प्रमाण उपलब्ध होते हैं :

१—अन्य सभोग दु खिता :

जब कोई भी नायिका अपनी सखी, दूती या सपत्नी के अगो पर सुरतचिन्ह देख उसे नायक द्वारा सभुक्त समझकर दुखी होती है तब उसे अन्य संभोग दु.खिता

कहा जाता है। यहाँ यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि खंडिता मे नायक के शरीर पर सुरत चिन्ह दिखाई देते हैं, जबकि अन्य संभोग दु:खिता नायिका के वर्णन मे नायिका के समक्ष सुरतचिन्ह धारिणी दूती या अन्य नायिका जाती है। यथा :

खलित वचन अधखुलित दृग, ललित स्वेदकन जोति ।
असन बदन छवि मदन की, खरी छबीली होति ।।

उक्त दोहे मे लब्ध सुरतानदा दूती के अधखुले दृग, प्रस्वेद कण, मुख पर चुम्बन के फलस्वरूप दन्त चिन्ह। देखकर तथा उसके स्खलित वचन सुनकर उपालभ देने वाली नायिका अन्य सभोग दु खिता है।

२—गर्विता :

जब कोई नायिका अपने प्रेम, सुरत, गुण आदि पर गर्व करती है, तब वह गर्विता कहलाती है। विस्तार भय से विहारी सतसई से इनके कतिपय उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा

(अ) प्रेम गर्विता :

औरे गति, औरे वचन, भयौ बदन रग और।
द्यौसक तैं पिय चित चढी, कहैं चढेऊ त्यौर ।।

(ब) सुरत गर्विता :

तीज परब सौतिनु खजे, भूषत बसन सरीर।
सबै मरगजे मुंह करी, उहै मरगजे चीर ।।

(स) गुण गर्विता :

सुघर सौति वस नाह सुनि, दुलहिहि अधिक हुलास।
लखी सखी तन दीठि करि, सगरव, सलज, सहास ।।

३—मानवती :

मान करने वाली नायिका मानवती कहलाती है।

गह्यौ अवोलो वोलि प्यौ, आपुहि पठे वसीठि ।
दीठि चुराई दुहुन की, लखि सकुचौंही दीठि ।।

दूती प्रकरण

दूती प्रकरण नायिका भेद का आनुषंगिक विषय है। नायक-नायिका के पारस्परिक मिलन, प्रेम के प्रसार तथा प्रेम-प्रणिय मे दूती का महत्व निस्सदिग्ध है, क्योंकि वह नायक-नायिका के अन्तर मे प्रेम जगाकर उसे सुरक्षित रखती है, उनके

मिलन के लिये संकेत-स्थल का निश्चय, मिलन का आयोजन, मान की दशा मे नायक नायिका मे सद्भाव और आकर्षण बढाकर उनका पुनर्मिलन कराती है। नायक के समक्ष नायिका की प्रशसा कर उसके मन को नायिका की ओर आकृष्ट करती है :

बरजीते सर मैंन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान ते, हरि नीके ये नैन ।।

और नायिका के समक्ष नायक के रूप-गुण का बखान कर उसके प्रति नायिका के मन मे रुझान पैदा करती है :

मकराकृत गोपाल के, कुन्डल सोहत कान।
धर्यो मनहुँ हिय धर समर, ड्योढी लसत निसान ।।

भ्रम और मान की अवस्था मे दूती नायिका की गलतफहमी दूर कर उसे समझाती है :

तेह तरेर्यो त्यौर करि, कत करियत द्दग लोल।
लीक नही यह पीक की, श्रुति मनि झलक कपोल ।।

नायिका के मान की कटुता को वह समझा-बुझाकर मृदुता मे बदलने की चेष्टा करती है

चलौ चलैं, छूटि जायगो, हठ रावरैं संकोच।
खरे चढाए हेति अब, आए लोचन लोच ।।

किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी दूती नायक-नायिका के मध्य उसके प्रेम की गोपनीयता जानने के कारण वाछनीय नही है। दूतियो के सन्दर्भ मे साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने सखी, नटी, धायपुत्री, पडोसिन, सन्यासिनी, शिल्पकार की स्त्री आदि के नाम गिनाए हैं, पर इन सबकी अपेक्षा नायिका का स्वय दूतिका होना श्रेयस्कर है। बिहारी ने नायक-नायिका के मिलन के लिए दूती का महत्व तो स्वीकार किया है, किन्तु प्रेम-सम्बन्ध होते ही वे दूती को टालना जरूरी समझते हैं :

कालबूत दूती बिना, जुरै न और उपाइ।
फिर ताकैं टारैं बनैं, पाकैं प्रेम लदाइ ।।

अपनी इच्छा को स्वयं प्रेषित करने वाली नायिका स्वय दूतिका कहलाती है। जैसे :

घाम घरीक निवारिये, कलित ललित अलि पुज।
जमुना तटनि तमाल तरु, मिलत मालती कुज ।।

उक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बिहारी

सतसई नायिका-वर्णन-प्रधान काव्य है और उसमें शास्त्र-वर्णित प्रायः सभी प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण प्राप्त हैं। बिहारी पर यह युग प्रचलित नारी-भावना और परम्परित नायिका-भेद का प्रभाव माना जाना चाहिये।

खोज करने पर बिहारी सतसई में काव्य-शास्त्र सम्मत नायक भेद के भी उदाहरण मिल जाते हैं। काव्य-शास्त्रियों ने नायकों के चार भेद किये हैं। (१) दक्षिण, (२) अनुकूल, (३) शठ और (४) धृष्ट। बिहारी सतसई में इनका परिचय इस प्रकार मिलता है।

(१) दक्षिण नायक :

एक नायिका की अपेक्षा जो अन्य नायिकाओं से भी प्रेम सम्बन्ध रखता है, उसे दक्षिण नायक कहते हैं। जैसे :

आयो मीत बिदेस तैं, काहू कह्यौ पुकारि।
सुनि पुलकी बिहँनी हँसी, दोऊ दुहुन निहारि॥

दो नायिकाओं का प्रेमी दक्षिण नायक है।

(२) अनुकूल नायक :

यह केवल एक पत्नीव्रती होता है, अत उसका अनुराग एक ही नायिका पर केन्द्रित रहता है उसकी यह विशेषता होती है कि :

राति द्यौस हौंसे रहै, मानु न ठिक ठहराइ।
जेतो औगुन ढूँढिये, गुनै हाथ परि जाइ॥

अनुकूल नायक में चरित्र और प्रेमनिष्ठा विषयक दोष खोजने पर भी नहीं मिलते।

(३) शठ नायक :

जब नायक वास्तविक अनुराग एक से और उसका दिखावा किसी अन्य नायिका के सामने करता है तब वह शठ नायक कहलाता है। बिहारी ने शठ नायक का वर्णन करते हुए लिखा है कि किसी अन्य प्रेमिका का छल्ला (अँगूठी) कनिष्ठिका अँगुली में पहनकर जब शठ अपनी मानिनी नायिका को मनाने आता है, तब वह बड़ी चतुराई से कहती है कि :

आये आपु भली करी, मेटन मान मरोर।
दूरि करौ यह देखि है, छला छिगुनिया छोर।

(४) धृष्ट नायक :

जो नायक अपराध करने पर भी शंकित न हो, दोष सिद्ध होने पर भी बहाने-

बाजी करे, नायिका से गाली या मार खाने पर भी लज्जित न हो, ऐसे मानापमान से ऊपर उठे हुए 'सिद्ध पुरुष' को धृष्ट नायक कहा जाता है। यथा :

मार्‌यौ मनुहारीं भरी, गार्‌यौ खरी मिठाहिं।
वाको अति अनखाइबो, मुसुकाहट बिन नाहिं।

इस प्रकार बिहारी-सतसई मे नायक-नायिका भेद का सर्वांगीण विवेचन उपलब्ध होता है। जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है—बिहारी का नायक-नायिका-भेद विषयक ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक और शास्त्रीय था। उन्होंने रीति-परम्परा के ग्रन्थो का गहन अध्ययन, मनन, चिंतन और अनुशीलन किया था। इसीलिए उनके दोहो मे नायक-नायिकाओ के भेदोपभेद, उनके हावभाव, नख-शिख वर्णन, अलकार, गुण, दोष आदि का विधिवत वर्णन मिल जाता है। दोहे जैसे अल्पाकार छंद मे अनेक भाव, क्रिया, चेष्टा आदि एक साथ गुम्फित होने के कारण ही रसिको मे यह उक्ति चल पडी है, कि "सतसैया के दोहरे, ज्यो नाविक के तीर। देखन मे छो लगैं, घाव करैं गम्भीर।" जो हो इतना स्पष्ट है कि सतसई के भाव-सौन्दर्य को देखने के लिए द्रष्टा की योग्यता और ग्राहकता अनिवार्य है।

संदर्भ-संकेत

१—देखिए—चिन्तामणि कृत कवि कुल कल्पतरु, तोष कृत सुधानिधि, महाराज जसवन्त सिंह कृत भाषा भूषण, मतिराम का रसराज, कुमारमणि का रसिक रसाल, देव कृत भाव-विलास, रस विलास, भवानी विलास, सुखसागर तरग, सोमनाथ कारसपीयूष निधि, गुलामनबी रसलीन का रस-प्रबोध, आचार्य भिखारीदास का शृगार-निर्णय, पद्माकर का जगद्विनोद, बेनी प्रवीन कृत नवरस तरंग, प्रतापसाहि कृत व्यग्यार्थ-कौमुदी आदि।

इनमे भी चिन्तामणि कृत कविकुल कल्पतरु, जसवन्त सिंह कृत भाषा भूषण, मतिराम कृत रसराज और कुमारमणि कृत रसिक रसाल, भानु मिश्र की रसमंजरी से प्रभावित रचनाएँ हैं।

२— इत आवति चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासनि साथ॥

३— मन का पथ-अपथ की चिन्ता छोडना, स्वकीया नायकिा के प्रसग मे मे नही, अपितु परकीया के प्रसंग मे सम्भव है, जो परनारी प्रेम के रूप मे एक असामाजिक भावना को जन्म देता है। — लेखक

बिहारी के काव्य में प्रकृति

● शत्रुघ्न

मनुष्य सौन्दर्य प्रिय होता है। इस सौन्दर्य प्रियता के कारण वह सर्वत्र सौन्दर्य की खोज करता रहता है और सौन्दर्य सृष्टि करना चाहता है। डॉ० रघुवश के अनुसार "प्रकृति मे विशाल व्यापक सौन्दर्य है और काव्य सौन्दर्य का क्षेत्र है।"[1] डॉ० किरण कुमारी गुप्त की दृष्टि मे "प्रकृति वैज्ञानिक और कवि दोनो की आस्था है। दोनो ही उसमे निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करते हैं, किन्तु दोनो के दृष्टिकोण मे अन्तर है। वैज्ञानिक प्रकृति के बाह्य रूप का अवलोकन करता और सत्य की खोज मे रहता है परन्तु कवि बाह्य रूप पर मुग्ध होकर भावो का तादात्म्य स्थापित करता है।"[2] इसीलिए वैदिक काल से लेकर आज तक का कवि प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अपने काव्य मे एक नये सौन्दर्यलोक की सृष्टि करता रहा है, अपनी सहज मुग्धता का व्यक्त कर रसदशा को प्राप्त हुआ है। उसमे अज्ञात सत्ता का आभास पाया है, अपने भावजगत से तादात्म्य स्थापित कर अपने हर्ष, शोक-क्रोध आदि की छाया देखी है, अपने भावो को उद्दीप्त होते देखा है और प्रकृति से अलकारो की उपलब्धि कर उससे पात्रो को अलकृत किया है, अपनी कविता-कामिनी का शृगार किया है, न उषा और सध्या का सौन्दर्य मलिन हुआ है और न कवि की सौन्दर्य दृष्टि समाप्त हुई है। अत काव्य और प्रकृति का सम्बन्ध अटूट है।

हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रन्श की काव्य-परम्परा को लेकर चली है। सस्कृत-साहित्य मे प्रकृति का चित्रण आलम्बन, उद्दीपन, अप्रस्तुत विधान सभी रूप मे हुआ है। परन्तु शृगारी मुक्तको मे, जिसकी परम्परा मे विहारी-सतसई की रचना हुई है, प्रकृति का चित्रण उद्दीपन विभाव और अप्रस्तुत विधान के रूप मे ही हो सका है। अमरू-शतक, आर्या सप्तशती तथा गीतगोविन्द मे प्रकृति, मात्र रतिभाव को उद्दीप्त करने के लिए प्रयुक्त हुई है। प्राकृत काव्य मे सस्कृत की काव्यरूढियो से स्वतन्त्र होने की चेष्टा की है। गाथा सप्तशती मे ग्रामीण जीवन के चित्रण के साथ प्रकृति का सहज सौन्दर्य भी चित्रित है। अपभ्रन्श के अन्तिम चरण मे रचित सदेशरासक प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप को ही प्रस्तुत करता है। हिन्दी मे चन्दवरदाई, विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास और केशवदास प्रकृति को मुख्य रूप से उद्दीपन रूप मे ही प्रस्तुत करते हैं। पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति आई है। उपमानो के लिए तो प्रकृति के प्रागण मे ही चक्कर लगाया जाता है। इसके लिए भी राजशेखर ने काव्य मीमासा मे प्रकृति प्रदत्त

उपमानो को इकट्ठा कर दिया है। आगे के कवियो को विशेष श्रम करने की जरूरत नही है। ऐसी स्थिति मे डॉ० किरण कुमारी गुप्त के अनुसार "रीतिकाल मे प्रकृति का उपयोग उद्दीपन और अलकार रूप मे ही हुआ। स्वतन्त्र प्रकृति के चित्रण का महत्व सर्वथा विलुप्त हो गया। रीतिकाल के आदि कवि केशव ने वन, उपवन, नगर, सरिता आदि के चित्रण के नियम निर्धारित कर दिये थे, जिनके अनुसार कवि अभिलषित प्रकृति चित्रो मे निर्दिष्ट वस्तुओ का उल्लेख मात्र कर देते थे।"[3]

जब आदिकाल और भक्तिकाल मे प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण नही हो सका तो रीतिकाल सस्कृत के साहित्य शास्त्र के अनुसार शृगार को रसराज मानकर प्रकृति चित्रण को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सीमित कर सतुष्ट हो गया। आदिकाल के कवि दरबारी थे। काव्य का सम्बन्ध शृगार और सघर्ष से था। इसलिए प्रकृति काव्य का विषय नही बन सकी। भक्तिकाल के कवि भगवान की शरण मे मन्दिर व नदी तट पर रहते थे। लक्ष्य मानव व मानवेतर जगत के सौन्दर्य का चित्रण नही था। लक्ष्य था आराध्य के सौन्दर्य और लीला का चित्रण और उनकी भक्ति। अत. प्रकृति की उपेक्षा स्वाभाविक थी। तथापि कृष्णभक्तो को व्रज की प्रकृति के निकट रहना था और उनके आराध्य की लीला भूमि भी प्रकृति की रसभूमि थी। इसलिए कृष्ण काव्य मे ब्रज की प्रकृति का पृष्ठभूमि और उद्दीपन रूप मे चित्रण हो गया है। रीतिकाल के कवि तो दरबारी ही थे। इनका सम्बन्ध राजसभा, राजलीला और काव्य-शिक्षा से था। अत यह दरबारी सभ्यता तथा काव्य रूढियो के कवि थे। रीति-निरूपण तथा शृगारिकता दो ही प्रमुख प्रवृत्तियाँ थी। ये प्रवृत्तियाँ प्रकृति चित्रण को सीमित कर देती है। ...वृहत इतिहास मे लिखा है, "रीतिकाव्यो मे, जो सस्कृत के नायिका भेद की परम्परा मे आते हैं, ऋतु वर्णन को उद्दीपन के ही भीतर रक्खा गया है। प्रसग निरपक्ष ऋतु वर्णन मे उनमे अत्यधिक विरलता है। रीतिबद्ध कवियों ने ऋतुओ के उद्दीपन पक्ष मे ही अधिक रुचि दिखाई है।"[४]

विहारीलाल ने रीतिकाल मे अवतरित होकर केशवदास, बलभद्र मिश्र पण्डितराज जगन्नाथ ऐसे आचार्यों का सम्पर्क प्राप्त किया। वैभव एव विलास से आपूर्ण दरबारो का जीवन जीने का अवसर पाया। अध्ययन क्रम मे शृगारिक साहित्य का प्रभाव ग्रहण किया। उनकी स्वयं की प्रवृत्ति शृंगार की थी। अत. प्रकृति को उद्दीपन और अप्रस्तुत रूप मे ही प्रस्तुत कर सकते थे, यह अस्वाभाविक नही था। तथापि यह विहारी का वैशिष्ट्य है कि उन्होंने प्रकृति को उद्दीपन रूप मे चित्रित करने के साथ ही आलम्बन रूप मे भी प्रस्तुत किया है। रीतिकाल मे केवल सेनापति ही प्रकृति चित्रण करने मे सफल हो सके हैं परन्तु विहारी का प्रकृति चित्रण रूढियो का पालन मात्र नही है। डा० रामसागर त्रिपाठी ने लिखा है कि "विहारी की अपनी

यह विशेषता है कि उन्होंने प्रकृति के आलम्बन रूप का भी चित्रण किया है और उद्दीपन रूप का भी चित्रण किया है।"[५] आलम्बन रूप के चित्रण मे कवि की अनुभूति की तरलता तथा कला की मधुर प्रौढता के दर्शन होते हैं। उद्दीपन रूप के वर्णन मे काव्य रूढियो के प्रभाव के अतिरिक्त नई उद्भावनाये भी हैं। साथ ही फारसी काव्य के प्रभाव से ऊहात्मकता का समावेश भी हुआ है। अप्रस्तुत विधान के लिए अधिकाश उपमान प्रकृति से ही ग्रहण किये गये हैं। नख-शिख वर्णन मे प्रकृति से आनीत उपमानो का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है। यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि भारतीय साहित्य मे नख-शिख वर्णन की परम्परा रही है और इनके उपमानो के लिए प्रकृति के विभिन्न उपकरणो की व्यवस्था कर दी गई है। उसी आधार पर कविगण उपमानो का प्रयोग करते थे। तथापि बिहारी ने उपमानो की कल्पना मे यत्र-तत्र स्वच्छन्दता से काम लिया है। कुछ नये-नये प्रयोग मिलते हैं। ज्योतिष के ज्ञान ने भी नई उद्भावनाओ मे सहायता की है। नीति के दोहो मे भी कवि ने प्रकृति का उपयोग कर कुछ कहने की चेष्टा की है। परन्तु तुलसी के समान प्रकृति दर्शन से भटक कर उपदेश नही दिया है। नीति के दोहो मे प्रकृति को आधार बनाया है या उपमान रूप मे रक्खा है। साथ ही अन्योक्तियो मे प्रकृति का वर्णन कर बडी प्रभावशाली अभिव्यक्ति की है। दो तीन दोहो मे मानवीकरण का सफल प्रयास है जिसकी ओर समालोचको की दृष्टि नही गयी थी। डा० राम सागर त्रिपाठी ने पहली बार ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है, "बिहारी को प्रकृति वर्णन के क्षेत्र मे सबसे अधिक सफलता मानवीकरण सम्बन्धी दोहो मे मिली है। जो विद्वान हिन्दी काव्य मे प्रकृति को मानवीकरण की परम्परा का आरम्भ पाश्चात्य प्रभाव से छायावादी काव्य के उदय के साथ मानते हैं वे बिहारी के इन दोहो को देखे।"[६]

यह सत्य है कि आधुनिक युग के पहले हिन्दी के कवियो ने सस्कृत की परवर्ती काव्य-परम्परा तथा रीतिग्रन्थो के अनुसार प्रकृति का रूढिबद्ध वर्णन किया है। उद्दीपन विभाव के रूप मे षड् ऋतु वर्णन की परम्परा को निभाया है। लोकजीवन से प्रेरणा ग्रहण कर बारहमासा की परम्परा को प्रबन्ध-काव्यो मे प्रस्तुत किया है और नख-शिख वर्णन मे प्रकृति से आनीत रूढ उपमानो को रक्खा है। पर यह तो मानना पडेगा कि षड् ऋतु वर्णन और उपमान सृजन भारत की प्रकृति पर ही आधारित है। अपने देश मे दो-दो मास की एक ऋतु मानी गयी है। वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त और शिशिर, प्रत्येक की अपनी विशेषता होती है। विभिन्न ऋतुओ मे मनुष्य विशिष्ट अनुभूति से उद्वेलित होता है। मात्र सौन्दर्य की अनुभूति से उद्वेलित हो या अपनी मन स्थिति के अनुसार, इसी तरह मानव सौन्दर्य के चित्रण मे सौन्दर्य के उत्कर्ष के चन्द्र, चाँदनी, उषा, सध्या, कमल, कुमुद, हरिण और खजन को भूल नही पाता

क्योकि वह तो इन्ही के साहचर्य मे रहता आया है। पर कवि की निरीक्षण शक्ति स्वानुभूति और कल्पना को कुठित कर देना ही आचार्यों का आचार्यत्व बन गया। प्रकृति चित्रण की ताजगी और नयी उद्धभावना पर प्रतिबिम्ब सा लग गया। कवि समय ने कवि की प्रतिभा एव रसदृष्टि को बाँध लिया तथापि कुछ कवियो ने परम्परा एवं रूढि के साथ यत्र-तत्र नवीनता को लाने का प्रयास किया है। प्रकृति का सौन्दर्य बँधी हुई प्रणाली से चित्रित नही हो सकता। इसका विराट और विशाल सौन्दर्य-क्षेत्र साहित्य शास्त्र मे सिमटकर नही आ सकता। बिहारीलाल ने अन्य कवियो के समान इस षड्ऋतु वर्णन की प्रणाली को अपनाया है। इसे आलम्बन एव उद्दीपन दोनो रूपो मे प्रस्तुत किया है। अप्रस्तुत के लिए भी अधिकांश रूढ उपमान ही लिये हैं तथापि कुछ नयी उद्भावनाये हैं। मुस्लिम शासन तथा वातावरण के कारण गुलाब को भी ग्रहण किया है। शृंगारिक प्रवृत्ति के कारण प्रकृति के वर्णन का अधिकाश शृगार से ही सम्बन्धित है। यह रीतिकाल के प्रकृति चित्रण का अपरिहार्य तथ्य है। इसीलिए वसन्त, पावस और हेमन्त का अधिक वर्णन है क्योकि ये ऋतुएँ रतिभाव को विशेष रूप से उद्दीप्त करती हैं।

कवि ने आलम्बन रूप मे वसन्त, वसन्त-पवन, ग्रीष्म और हेमन्त का वर्णन किया है। दृष्टि सीमित है। षड्ऋतु वर्णन के अन्तर्गत ही प्रकृति विषय बन सकी है। इस सीमा के अन्दर ही प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण कम महत्वपूर्ण नही है। मरु भूमि मे स्थित क्षीण जलधारा के रूप मे इस वर्णन की प्रतिष्ठा की जा सकेगी। चार-पाँच दोहो मे ही कवि की दृष्टि नायिका से हटकर प्रकृति के सौन्दर्य पर टिक गयी यह कम नही है। बिहारी साधुवाद के पात्र हैं। सर्व प्रथम हम वसन्त-वर्णन को देखे :

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गध।
ठौर-ठौर झूमत झपत, झौंर-झौंर मधु अध॥

प्रस्तुत दोहे मे वसन्त का चित्रण कवि की अनुभूति तथा प्रौढ कला के अपूर्व समन्वय का प्रतीक है। आम्र वृक्ष की सुरभिमय मजरियाँ, मधुर गन्ध से आपूर्ण माधवी लता और मकरन्द पान से मदमत्त मधुपवृन्द का झूमना ये सब मिलकर वसन्त का मादक, सजीव तथा गतिशील चित्र उपस्थित करते हैं। अलंकृति के बोझ से बहुत कुछ मुक्त यह वसन्त वर्णन एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। अब रूपक तथा ध्वन्यात्मकता से प्रभावी वसन्त पवन को देखे :

रुनित भृग घटावली, झरत दान मधुनीर।
मद मंद आवत चल्यो, कुजर कुंज समीर॥

मन्द वसन्त पवन के संचरण काल मे भ्रमर गुंजार करते हैं व पुष्पो का मकरन्द झरता है। कवि रूपक बाँधता है कि भ्रमरो का गुंजर घन्टानाद है और मकरन्द के झरने मे गजमद का टपकना है। इस तरह हाथी रूपी वसन्त पवन मन्द-मन्द मस्त चाल से आता है, यहाँ भी पवन का मादक और गतिशील चित्रण हुआ है। रूपक से पवन का रूप दबा नही, उभरा है।

ग्रीष्म के ऐसे तीन वर्णन हैं जिसमे कवि की काम-दृष्टि का अभाव है। तीनो मे ग्रीष्म के भीषण ताप का चित्रण है। एक मे ताप के कारण पशुओ को पारस्परिक अविरोध से तपोवन की कल्पना की गई है। दूसरे मे छाया की आकुलता दिखाकर सूक्ष्म निरीक्षण को प्रस्तुत किया गया है। तीसरे मे मरु प्रदेश के ताप का चित्रण कर कुछ और कहा गया है। पहले के सम्बन्ध मे सकेत मिलता है कि कवि ने एक चित्र को देखकर इस दोहे की रचना की है। तथापि इसमे ग्रीष्म के वन्य-जीवन का चमत्कारपूर्ण चित्रण है .

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥५६५॥

ग्रीष्म के भीषण ताप के कारण परस्पर विरोधी सर्प-मयूर और मृगेन्द्र-मृग विरोध छोडकर एक स्थान पर एकत्र हो गये हैं, जिससे वह प्रदेश तपोवन बन गया है। दूसरे मे छाया की भी आकुलता दिखायी गयी है ज्येष्ठ मास की दुपहर की भीषण तपन के कारण। इसमे मानवीकरण की झलक मिल जाती है।

बैठ रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
निरषि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहति छाँह ॥ ५६६ ॥

वस्तुत ज्येष्ठ मास मे दोपहर मे वृक्षों की छाया ठीक उनके नीचे ही पडती हैं। इससे कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का पता चलता है। और तीसरे मे ग्रीष्म की प्यास के निवारण के लिये तरबूजो की खोज की बात कही है। इससे मरु प्रदेश की ग्रीष्मकालीन परिस्थिति का आभास मिल जाता है।

हेमन्त के वर्णन मे कवि ने उपमान के लिए मानव जीवन की विशिष्ट अनुभूति को प्रस्तुत किया है जो कवि के अपने जीवन की अनुभूति ही कही जा सकती है। चूँकि मुख्य वर्णन वस्तुत प्रकृति का वर्णन है, अत. इससे प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत ही रखेंगे। वैसे इसमे ऋतु का नही, पौष मास का उल्लेख है जैसे ऊपर के दोहे मे ज्येष्ठ मास का परन्तु लाला भगवानदीन ने ऋतु वर्णन के अन्तर्गत ही रखा है। सचमुच बिहारी ने बारह मास वर्णन की प्रणाली को नही अपनाया है। मास के

उल्लेख वाले दोहो को ऋतुवर्णन के अन्तर्गत रखा जा सकता है। पौष मास मे दिन का मान घट जाता है, दिन का तेज ठडा हो जाता है। अप्रस्तुत उपमा के लिये जीवन की विशिष्ट अनुभूति पेश है ·

आवत जात न जानिये, तेजहिं तजि सियराज।
घरहिं जँवाई लौ घट्यो, खरो पूस दिन मान ॥

जैसे ससुराल मे रहने वाले जमाता का मान घट जाता है। (कवि स्वयं ससुराल मे बहुत दिनो तक जमा हुआ था—यह ज्ञातव्य है।)

आलम्बन के वाद बिहारी के प्रकृति वर्णन की दूसरी विशेषता मानवीकरण का सफल प्रयास है। इसे पाश्चात्य अलकार माना जाता है। मान्यता है कि पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से छायावाद युग मे कवियो ने इसे अपनाया। परन्तु बिहारी मे इसका सफल प्रयोग देख कर हर्ष पूर्ण आश्चर्य होता है। आधार तो रूपक ही है पर प्रकृति मे मानवीय रूप और क्रिया की अभिव्यक्ति रूपक के सामान्य स्वरूप से थोडी भिन्न है। ग्रीष्म, शरद और वसन्त पवन को लेकर कवि ने मानवीकरण का सफल प्रयत्न किया है। ग्रीष्म वर्णन मे सापद्नवोत्प्रेशा के द्वारा ग्रीष्म ऋतु मे विरहिणी की कल्पना की है। इस मानवीकरण मे रीतिकालीन प्रभाव देखा जा सकता है। तथापि यह प्रकृति का विशुद्ध मानवीकरण है :

नाहिन ये पावक प्रबल, तुवै चलत चहुँपास।
मानहुँ विरह वसन्त के, ग्रीष्म लेत उसांस ॥ ५६४ ॥

ग्रीष्म मे लू चलती है। कवि कहता है कि ग्रीष्म ऋतु वसन्त के विरह में उसांसे ले रही है। शरद के मानवीकरण मे बिहारी के दरबारी संस्कार ने मदद की है। शरद वीर सम्राट के रूप मे प्रस्तुत किया गया है :

घन घेरो छुटिगो हरषि, चली चहूँ दिसि राह।
कियो सुचैनो आप जग, सरद सूर नरनाह ॥

शरद सम्राट ने आकर ससार मे व्यवस्था कर दी। बादलो का घेरा हट गया। वर्षा-ऋतु समाप्त हो गयी। हर्षित होकर चारो ओर के मार्ग चलने लगे। मार्गों पर पथिक चलने लगे। इस तरह सम्राट की क्रिया-व्यवस्था का सम्पूर्ण आरोपण हो गया, वसन्त पवन के बदले दक्षिण पवन : त्रिविध पवन : कहना उचित है। पथिक की सारी प्रतिक्रिया मे स्पष्ट है :

चुवत सेद मकरन्द कन, तरु-तरु तर बिरमाय।
आवत दक्षिण देश ते, थक्यो बटोही बाय ॥

यह तो निर्विवाद सत्य है कि रीतिकाल ने प्रकृति का उपयोग उद्दीपन के रूप मे किया है। रीतिकालीन विहारी ने षड्ऋतु-वर्णन उद्दीपन के लिए प्रस्तुत किया है। संयोग हो या वियोग दोनो ही स्थितियो मे उद्दीपन की अपेक्षा है। कवि ने दोनो ही स्थितियो मे षड्ऋतु का वर्णन किया है। षड्ऋतु के अतिरिक्त कुछ महीनो का भी वर्णन कर दिया है। प्रकृति के स्फुट उपकरण चन्द्र, चाँदनी, सध्या, अधेरी रात, घूप, कोयल, यमुना, मौलश्री की माला, फूल, भ्रमर इत्यादि से भी उद्दीपन को ग्रहण किया है। कदाचित् गाथा-सप्तशती के प्रभाव से ग्रामीण चित्र के रूप मे अरहर के खेत का उद्दीपक रूप उपस्थित किया है। चाँदनी और ग्रीष्म के वर्णन मे ऊहात्मकता आ गयी है। दूर की उडाने हैं जिससे भ्राति चमत्कार उत्पन्न होता है। वन विहार भी कामोपभोग की दृष्टि से किये गये हैं। वैसे सम्पूर्ण वर्णन मे कामोपभोग की दृष्टि है। यत्र-तत्र स्थूलता-मांसलता का निस्सकोच चित्रण है। सयोग मे स्थूलता है और विरह मे ऊहात्मकता है। यह रीतिकाल की अपनी विशेषताएँ है। सयोग यश से सम्बन्धित मान और अभिसार का वर्णन प्रमुख है। पर प्रकृति अभिसार में विशेषरूप से सहायक बनी है। इस तरह बिहारी ने उद्दीपन कारिणी प्रकृति का परम्परा मुक्त वर्णन करते हुए कुछ चमत्कार भी उत्पन्न किया है जिसमे स्वाभाविकता नही ऊहात्मकता है।

सर्व प्रथम हम सयोग वर्णन मे प्रकृति को देखे ·

तिय तरसौहैं मन किये, करि सरसौहैं नेह।
घर परसौहैं ह्वै रहे, झर बरसौहै मेह॥

वर्षा-ऋतु है। झडी बरसाने वाले मेघ पृथ्वी को स्पर्श करने वाले हो रहे हैं। इन्होंने पुरुषो के हृदय मे प्रेम को बढ़ाकर मन को स्त्रियो केलिए तरसाने वाला कर दिया है। वर्षा काल मे मेघ कितने उद्दीपक हैं इसे कवि ने स्पष्ट कर दिया है। अब शरद् की शक्ति को परखे :

आयो शरद राका ससी, करति न क्यो चित चेत।
मनो मदन छितिपाल को, छाँहगीर छवि देत॥ ३११॥

शरद्-पूर्णिमा का चाँद उग आया। मानो पृथ्वीपति कामदेव का छत्र शोभ रहा हो। ऐसे उद्दीपक वातावरण मे स्मरण क्यो नही करती। कवि ने शरद के चाँद को मदन का छत्र बना दिया जिसकी मादक छाया सभी मे है। ऐसी हालत मे वह मान क्यो कर रही है। हेमन्त तथा शिशिर का वर्णन विशुद्ध संभोग शृंगार लिए है। शिशिर का वर्णन तो अश्लीलता की सीमा है। शायद हेमन्त तथा शिशिर के अविराम मिलन के बाद वसन्त मे विरह हो गया। इसलिये कवि ने वसन्त का वर्णन विरह

के उद्दीपक के रूप मे किया है। हेमन्त के वर्णन मे कवि ने सुख-विभावरी को उपस्थित किया है जिसमे दम्पत्ति का सुख वढता है और कवि समय के अनुसार चक्रवाव का शोक वढता है .

ज्यो-ज्यो वढति विभावरी, त्यो-त्यो वढत अनत ।
ओक-ओक सव लोक सुख, कोक सोक हेमन्त ।।

और दूसरे दोहे मे वतलाया है कि अगहन मे कामदेव को विश्व-विजय के लिए धनुषवाण धारण नही करना पडता। सम्पूर्ण जगत को वह अनायास कामवश कर देता है। तीसरे दोहे के अनुसार हेमन्त ने सवको जुराफा वना दिया है जिससे सभी शृगार मे निमग्न है। पर पिछडते ही जुराफा की तरह जी नही सकेगे। अर्थात् हेमन्त कामोपासना के लिए सुरक्षित है और शिशिर के सम्वन्ध मे कुछ नही कहना ही सव कुछ कह देना है।

ये ऋतुएँ सयोग मे इतना सुख देती हैं तो वियोग मे उन्माद की स्थिति तक पहुँचा देती हैं। वसन्त, ग्रीष्म और पावस वियोग की व्यथा को वढाने ही आते हैं। शरद, हेमन्त तथा शिशिर तो सयोग वेला है। कवि ने इन ऋतुओ को विरह की तडपन से वचाकर मधुप मिती के लिए सुरक्षित कर लिया है। समय का विभाजन भी सुविचरित है। युग की कामदृष्टि को धन्यवाद है। वैसे वसन्त को छाट देना उचित नही कहा जायगा। लोक जीवन भी इन ऋतुओ को दापत्य जीवन की मधुचर्चा के लिए उपयुक्त समझता है। अस्तु, हम वसत के प्रभाव को देखे :

दिसि दिसि कुसुमति देखियत, उपवन विपिन समाज ।
मनो वियोगिनि कौं किये, सरपजर रतिराज ।।

सम्पूर्ण दिशाओ मे दिनो और उपवनो मे फूल खिलते दिखायी पड रहे हैं। मानो कामदेव ने वियोगियो के लिए प्राणो का पिजडा वनाया है। अर्थात् वसन्त में कलियो के प्रस्फुटन को देखकर वियोगियो को वैसा ही कष्ट होता है जैसे सरपजर मे पडे योद्धा को प्रत्येक फूल वाण की नोक के समान वियोगी को दुख देगा। वसत संयोग और वियोग दोनो ही स्थितियो मे उद्दीपन-कर्म्य करता है। कवि ने शृगार के दोनो पक्षो मे वसत का वर्णन किया है। पर पलाश के लाल फूल तो वियोगिनी को प्रलाप के लिये वाध्य कर देते हैं। वह वियोग कथा से पीडित होकर पलाश के लाल फूलो को आग समझ लेती है और .

अंत मरैंगे चलि जरैं, चढ़ि पलाश की डार ।
फिरि न मरैं मिलिहैं अली, ये निरधूम अगार ।।

ग्रीष्म के वर्णन में सखी या नायिका का प्रलाप नही है कवि का प्रलाप है। तात्पर्य यह है कि कवि की कल्पना ने धरती को छोड दिया है, ऊहात्मकता का विलास है। एक में पडोसियो को विरहिणी के पडोस मे बहुत कष्ट होता है। एक विरह का ताप, ऊपर से ग्रीष्म का। शीत को सह लिया पर ग्रीष्म को सहना कठिन है। दूसरे दोहे मे वियोगिनी खस की टट्टी से घिरी रावटी मे है, पर ताप से संतप्त है। खेद है कि वह युग विज्ञान का युग नही था। पहला उदाहरण परखे :

सोरे जतननि सिसिर रितु, सहि विरहिनी तन-ताप।
बसिवे को ग्रीपम दिवनु, परो परोसिन पाप।।

वर्षा ऋतु का पहला वादल ही वियोगी को जलाने के लिए पर्याप्त है। यदि वर्षा की झडी लग जाय तो उसका क्या पूछना। वर्षा की बूंदे रस बरसाने के बदले आग बरसाने लगती हैं। वर्षा काल विरह मे कितना उद्दीपक दु खदायी होता है कि कालीदास का अतर यक्ष बनकर मेघ से दूत बनने के लिए निवेदन करने लगता है। पर यहा तो केवल कथा ही वढती है। बिहारी पहले वादल का वर्णन करते हैं .

धुरवा होंहि न अलि इहै, धुआ धरनि चहुँ कोद।
जारन आवत जगत को, पावस प्रथम पयोद।।

नायिका सखी से कहती है कि वर्षा ऋतु के पहले दिन का वादल ससार को जलाता हुआ चला आता है। यह उसी का धुआँ पृथ्वी के चारो ओर दीख पडता है, यह मेघ नही हो सकता, और ·

पावक झरहे मेह झर दाहक दुसह विसेखि।
दहै देह वाके परस याहि दृगनु ही देखि।।

अगारो की झडी से मेघ की झडी अधिक दाहक तथा दु साध्य है। वियोग मे इसे देखते ही सताप वढ जाता है। इस तरह कवि ने प्रकृति का उद्दीपन रूप प्रस्तुत किया है। इस राज शृगार की मदद के लिए प्रकृति सर झुका कर खडी है। सयोग मे सुख देती है और वियोग मे दुख। महत्व कामोपासना का है, प्रकृति का नही। यह भी सही है कि प्रकृति का उद्दीपक रूप एक सीमा तक मान्य है। बिहारी ने प्रस्तुत विधान के लिए प्रकृति प्रागण से उपकरण ग्रहण किये हैं। अपनी नायिक के प्रत्येक अग तथा उसकी कामचेष्टा के उपमान के लिए प्रकृति से सामग्री का चयन किया है। आलम्बन तो नायिका ही है। अत उसी को अलकृत करना है। दो चार दोहो मे कृष्ण भी वर्ण्य वन गये हैं। और कुछ दोहो मे अन्योक्तियाँ है। अलकरण सामग्री के चयन का क्षेत्र सीमित है। कारण स्पष्ट है। एक तो वर्ण्य काममूर्ति कामिनी है। दूसरे आचार्यों ने उपमानो को निर्धारित कर दिया है। उसकी एक परम्परा वन गयी थी। तीसरे विहारी राजसभा का जीवन जीते रहे। चन्द, चादनी, सोनजुही, यमुना, चकोर आदि का स्मरण कर लिया—यह काम नही था।

इसके बिना काव्य-रचना ही असम्भव थी। वैसे कवि का दृष्टिकोण बहुत ही ऊँचा हैं। उसे रूपक बाँध कर कहा है .

गिरि ते ऊँचे रसिक मन, बूडे जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरत कहं, प्रेम पयोधि पगार।।

रसिक मन की तुलना गिरि से की है वह उससे भी ऊँचा है और प्रेम सागर के समान गहरा है पर उनकी रसिकता मे वह गहराई नही है। इसलिए प्रेमपात्र के चित्रण मे बन्धे-बन्धाये उपमान लाये गये हैं। कुछ नये प्रयोग हैं उनके द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है। डा० नगेन्द्र के अनुसार रीतिकाल के उपमान प्राय काम विलास के उद्दीपन अथवा उपकरण ही हैं।[1] नायिका की तुलना बेलि (२८७) और चम्पा की माला (२२३) से की गयी है। मुख चन्द्र के समान है (१०१,४२०) दिठौना युक्त मुख तो चन्द्र से भी अधिक सुन्दर है (६६)। व्यतिरेक द्वारा चन्द्र का अपकर्ष दिखाया गया है। कवि ने वय सन्धि को सक्रान्ति पर्व के समकक्ष रखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है (२५)। यौवन पर ज्येष्ठ मास को आरोपित किया है (१०५)। और यौवन की आभा की तुलना सोनजुही से कर स्वर्णाभा को स्पष्ट कर दिया है (११८)। नायिका के भाल पर टीका की शोभा ऐसी है मानो सूर्य शशिमण्डल मे आकर उसकी छबि बढा रहा है (३६)। तात्पर्य यह कि ललाट शशिमण्डल के समान है और टीका सूर्य के समान। कवि की कल्पना ने असम्भव को सम्भव कर दिया। इसी तरह की कल्पना है कि भाल पर लाल बिन्दी है और केश बिखरे हैं मानो चन्द्र और सूर्य ने मिलकर राहु को पकड लिया है (४२)। नयनो के उपमान युगो से मृग, कमल तथा खंजन रहे हैं। यहाँ कवि ने नयनो के सौन्दर्य के उत्कर्ष के लिए कमल तथा खजन को लज्जित किया है (५०)। और एक नया रूपक है :

खेलन सिखए अलि भलैं चतुर अहेरी मार।
काननचारी नैन मृग नागर नरन, सिकार।

यहाँ नैन मृग नागर नरो का शिकार करते हैं। स्थिति बदल गई है।

इस तरह कवि ने अनेक चमत्कारपूर्ण प्रयोग किये हैं। परम्परित उपमानो मे नवीनता लाई है। कवि समय को बदल दिया है। नाक मे नीलम जडित लौंग है मानो चम्पा पर भौंरा आ गया हो (८५)। चम्पे पर भ्रमर नही बैठता, पर कवि ने बैठा दिया। और ठोढी पर गोदना है तो कवि उत्प्रेक्षा करता है कि भौंरा गुलाब के फूल मे आ गया है (६५)। सफेद साडी मे ढका कर्णफूल ऐसा लग रहा है मानो गंगाजल मे प्रभात का सूर्य प्रतिबिम्बित हो रहा है (६२)। इसमे एक ताजगी है। नयी उद्भावना है। कवि उरोजो की तुलना गिरिवर से कर पुराने कवियो से काफी

आगे बढ़ गये हैं। (१०८) और जघे की तुलना परम्परित रूप मे केले के खम्भ से है (१०६)। कभी सूर्य कर्णफूल से उपमित था, तो कभी पैरो की अगूठी से (११२)। कवि सन्तुलन खो बैठा है। पर पगतल की लालिमा का वर्णन मनोहर है। जहाँ-जहाँ उसके पग पडते है कि दुपहरिया के फूल खिल जाते हैं (११३)। दुपहरिया का भी उद्धार हो गया है। और इस प्रकृति से उपमित नख-शिख वर्णन के बाद यदि नायिका का मिलन हो गया, मान टूट गया तो वह मान कैसा है। सूक्ष्म के लिए स्थूल उपमान एक नवीन उपमान है कि वह मान सूर्योदय के बाद की ओस की तरह चला जाता है (४५०)। परन्तु किशोरी के प्रेम मे राजा सब कुछ भूल जाते है तो कवि प्रकृति के उपकरणो से निर्मित अन्योक्ति द्वारा उनको होश मे लाता है। वह प्रसिद्ध दोहा है :

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहिकाल।
अली कली ही सौं बध्यो, आगे कौन हवाल ।।२५८

कवि ने सप्तमशतक मे गुलाब को लेकर अन्योक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। मुस्लिम काल मे गुलाब को साहित्य मे ग्रहण किया गया। कवि ने समय के प्रभाव को ग्रहण किया। पहले दोहे मे गत यौवना की ओर सकेत गुलाब की कटीली डार से है। दूसरे मे आशा को सचारित किया है कि इन डालो मे फिरँसे फूल आयेगे। तीसरे मे बडो की भूल की ओर इशारा है कि ईश्वर ने गुलाब मे भी काँटे लगा दिया। चौथे-पाचवे मे ग्रामीण जीवन मे गुलाब की उपेक्षा का वर्णन है। इस तरह कवि ने अलकरण के के लिए प्रकृति का उपयोग किया है। प्राय सभी परम्परित सामग्री ही है। कृष्ण के चित्रण मे गुजा की मात्रा के सम्बन्ध मे दावानल की ज्वाला की उत्प्रेक्षा की है और श्याम शरीर पर पीतपट की शोभा देखकर नीलमणि शैल पर प्रभात की धूप को देखा है। कुछ ऐसे प्रकृति चित्रण हैं जिस पर आलोचक मुग्ध होते रहे हैं।

सन्दर्भ संकेत

१—प्रकृति और काव्य सस्कृत खण्ड · पृष्ठ—३०
२—हिन्दी काव्य मे प्रकृति चित्रण, पृष्ठ—१५
३—हिन्दी काव्य मे प्रकृति चित्रण, पृष्ठ—४७८।
४—हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग १, पृष्ठ—२०५।
५—बिहारी मीमासा, पृष्ठ २५२। (६) वही, पृष्ठ ३२४।

उपर्युक्त उद्धृत दोहो की संख्या लाला भगवानदीन द्वारा सम्पादित पुस्तक के अनुसार है।

बिहारी के भक्ति और नीति परक मुक्तक

● प० परशुराम चतुर्वेदी

अश्रृंगारी बिहारी

हिन्दी के शृगारी कवियो मे कविवर बिहारी लाल का स्थान वहुत ऊँचा है। यहाँ तक कि वहुत से समालोचक उन्हे हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शृगारी कवि तक कहने मे संकोच न करेगे। प्रेमी-प्रेमिकाओ के मनोगत भावो का पूर्ण अनुभव, उनका पांडित्य-पूर्ण विश्लेषण तथा एक छोटे से छोटे दोहे या सोरठे मे आ सकने वाले कतिपय वाक्याशो भरा, सुन्दर शब्द-विन्यास के बल पर उनका चमत्कारपूर्ण स्पष्टीकरण किसी साधारण श्रेणी वाले कवि का काम नही। इस कारण हिन्दी की क्या, यदि अन्य भाषाओ के शृगारी कवियो के साथ भी हम बिहारीलाल की तुलना करने लगे, तो सम्भव है इनका नाम वहुत नीचे लाने की नौवत न आवेगी। इसमे सदेह नही कि शब्दो की तोड-मरोड, कृत्रिम कलावाजी अथवा अत्युक्तियो की भरमार प्रभृति वहुत से दोषो के कारण इस कवि की कविता एक नही, अनेक स्थलो पर दूषित देख पडेगी, किन्तु कौन ऐसा कवि है, जिसकी रचना सभी प्रकार से निर्दोष हो ? बात यह है कि किसी कवि की सराहना करने बैठने पर उसकी साधारण कमजोरियो पर ध्यान नही दिया जाता।

परन्तु बिहारी लाल केवल शृगारी कवि ही न थे। उनकी एक मात्र उपलब्ध पुस्तक 'बिहारी-सतसई' के ही देखने से पता चलता है कि संस्कृत के पुराने कवि भर्तृहरि के समान यह नीति, वैराग्य, भक्ति आदि विषयो पर भी, शृगार-रस-रचना की निपुणता के साथ ही, उत्तम कविता करना जानते थे। इन विषयो के दोहे 'सतसई' मे, विना किसी शृखला के यत्र-तत्र पडे हुए देख पडते हैं और सख्या की दृष्टि से यद्यपि ये सब मिलकर भी शृगार-रस से दोहो से कही कम है, तथापि काव्य की दृष्टि से, अथवा अनुभव और भावुकता के विचार से, ये उनसे किसी तरह न्यून नही। इनमे बिहारी लाल की रचना के सभी गुणो के उदाहरण मिलेगे और यदि सच पूछिये तो, इनके यही दोहे ऐसे है, जिनसे हम विचार सरणियो के मेल द्वारा कवि के हृदय का सच्चा पता लगा सकते हैं। हमारे साहित्य के विशेष नियमो द्वारा जान-बूझ कर जकडी गई शृंगार-रस की रचना, व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप के कभी-कभी लगते रहने पर भी, कवि के अन्तस्थल के रहस्यो को व्यक्त करने मे

बहुधा असमर्थ सिद्ध हो जाया करती है और किसी कवि को (As a man) अर्थात् कवि-कौशल-रहित शुद्ध मनुष्य के रूप मे देखने की इच्छा रखने वाले को हताश हो जाना पडता है। किन्तु अन्य रसो के अनुसार की गई रचनाओ मे यह अडचन कुछ न कुछ अवश्य दूर रहती है। कुछ ऐसी ही धारणा के आधार पर तथा यह सोचकर कि यद्यपि सतसैया के सागर मे बिहारीलाल की कविताएँ मुक्तको के ही रूप मे बिखरी पडी हैं, और उनका मर्म प्रथक्-प्रथक् ही समझना अधिक युक्ति-सगत होगा, तथापि वस्तुत एक ही हृदय की उपज होने के कारण वे सभवत सुसगत भी हो सकती है। मैंने आगे की पक्तियो मे कवि मे सिद्धान्तो का पता लगाने की चेष्टा की है। आशा है पाठक इस पर और भी विचार करने की कृपा करेगे।

भक्ति—बिहारी लाल का एक सोरठा और एक दोहा ऐसे है, जिनके आधार पर पहले-पहल कवि को निर्गुणोपासक समझने का पूरा भ्रम हो सकता है। जैसे :

मैं समुझ्यो निरधार, यह जग काँचो काँच सौ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ।।

अर्थात् मैंने तो यह निश्चय कर लिया है कि यह कच्चा अथवा झूठा ससार काँच के समान है, जहाँ एक ही ईश्वर का रूप अपार अर्थात् अनन्त रूप से भासित होता है और सभी पदार्थ उसके अनन्त रूप की केवल आशा मात्र हैं। इसका तात्पर्य है कि ईश्वर एक है, और वही सत्य है, तथा आँखो से देख पडने वाले सभी पदार्थ असत्य। इसी विचार का आश्रय लेकर लोग मायावादी, निर्गुणोपासक शकर आदि दार्शनिको के अद्वैतवाद की छाया का भ्रम करके, इस कवि को कभी-कभी निर्गुणोपासक कह देते है। फिर :

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन-बिस्तारन-काल;
प्रगटत निर्गुन निकट ही, चग-रग गोपाल।।

अर्थात् यदि ईश्वर को सगुण मानकर उसके अनन्त गुणो की प्रशसा की जाय और उसी के चिंतन मे समय लगाया जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यो-ज्यो उपासक उसके गुणसागर मे विनम्र होता जाता है, त्यो-त्यो उसे अपनी क्षुद्रता तथा उपास्य की महत्ता की तुलना करते-करते, एक महान् अन्तर का बोध होता जाता है। और इस बात मे सन्देह उत्पन्न होने लगता है कि हम ईश्वर द्वारा वास्तव मे अपनाए जा सकते हैं कि नही। ऐसा जान पडता है कि गुणावली के साथ-साथ ईश्वर और भी दूर होता जाता है। परन्तु यदि निर्गुण के भाव की धारणा की जाय, तो वह अति निकट प्रकट-सा हो जाता है। इस बात को कवि ने गुड्डी उडाने का उदाहरण देकर समझाया है। कहा है, कि जैसे पतग की डोरी को जितना ही फैलाया जाय

उतना ही वह हमसे दूर होती जाती है, और फिर उसे समेटने के साथ ही निकट आ जाती है, उसी प्रकार गुण सम्पन्न ईश्वर की भी बात है। इस दोहे मे भी ऊपर की बात को ही एक दूसरे ढग से कहा गया है, बल्कि सगुण तथा निर्गुण ईश्वर के बीच उपासना के लिये किसी एक को पसन्द करने मे यह दोहा स्पष्ट रूप से सलाह देता हुआ-सा भी जान पडता है। गुण-शब्द इस दोहे की जान हैं।

परन्तु वास्तव मे यह बात नही। ऊपर दोहे मे कवि ने ईश्वर को जान-बूझ कर 'प्रभु' और 'गोपाल' कहा है, जो अपनी थोथी गुणावली के आडम्बर से ही नही रिझाया जा सकता, बल्कि सारी पृथ्वी का पालन करने वाला वह एक ऐसा सर्वव्यापी स्वामी है जो इसके अन्तस्थल की बाते भली-भाँति समझता है। और जो बिना अपनी प्रशसा कराए ही प्रत्येक हृदय के गुण तथा अवगुण को स्वय जाँचने को तैयार रहता है। बनावटी गुण-विस्तार उसे पसन्द नही। गुड्डी उडाने वाले और गुड्डी मे चाहे डोरी मात्र का सम्बन्ध हो, किन्तु मनुष्य और ईश्वर के बिना किसी गुणावली के ही सम्बन्ध स्थापित है। ये दोनो स्वभावतः स्वामी और सेवक हैं। यही क्यो, सोरठे का भाव भी केवल यही दिखलाता है कि सम्पूर्ण दृश्यमान जगत सिवा ईश्वर की आभा मात्र के और कुछ नही। सब पर उसकी मुहर है, जिसके कारण उसके प्रेम मे उन्मत्त भक्त को सारे ससार मे अपना इष्ट देव ही देख पडेगा। दृश्यमान वस्तुओ पर से उसकी छाप हटा देने पर वास्तव मे कुछ भी नही रह जाता, और फिर भक्त भी सब मे उसका 'रूप' ही तो देखा करता है। इसलिए वास्तव मे बिहारीलाल निर्गुणवादी दार्शनिक नही एक सच्चे भक्त हैं, जिनके उपास्यदेव श्री कृष्ण चन्द्र है। यह बात आगे और भी स्पष्ट हो जाएगी।

सबसे पहले कवि ने अपने इष्ट देव के स्थान पर, मगलाचरण मे, श्री राधा से विनय की है। उनकी प्रशसा करते हुए लिखा है कि मुझे ससार की बाधाओ से वह राधिका मुक्त करे, जिनके शरीर की आभा पडने अथवा जिनसे प्रभासित होने पर मेरे इष्ट देव श्याम अथवा श्री कृष्ण तक हरे अथवा प्रसन्न वदन हो जाते हैं, अर्थात् मेरे इष्ट देव पर अपना प्रभाव डालने वाली 'राधा नागरि' मेरी सहायता करे। इसे हम 'विनय पत्रिका' मे की गई गोस्वामी तुलसीदास जी की प्राथमिक विनयो के समान मान ले तो कोई अडचन न होगी। अथवा यह भी हो सकता है कि कवि युगल-मूर्ति की उपासना पसन्द करता है, और उस दृष्टि से स्वभावत कृष्ण से पहले राधा की वन्दना लिखना उसने आवश्यक समझा हो। युगल-मूर्ति के विषय मे कवि कहता है ·

नितप्रति एकत ही रहत बैस-बरन-मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि, लोचन-जुगल अनेक ॥

अर्थात् एक साथ ही रहने वाले दोनो की युगल-मूर्ति, उभ्र, सभी बातो मे एक ही हो जाने के कारण और भी शोभा-सम्पन्न हो जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि भक्त की दो आँखे कितना हो देखती रहे, उसके हृदय को तृप्त नही कर सकती। उस अलौकिक सौन्दर्य को देखने के लिए यह अभिलाषा होती है कि यदि लोचनो के अनेक जोड मिल जायँ, तो कदाचित् उस छवि का अनुभव हो सके। परन्तु अपने उपास्यदेव श्री कृष्ण चन्द्र से कवि ने नीचे लिखे दोहे मे जो विनय की है, उसमे पता चलता है कि उसे कृष्ण का कैसा स्वरूप इष्ट था :

सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल,
इहि वानक मो मन सदा बसौ बिहारी लाल ।।

अर्थात् हे आनन्द-क्रीडा करने वाले लाल मेरे मनो-मदिर मे तुम उस गोप वेश मे निवास करो जिसमे सिर पर मोर मुकुट, कटि मे काछनी, हाथ मे मुरली तथा गले मे वनमाला पडी हो। तात्पर्य यह कि बिहारीलाल को, अपने समसामयिक कवि रसखानि की ही भाँति, निरन्तर मणि-मडित-किरीट धारी, पीताम्बर पहनने वाले द्वारकाधीश से कोई मतलब नही, उन्हे वृन्दावन-बिहारी की ही उपासना करनी है। रसखान का भी कहना है :

सोहत है चँदवा सिर मोर के, जैसियै सुन्दर पाग कसी है,
तैसियै गोरज भाल विराजति, जैसी हिये वनमाल लसी है ।।
"रसखानि" विलोकत बौरी भई, दृग मूँदि कै ग्वालिन पुकारि हँसी है,
खोली री घूंघट, खोलौ कहा, वह मूरति नैननि-माँझ बसी है ।।

फिर—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि, नवौं निधि कौ सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं ।।
"रसखानि" कबौं इन आँखिन सो ब्रज के वन-बाग तडाग निहारौं,
कोटिन हू कलधौत के धाम करील के कुँजन-ऊपर वारौ ।।

बिहारी लाल अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण को ही एक मात्र और सर्वव्यापक सगुण ईश्वर समझते हैं। इसी कारण इन्हे लोगो के मतमतान्तर वाले झगडो से वडी घृणा है। उनका कहना है .

अपनैं अपनैं मत लगे, बादि मचावत सोरु,
ज्यौं-त्यौ सबकौं सेइबौ, एकै नन्दकिसोरु ।।

अर्थात् संसार भर के भिन्न-भिन्न देवोपासक—चाहे वे वैष्णव, शैव अथवा

शाक्त इत्यादि हो—तथा भिन्न-भिन्न मतवादी—चाहे वे द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत इत्यादि मत वाले हो--सब कोई अंधविश्वासियो की भाँति आपस मे व्यर्थ लडते अथवा वाद-विवाद किया करते हैं। सच्चा सिद्धान्त तो यह है कि सबको किसी न किसी प्रकार एक नन्द किशोर की ही सेवा करनी है। क्योकि अखिल ससार कृष्णमय होने के कारण किसी अन्य देव की आराधना भी कृष्ण की ही आराधना हो जाती है और सबका लडना-झगडना किसी काम का ही नही रह जाता। कहा भी है—"सर्व देव, नमस्कार. केशवं प्रति गच्छति।" बिहारी लाल का तो यहाँ तक कहना है कि कोरी उपासना की ही दृष्टि से नही, बल्कि प्रतिदिन के सासारिक जीवन के भी विचार से सारी विपत्तियो को दूर करने वाले एक मात्र कृष्ण के सिवा किसी भी प्रकार की सपत्ति से मुझे कुछ प्रयोजन नही :

कोऊ कोरिक सग्रहौ, कोऊ लाख हजार,
मो सपति जदुपति सदा बिपति-बिदारनहार ।।

अर्थात् चाहे कोई करोड की संपत्ति इकट्ठी करे, चाहे कोई दस करोड का उपार्जन करे,मेरी सपत्ति सदा विपत्तियो के नाश करने वाले स्वयं श्री कृष्ण भगवान् हैं मुझे और किसी सपत्ति की कुछ भी आकाक्षा नही। यही नही, कवि को इस बात की अभिलाषा नही कि वह प्रयागादि बडे-बडे तीर्थों मे घूम कर पुण्यार्जन करता फिरे। उसे तो राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति का दर्शन ही सभी पुण्यो से बढकर है :

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु,
जिहिं ब्रज-केलि-निकुज-मग पग पग होतु प्रयागु ।।

अर्थात् हे मन तू तीर्थाटन की अभिलाषा छोडकर श्री राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति की शरीर-काति मे ही अपने को लगाए रह—उसी मे अनुरक्त रह क्योकि अन्य तीर्थों की कौन कहे, स्वय तीर्थराज तक उस युगल मूर्ति के विहार-कुजो के मार्ग मे केवल एक पग के ही बराबर है, अर्थात् श्री राधा-कृष्ण के ध्यान मे अनुराग करने मे ब्रज के कुजो मे चलने वाले को प्रत्येक पग पर प्रयागराज जाने का फल प्राप्त होता है अत तीर्थाटन का श्रम भी व्यर्थ ही है। भक्त के लिए इन ऊपरी बातो की कुछ भी आवश्यकता नही। उसे तो एक सच्चा हृदय-मात्र चाहिए। इसीलिए वेशधारी साधुओ की ओर संकेत करके कवि कहता है .

जपमाला, छापैं तिलक सरै न एकौ कामु,
मन-काँचे नाँचे वृथा, साँचे राँचे रामु ।।

अर्थात् तिलक, माला आदि सब वेष केवल ऊपरी दिखावे के साधन मात्र हैं। इनसे तथा सच्ची भक्ति से कुछ भी सम्बन्ध नही। ईश्वर इन बातो की ओर न देख

कर सच्चे हृदय वाले ५र ही प्रसन्न होता है। वह कपटी से बहुत अप्रसन्न रहता है, और उसे अपनी शरण मे नही लेता। सच्ची बात तो यह है कि कपटी हृदय मे ईश्वर आ ही नही सकता। कपट का दृढ किवाड उसके हृदय तक पहुँचने में रुकावट डालता है, उसे घुसने तक नही देता :

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहि बाट ,
विकट जटे जौ लगु निपट खुरै न कपट-कपाट ।।

यह सब कुछ कह चुकने पर अन्त मे कवि मानो अपने को सबोधित करके कहता है—रे मन, तुझे किसी से सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता नही, और न किसी का आश्रय लेना है। तू तो केवल :

मनमोहन सौ मोहु करि, तू घनस्यामु निहारि ,
कुज विहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि ।।

अर्थात् "रे मन यदि किसी पर मोह करना है तो तू श्री मनमोहन से ही मोह कर, क्योंकि और जितने मोहोत्पादक पदार्थ हैं, वे सब अत को फीके जँचते है, पर मनमोहन का मोह सदा चटकीला होता जाता है। यदि तेरी इच्छा शोभा देखने की है, तो तू श्री घनश्याम को ही देख, क्योंकि वह शोभा की अवधि हैं, और उनकी शोभा से मन कभी नही भरता। यदि तेरी लालसा विहार करने की है, तो तू कुन्जविहारी से विहार कर, क्योंकि और विहारो से अत मे चित्त को आराम हो जाता है। पर उनके नये विहार चित्त को सदैव उत्साहमय तथा आनन्दित बनाए रखत हैं। और यदि तेरी अभिलाषा किसी को अपने हृदय मे धारण करने की है, तो तू गिरधारी को ही उर मे धर, क्योंकि वह परम भक्त-वत्सल एव शरणागत का पालन करने वाले हैं। उन्होने गोवर्धन धारण करके इन्द्र के कोप से ब्रजवासियो की रक्षा की थी।" (रत्नाकर)

बहुत से पूर्ववर्ती तथा परवर्ती भक्त कवियो की भाँति बिहारीलाल ने भी अपने को बडा भारी पापी बतलाया है, और उसी सबन्ध से नाता जोड अपने उपास्य देव श्रीकृष्ण चन्द्र से तारने के लिये निमित्त कई प्रकार से अनुनय-विनय की है। यह कवि अपने को इतना पतित समझता है कि इसे भय है मुझे तारने के समय हिचकिचाते हुए हरि को दीनोद्धार बनाने का अपना प्रण भी तोडना पडेगा। वह कहता है—'हे मुरारे, एक साधारण गिद्ध को तारकर तुमने जो अपना यश फैला रखा था, वह मेरे जैसे परचे हुए पातकी के अवसर पर ठहर ही न सकेगा, और अब तो मुझमे और तुममे एक पूरी बहस उठ खडी हुई है। मैं पूर्ण पतित हूँ, और तुम पतित-पावन कहलाते हो, इसलिए या तो मुझे तारना ही पडेगा, या अपना

नाम ही छोडना पडेगा । दो में से एक निश्चित है । देखो, ऐसा प्रबन्ध करो कि मेरे गुणो अथवा अवगुणो की कोई गिनती ही न होने पावे, और मैं भी और पतितो के साथ ही झमेले से किसी प्रकार तार दिया जाऊँ । मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि जैसे और अधमो को मोक्ष मिली है, वैसे मुझे भी मिल जाय, और नही तो यदि बधन मे ही रखा जाऊँ तो फिर अपने इष्ट देव की गुणावली की ही डोर से बँधा रहूँ ।" कवि अपने इष्टदेव कृष्ण को युक्तियो द्वारा भी रिझाकर अपनी ओर फेरना चाहता है । उसका कहना है—"मैंने अपने हृदय रूपी हम्माम को तीनो आधिभौतिक, आधिवैदिक तथा आध्यात्मिक—तापो से यह सोचकर तपा रखा है कि संभव है, यहाँ कभी आ जाने पर मेरे श्याम पुलकित होकर पसीज जाँय, अर्थात् उन्हें करुणा आ जाय" अथवा "मैं इस ससार मे कुटिलता इसलिए किया करता हूँ कि मेरा हृदय सरलता के कारण सीधा न रहने पावे, नही तो मेरे त्रिभगी अर्थात् तीन जगह से टेढे लाल को ऐसे स्थान मे रहने पर कष्ट होगा ।" हरि से कवि का कहना है :

> हरि, कीजति, विनती यहै तुम सौं बार हजार ।
> जिहिं-तिहिं भाँति डर्‌यौ रह्यो पर्‌यौ रहौं दरबार ।।

अर्थात् हे हरे, देखो, और कुछ न करो, तो कम से कम मुझे अपने दरबार मे ही पडा रहने दो । तात्पर्य यह कि मैं मुक्त होकर भी तुम्हारे दरबार से निकाल दिया जाना नही चाहता ।

परन्तु भक्त विहारीलाल के उपालंभ बहुत मार्के के नही हैं । यह बस इतना ही कह देना बहुत समझते हैं कि हे भगवान जान पडता है, तुम्हे भी आजकल के दानी लोगो की हवा-सी लग गई है, नही तो तुम मेरी इतनी उपेक्षा क्यो करते ? इन्हे अपनी करतूतो की निकृष्टता का ही इतना भय है कि वह लज्जित होने के कारण गोपाल को अपने सम्मुख आने देना तक नही चाहते, क्योकि इससे सकोच इतना बढ जायगा कि छिपाने को भी कही स्थान नही मिलेगा । यह तो यहाँ तक कह डालते हैं :

> ज्यौं ह्वै हौ, त्यौ होउँगो, हौ, हरि, अपनी चाल,
> हठु न करौ, अति कठिनु है मो तारिबौ, गुपाल ।।

अर्थात् हे हरे, मैं अपनी चाल से अपने भले-बुरे कर्मों का फल भोगता रहूँगा । तुम कही मेरे तारने के कठिन काम मे हाथ लगाने का हठ न करना । यह दुसाध्य-सा है ।

भक्त बिहारीलाल की कुछ भावनाएँ बहुत सुन्दर हैं । जैसे

साधारण भाव को लेकर एक बडी ही चमत्कारपूर्ण उक्ति की सृष्टि कर डाली है। यहाँ पर 'एकै वस्तु अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ" का भाव और भी स्पष्ट कर दिया गया है। इस प्रकार के दोहे कुछ और भी हैं, जिन्हे यहाँ उद्धृत करने की आवश्यकता नही।

नीति :

विहारीलाल ने अपनी सतसई मे पूर्ववर्ती कवियो (तुलसी रहीम, कबीर आदि) की पद्धति का अनुसरण करके कुछ नीति-विषयक दोहे भी कहे हैं, जो अधिकाश मे उच्च श्रेणी के ही नही, अनूठे तक कहे जा सकते हैं। इनमे पता चलता है कि यह कवि कोरे शृंगार मे ही मग्न रहने वाला नहीं था, प्रत्युत देश, काल, समाज तथा दरबार आदि की गति का भी निरीक्षण करने मे अपनी कुशाग्र बुद्धि का प्रयोग कर सकता था। इसके अनुभव की बातो के उदाहरण लीजिये। इसकी राय मे बडे लोगो को छोटो की अधिक प्रतिष्ठा नही करनी चाहिये, क्योकि अन्त मे छोटे-छोटे ही हैं, और उनसे बडा काम कभी नही निकाला जा सकता। चूहे के चमडे से कभी बडा नगाडा नही मढा जा सकता, और न सोने के समान 'कनक' कहलाने के ही कारण गुणहीन धतूरा गहने गढने के काम आ सकता है, या सूर्य के समान अर्घ कहलाने वाला मदार प्रकाश दे सकता है। और फिर बालो को तो आप कितना ही सिर चढाए रहिए, अन्त मे बढ कर आपके पीछे ही पडे रहेगे। नीच आकाश तक भी ऐंठकर क्यो न पहुँचा दिए जाय, किन्तु फिर भी अपनी शक्ति के बाहर की बात उनसे नही हो सकती—कही फाड-फाडकर देखने भर से ही आँखे बडी तो नही हो जाती, और न फुहारे का पानी नल के अवलंब से ऊपर उठने के कारण चढता ही चला जा सकता है। इन दोनो को लौट कर अततोगत्वा अपने स्वभाव पर ही आ जाना पडेगा। नीचो का तो यहाँ तक स्वभाव है कि वे ऊपर से नम्र देख पडने पर भी, सुयोग पाकर, काटे के समान पैरो लगा कर भी, दुःखदायक हो जाते हैं, और यही कारण है कि उनको बुराई दूर हो जाने पर भी उनसे बडा भय मालूम होता है, क्योकि यह देखने मे आया है कि चद्रमा को कलंक-रहित देखकर ज्योतिषी लोग किसी बडे भारी उत्पात की सभावना किया करते हैं। इसलिये यदि किसी को कोई नीच कुछ देर के लिए अच्छा लगता सा देख पडे, तो भी यही समझना चाहिए कि वह कदाचित् "भिन्नरुचिर्हि लोक" की कहावत के अनुसार अपने सीधे-पन के कारण उस पर किसी प्रकार रीझ गया होगा, अन्यथा यह कौन नही जानता कि नीच का सम्मान यदि होता भी है, तो केवल घडी क्षण का ही हुआ करता है। काक पक्षी का आदर श्राद्धपक्ष के अनतर कही थोडे सुना जाता है। गोवर्द्धन-गिरि तक की पूजा थोड़ी ही देर के लिए होती है और अन्त मे उसकी प्रतिभा को पशुओ

के पैरो तले ही रौंदा जाना ही नसीब होता है। नीच को सदा निरादृत करना चाहिये। इसी मे उसकी भलाई है, क्योकि उसका तो यह स्वभाव ही है कि वह गेंद के समान, जितनी सिर पर चोट लगे, उतना ही उछल कर, अपने को धन्य समझेगा, इत्यादि।

दुष्ट प्रकृति वाले स्वामी की भलाई के निमित्त अपने ही भाई-बन्धुओ को कष्ट पहुँचाने वाले किसी उच्च कुलोत्पन नौकर की ओर सकेत करके कवि ने एक बडी ही मार्मिक अन्योक्ति कही है, जो उसकी प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है। देखिए :

स्वारथु, सुकृतु न श्रमु वृथा, देखु विहग विचारि,
वाज, पराएँ पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि ।।

इसका सरल अर्थ यह है कि आकाशगामी पक्षी बाज, तू दूसरे के हाथो पड कर अपनी ही जाति वाले पक्षियो को मारने का इतना भारी अनर्थ क्यो कर रहा है ? भला विचार कर देख तो सही, इसमे न तो तेरा कोई स्वार्थ है, न कोई पुण्य, बल्कि एकदम व्यर्थ का परिश्रम ही परिश्रम है। इस दोहे मे कवि ने 'विहग,' 'विचारि' 'पराएँ पानि परि' तथा 'पच्छीनु' शब्दो अथवा वाक्याशो के प्रयोग जान-बूझ कर किए हैं, क्योकि 'विहग' उसी को कहते हैं, जो स्वच्छद 'विहायसा' (अर्थात् आकाश) मे विचरण करने वाला हो, अर्थात् जिसका कुसमयानुसार दासत्व की शृखला से जकड जाना उसकी उच्चकुल-सुलभ प्रतिष्ठा से नीचे गिरना है। इस कारण इस दोहे की बात उसी को लग भी सकती है। जो स्वभावत नीच प्रकृति का होगा, उस पर इसका प्रभाव नही पड सकता। 'विचारि' शब्द इसलिए प्रयुक्त है कि वाज अथवा सेवक, कुछ दिनो तक दासवृत्ति मे रहने के कारण, अपनी स्वाभाविक चाल की गुरुता भुला सा गया होगा। यदि उससे सँभल कर सोच लेने के लिए न कहा जाय, तो सभव है, जैसा चाहिये वैसा प्रभाव ही न पडने पावे। 'विचारि' शब्द की गम्भीरता उसके साथ 'देखु' के लग जाने से और भी बढ जाती है, जिसके कारण 'विचारि देखु' का अर्थ 'भला विचार कर देख तो सही' इतना हो जाता है। इसी प्रकार 'पराएँ पानि परि' वाक्याश मे 'पराएँ' शब्द 'पच्छीनु' अर्थात् स्वपक्ष वालो से पार्थक्य अथवा दूर का सबन्ध बतलाने के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिससे यह शीघ्र बोध हो सके कि करने वाले का नाम सचमुच अनर्थयुक्त है—भला दूसरे के हित के लिए अपने लोगो को पीडित करने का अस्वाभाविक काम कोई कैसे करना चाहेगा ? फिर 'पानि परि' अर्थात् 'हाथो पडकर' से वाज के पक्ष मे अपने स्वामी के हाथ पर बैठने का भी बोध हो सकता है ! 'पच्छीनु' शब्द भी जैसा ऊपर कहा गया है, पक्षियो तथा स्वपक्ष वाले, इन दोनो अर्थों का बोधक है।

इसके सिवा इस दोहे मे यह भी विशेपता है कि इनका प्रत्येक शब्द वडी सावधानी से रखा गया जान पडता है । किसी उद्धत प्रकृति-प्राप्त भले मानुस को समझाकर रोकने का जैसा ढग हो सकता है, ठीक वैसा ही ढङ्ग इस दोहे के शब्द-विन्यास से सूचित होता है :

स्वारथु सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि विहग, विचारि ।
वाज, पराएँ पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि ।।

अर्थात् जवकि सवसे प्रिय स्वार्थ का भाव अथवा उसके अनतर सत्कार्य या पुण्य का भी कोई भाव नही देख पडता और सारा-का-सारा परिश्रम व्यर्थ ही है ! तो ऐ भले आदमी, जरा विचार कर देख तो सही, दूसरे (और फिर भी दुष्ट स्वभाव वाले) किसी के हाथ का खिलौना वन कर अपने भाई-बन्धुओ को ही तग करने का अनर्थ क्यो कर रहा है ? ऐसा मत कर, कम-से-कम तुझे तो ऐसा नही करना चाहिए । इस कथन शैली के साथ ही विलष्ट शब्दो को न आने तथा थोडे से ही शब्दो मे एक पूर्ण भाव की सामग्री एकत्रित हो जाने कारण इस दोहे मे प्रसाद-गुण और शीघ्र किसी चोट के समान हृदयगम करा देने वाली गम्भीरता, दोनो वाते एक साथ ही आ गई हैं ।

गुणग्राहकता के विषय मे विहारीलाल का कहना है—सवसे पहले तो गुणी कहला कर प्रतिष्ठा पाने की इच्छा करने वाले को ही चाहिए कि वह इस वात को भली-भाँति समझ ले कि उसमे वास्तव मे कोई गुण है कि नही, क्योकि भ्रमवश अपनी वडाई से वहक कर खिल उठने वाले गुडहल के फूल पर यदि भ्रमर नही वैठता, तो यह भ्रमर का अन्याय नही, वल्कि उस फूल की ही निर्गुणता है । प्रतिष्ठा जमाने के लिए गुणियो को भी कभी-कभी कष्ट उठाना पडता है, क्योकि विना पत-झड हुए वृक्ष मे नए फूल-फल नही आते । हाँ, गुण होने पर भी यदि गँवार लोग उनका समादर न करते हो, तो दूसरी वात है; क्योकि गाँव मैं जाने पर शिक्षित नाग-रिक तक की हँसी हो सकती है और अपने गुणो को विकसित करके फूला हुआ गुलाब भी अनफूला रह जाने के बराबर ही हो जाता है । इसका कारण यह जान पडता है कि जिन लोगो को निकृष्ट वस्तुओ से हो प्रयोजन है, वे उत्तम वस्तु लेकर करेगे ही क्या ? गधो से काम चलाने वाले कही हाथी का व्यापार कर सकते हैं ? और, यह भी तो समझना चाहिए कि गुणी का यदि निरादर भी हो जाय, तो उसके गुणो की महिमा नही घट सकती; क्योकि यदि पीनस-रोग वाले ने कपूर को शोरा समझकर त्याग दिया, तो क्या उसकी शीतलता अथवा सुगन्ध का मूल्य घट जायगा ? तात्पर्य यह कि आदरणीय मनुष्य का आदर न करने अथवा निरादर करने से उसके गुणो का कुछ मोल नही गिर जाता । सिर पर धारण करने योग्य मुकुट को पाँव मे पहनने

वाला मनुष्य अपनी ही जडता प्रकट करता है, उस मुकुट की गुणहीनता नही, और गुलाब के सुन्दर-सुन्दर फूलो के लिए कँटीली और सूखी डालो का होना विधाता की ही भूल का द्योतक है, इत्यादि ।

कवि ने कुबुद्धि, कृपणता और लोभ की घोर निंदा की है और राज्य की द्वैध शासन-प्रणाली अथवा Dyarchy को प्रजाओ के लिए महा अनर्थकारिणी बतलाया है। उमका कहना है :

दुहस दुराज प्रजानु को, क्यों न बढै दुख-दद्दु;
अधिक अँधेरौ जग करत, मिलौ मावस रवि-चंदु ।।

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा की दुअमली के ही कारण अमावस को अधकार-ही-अधकार देख पडता है । विहारीलाल ने साथ या सगति के विषय मे लिखते हुए सब कही यही कहा है कि वह बराबरी वालो मे ही ठीक होती है । क्योकि जो वस्तु जहाँ रहने के योग्य हो, उसका वही रहना समुचित अथवा न्याय सगत है । हाँ, अपनी भलाई के लिए सौभाग्य से यदि किसी अपने से बडे की मैत्री भी हो जाय, तो वह बात ही दूसरी है । बडो की सगति की यह विशेषता भी है कि वह दुरवस्था के प्राप्त होने पर भी "चोल रग मे रगे हुए कपडे" के समान कभी फीकी नही पडती, प्रत्युत चटकीली अर्थात् गहरी ही होती जाती है । मैत्री को स्थायी बनाये रखने के लिए रजोगुण से दूर रहना परमावश्यक हैं, क्योकि वह कितनी ही स्निग्ध अथवा चिकनी क्यो न हो, रजोगुण की धूल उसे अवश्य दूषित कर देगी ।

इन्होंने नम्रता की प्रशंसा करते हुए भी अपने दृढ निश्चय पर डट जाने वाले की ओर सकेत करके चकोर पक्षी के ऊपर एक बडी अच्छी अन्योक्ति कही है :

चितु दै देखि चकोर-त्यौं, तीजैं भजै न भूख,
चिनगी चुगै अगार की, चुगै कि चंद मयूख ।।

अर्थात् अपने निश्चय पर तुले हुए चकोर की ओर तो देखिए । वह इतना हठ-धर्मी है कि भूखा रहने पर भी या तो चन्द्रमा की किरणो का पान करेगा, अथवा आग की चिनगारियाँ ही चुकेगा, किसी तीसरी वस्तु को वह नही भखता । इसी प्रकार दृढ व्रती लोग या तो अपना उद्देश्य पूरा करके छोडेंगे या मर ही मिटेंगे ।

समय के फेर के सबध मे रखने वाली नीचे लिखी कविता बहुत प्रसिद्ध है :

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार;
अब, अलि, रही गुलाब मैं, अपत, कँटीली डार ।।२५५।।

इसका आशय है कि इस बुरे दिन मे अब दु.ख को छोड किसी सुख की संभा-

चना नही देख पडती। परन्तु एक दूसरी भ्रमरोक्ति द्वारा कवि ने आशावादिता की भी वैसी ही सुन्दर झलक दिखलाई है :

इही आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कैं मूल,
ह्वै हैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारनु वे फूल ।।

अर्थात् घोर निराशा के अवसर पर भी आशा की किरणो का दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है। फिर समय का प्रभाव दिखलाता हुआ कवि कहता है :

बढत बढत सपति-सलिलु, मन-सरोजु बढि जाइ;
घटत-घटत सुन फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ।।

अर्थात् जल-रूपी सपत्ति ज्यो-ज्यो बढती जाती है, त्यो-त्यो कमल रूपी मन भी बदल जाता है। किंतु फिर उस (सपत्ति) के घटने लगने पर वह (मन) घटना नही जानता, प्रत्युत सूखती हुई झील मे उगे कमल की भाँति एकदम कुम्हला कर नष्ट ही हो जाता है। परन्तु ऐसी दशाओ मे दैव-दैव मात्र कहकर बैठ जाने वाले को कवि फिर आश्वासन भी देता है

दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साँई हिं न भूलि,
दई-दई क्यौं करतु है, दई-दई सु कबूलि ।।

अर्थात् दुःख मे लबी साँसे न ले, और सुख मे परमेश्वर को न भूल। इसी से सुख तथा दुःख, इन दोनो अवस्थाओ मे मन की स्थिरता वर्तमान रह सकेगी। सपत्ति उसी ने दी है, और वही ले भी लेता है। वह यदि चाहेगा, तो बिना किसी उद्योग के भरा-पूरा कर देगा। बिहारीलाल को इसी कारण सतोष पर पूरा विश्वास है, वह कहते हैं, धनोपार्जन के फेर मे निरतर फँसे रहना व्यर्थ है, क्योकि एक तो इसका फँसाव ही ऐसा है, जिसमे जितना ही समझना चाहे, उतनी ही उलझने बढती जाती हैं, और लालची भी दशा फदे मे फसे हरिण की-सी हो जाती है, दूसरे धतूरे से भी अधिक मादक द्रव्य को जितना ही तिरस्कृत किया जाय, उतना ही अच्छा। सम्पत्ति से निरपेक्षता दिखलाने वाले इस कवि ने यहाँ तक कह डाला है कि इस संसार मे द्रव्य की आवश्यकता केवल अपनी लाज बचाए रखने के लिए ही है—इसलिए यदि ईश्वर यो ही इज्जत रखता चले, तो इस अनेक दुर्गुणो से परिपूर्ण बला को भला कौन मोल लेना चाहेगा। इसी कारण कवि ने आदर्श कुटुम्ब उसी को माना है, जिसे भोजन वस्त्रादि-भर के उचित सामान समय पर, बिना किसी झझट के, मिलते जायँ, और धनोपार्जन के अनर्थकारी झमेले मे नाहक फँसना न पडे। इसी बात को वह एक सुन्दर अन्योक्ति द्वारा स्पष्ट करता है :

पट्टु पाँखें, भखु काँकरे, सपरपरेई संग;
सुखी, परेवा, पुहुमि मैं एकै तुही विहग ।।

अर्थात् हे कबूतर, इस धरातल पर तेरे जैसा सुखी मुझे कोई नही देख पडता; क्योकि एक गृहस्थ कुटुम्ब के लिए सबसे आवश्यक वस्तुएँ केवल वस्त्र, भोजन तथा एक सुशील ग्रहणी हुआ करती है । सो तुझे पर्याप्त रूप से प्राप्त है । वस्त्र की जगह तेरे शरीर पर सुन्दर पख हैं, साधारण ककण तू चुगा करता है, जो जहाँ तू बैठ जा, वही विना कष्ट मिल सकते हैं और परो से आच्छादित तेरी स्त्री सदा तेरे साथ ही रहा करती है । तुझे अब और क्या चाहिए ।

यह कवि एक सच्चा व्यवहारवादी है । इस कारण आदर्शवादिता के ऊँचे शिखर पर चढ कर वह सारहीन मनोरथो की मनोरंजक मूर्ति गढते रहना नही पसन्द करता । वह तो स्पष्ट कह देता है कि ससार का ऐश्वर्य किसी काम का नहीं । प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी वस्तु वही हो सकती है, जो उसके अवसर पर काम आवे । जेठ की दुपहरी मे पानी की खोज मे सारा मरुस्थल छान डालने वाले प्यासे मारवाडी के लिए यदि अकस्मात् मिल जाने वाला तरबूज ही काम आ जाय, तो उस समय वह समुद्र से किसी प्रकार कम नही, चाहे समुद्र की अपारता की प्रशसा करने वाले कितना ही मूड क्यो न मारते फिरे । बात यह है कि .

अति अगाधु, अति औथरो नदी, कूप, सरु, बाइ,
सो ताको सागरु जहाँ जाकी प्यास बुझाइ ।।

और जान पडता है, इसी सिद्धान्त के आधार पर, उसने सृष्टि के सुन्दर तथा कुरूप पदार्थो के विषय मे भी निर्णय किया है । वह एक स्थल पर कहता है :

समै-समै सुन्दर सबै, रूपु, कुरूपु न कोइ ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ।।

अर्थात् वास्तव मे यदि देखा जाय, तो यह कहना कि अमुक वस्तु सुन्दर है और अमुक वस्तु कुरूप, एक भ्रम मात्र देख पडेगा, क्योकि वस्तुओं की सुन्दरता अथवा कुरूपता, प्रशंसा अथवा निंदा करने वाले की मनोवृत्ति पर ही अवलंबित है, और यह मनोवृत्ति स्वयं वस्तु-स्थिति तथा अवसर द्वारा सदा प्रभावित होती रहती है । इसी लिए इन दोनो अर्थात् सौन्दर्य तथा कुरूपता का सापेक्ष (Relative) होना अनिवार्य है ।

इसी प्रकार बिहारीलाल ने कई विचार, विशेष कर वे, जो सामाजिक कुरीतियो अथवा व्यवहारो से अधिक सम्बन्ध रखते हैं, उनके प्राकृतिक

वर्णन के तथा शृंगार-रस वाले दोहो मे भी भरे पडे हैं। परन्तु इस लेख को और न बढाकर उनके कवित्व-विषयक विचार को व्यक्त करने वाला एक ही दोहा यहाँ और दिया जाता है।

तंत्री नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग,
अनबूडे, बूडे तरे जे बूडे सब अंग ।।

इसका भावार्थ यह है कि कविता और सगीत के महत्व को सर्व-साधारण नही समझ सकते, क्योकि ये समुद्र-ऐसे हैं, जिनमे जितना ही डूबते जाइए, उतना ही आनन्द मिलेगा। इनमे केवल ऊपर तैरते रहने-भर की इच्छा करने वाले के हो कुछ हाथ नही लग सकता। रसिकता और भावुकता विरला ही मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ संकेत

ये अथवा आगे जिन दोहों का अर्थ है, वे यहाँ उद्धृत नही किए गए; केवल अर्थ ही दे दिया गया है। ऐसा विस्तार-भय से किया गया है। पाठक बिहारी-रत्नाकर में अनायास ही इन दोहो को खोज कर देख सकते हैं।—सुधा—संपादक

देव और बिहारी विषयक विवाद की उपलब्धियाँ

● श्री किशोरी लाल

वस्तुतः रीतियुग की काव्य-चेतना ऐतिहासिक जीवन के मादक एवं समस्त प्रभावो से पूर्ण रूपेण अनुप्राणित है। उस युग की शृंगारिक रचनाएँ आमुष्मिक जीवन की चिन्ता से सर्वथा मुक्त हैं। इनमे ऐन्द्रिक सवेदना के इतने विखरे हुए चित्र मिलेगे जिन्हे दूसरे युग का वाड्मय नही दे सकेगा। मान्यवर डा० ग्रियर्सन ने सत्रहवीं शती के मध्य की रचनाओ की तुलना आगस्टन युग की रचनाओ से की है। अंग्रेजी साहित्य के इतिहास मे यह युग काव्यकला एव काव्यकौशल युग के रूप मे अभिहित किया गया है।[१] देव और विहारी इसी आगस्टन युग के कलाकार थे। डा० रसाल ने देव और विहारी जैसे कवियो की उत्कृष्ट काव्यकला समन्वित रचनाओ के कारण इस युग को 'काव्य-कला' युग कहना अधिक औचित्यपूर्ण समझा।

इधर जीवन की नैतिक मान्यताओ की कसौटी पर खरे न उतरने के कारण देव और विहारी की रचनाओ को अधिक उपेक्षणीय दृष्टि से देखा गया है, किन्तु सत्य तो यह है कि रीति युग के कलाकार आत्मस्वर के साधक नही थे। उनकी वाणी यौवन का ही शृंगार करती रही, उनकी दृष्टिकला कला के लिए ही सश्लिष्ट रही। इस तथ्य को ठीक से न ग्रहण करने के कारण एडविन ग्रीव्ज महोदय की विहारी विषयक यह समीक्षा विचारणीय है ·—"Had Bihari lal really something to say and manifisted possession of as much soul as he had brains, he might have become a great-poet."

× × × ×

The Bihari lal was remarkably clever manipulator of wards is freely allowed but he can nither be called a great-poet not can be said to have carried Hindi-literature forward or upward."[२]

निष्कर्षत. ग्रीव्ज महोदय के कथनानुसार विहारी में मात्र वौद्धिक प्रगल्भता थी। उनमें स्वात्म वैशिष्ट्य निरूपण की चेतना का सर्वथा अभाव था। उन्होंने हिन्दी

साहित्य को प्रगतिशील बनाने का कोई प्रयास नही किया। वास्तव मे ग्रीव्ज महोदय के इन कथ.ो मे सत्यांश होते हुए भी इतना तो स्पष्ट है कि उन्होंने बिहारी की सूक्ष्म कला विधायिनी प्रतिभा और सौन्दर्यानुभूति के मार्मिक स्वरूप का विश्लेषण यथोचित रूप से नही किया, यही नही पं० कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार ग्रीव्ज महोदय ने देव और बिहारी के कवि होने मे भी सदेह व्यक्त किया है।[3] वस्तुत: हिन्दी आलोचना के इतिहास मे देव और बिहारी विषयक विवाद की चर्चा एक ऐसी महत्व-पूर्ण कडी है, जिसने परवर्ती आलोचना के स्वरूप के संगठन मे पर्याप्त योग दिया है। इस लेख का विषय देव और बिहारी विषयक विवाद को फिर से जीवित करना नही है वरन् देव और बिहारी विषयक विवाद की उपलब्धियो की विस्तारपूर्वक समीक्षा करना है। देव और बिहारी विषयक विवादैषणा के इस मैदान मे कई योद्धा एवं प्रभविष्णु आलोचक उतरे। बिहारी की अपने अमोघ वाग्बाणी से रक्षा करने वालो मे से लाला भगवानदीन एव प० पद्मसिंह शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। बाद मे पडित लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी भी इस क्षेत्र मे उत्तर आए और देव विषयक विवाद शृंखला को बढाने वालो मे मिश्र बन्धु महोदय एवं पडित कृष्ण बिहारी मिश्र अग्रगण्य हैं। देव और बिहारी के इस विवाद से मूलत: कई मौलिक तथ्य प्रकाश मे आए। इन तथ्यो एव उपलब्धियो की चर्चा सुविधानुसार इस प्रकार की जा सकती है।

(१) प्रौढ एवं व्यवस्थित तुलनात्मक आलोचना का प्रवर्तन।

(२) पाठ और अर्थ विषयक भ्रांतियो का निराकरण।

(३) शब्दो की निरुक्ति विषयक छानबीन।

(४) भाषागत विकृतियो एवं व्याकरणीय स्वरूप की विवेचना।

(५) भाव-सौन्दर्य एव कलागत सूक्ष्म तथ्यो का निरूपण।

काव्य स्वरूप के विश्लेषण मे तुलनात्मक अनुशीलन का महत्व अस्वीकार नही किया जा सकता। वस्तु के स्वरूप का यथार्थ महत्व ज्ञान तो तभी है, जब असमानता एवं समानता की दृष्टि से पूर्णतया विवेचन किया जाय।[4] हिन्दी मे इस पद्धति के प्रचलन के पूर्व इसका स्वरूप हिन्दी एव सस्कृत की महत्वपूर्ण सूक्तियो मे ही सिमटा रहा, यथा :

(क) सूर सूर तुलसी शशी, उड्गन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जँह तँह करत प्रकाश॥

(ख) दंडिन: पद-लालित्यम् भारवे त्वर्थगौरवम्।
उपमा कालिदासस्य माघे सन्ति त्रयो गुणा॥

हिन्दी मे तुलनात्मक आलोचना का अन्य रूप प्राचीन टीका-ग्रथो मे भी उपलब्ध होता है। श्रीपति ने अपने 'काव्य सरोज' मे सेनापति और केशवदास आदि के काव्य की समीक्षा की है। प्रधानत तुलनात्मक आलोचना का उत्कृष्ट रूप मिश्रबधुओं के 'हिन्दी नवरत्न' मे देखने को मिला। इसमे श्रेष्ठता के अनुसार हिन्दी के नव कवियो की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई और सबसे मुख्य बात यह थी कि इसमे तुलसी और सूर के पश्चात देव को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। देव और बिहारी विषयक विवाद की अविच्छिन्न धारा का सूत्रपात यही से होता है। इसके अनन्तर बिहारी पर लगाए गए आरोपो का समुचित उत्तर देने के लिए कमर कसकर इस युद्ध मे कूदने वालो मे थे प० पद्म सिंह शर्मा। उन्होंने मिश्रबधुओ के भद्दे और पक्षपात पूर्ण विचारो का प्रतिवाद बडी निष्ठा एवं गम्भीरता के साथ किया। उनकी बिहारी सतसई के भाष्य की भूमिका इसी विवाद को पुरस्सर करती है। यही से हिन्दी मे प्रौढ एव व्यवस्थित तुलनात्मक आलोचना का दर्शन हमे होता है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि इसमे सस्कृत एव प्राकृत काव्य की सुदीर्घ परम्परा का अनुसरण करते हुए बिहारी की काव्यगत विशेषताओ का बहुत मार्मिक एव सहृदय सवेद्य रूप उद्घटित किया है। शर्मा जी की बिहारी विषयक गूढ एव गम्भीर तथ्य-ग्राहिणी प्रतिभा का रूप 'सतसई' मे कई स्थलो पर देखने को मिला है, यथा,

'बिहारी की कविता जितनी चमत्कारिणी और मनोहारिणी है, उतनी ही गहरी, गूढ और गम्भीर है। उसकी चमत्कृति और मनोहरता का प्रमाण इससे अधिक और क्या होगा कि समय ने समाज की रुचि बदली, पर वर्तमान समय के सुरुचि सम्पन्न कविता प्रेमियो का अनुराग उस पर आज भी वैसा ही बना है। पहले पुराने ख्याल के खूसट उस पर लट्टू थे, आज नई रोशनी के परवाने भी वैसे ही सौजान से फिदा हैं।[५]"

शर्मा जी की आलोचना का दूसरा रूप इसकी शास्त्रीयता थी। उनकी शास्त्र-निष्ठा प्रतिभा ने संस्कृत काव्यशास्त्र की मान्य परम्परा को ग्रहण करते हुए बिहारी के दोहो का गूढ एव गम्भीर विवेच प्रस्तुत किया। शास्त्रीयता के आलोक मे उन्होंने बिहारी के कई अनुद्घाटित मौलिक उपादानो की चर्चा की। उन्होंने बिहारी की काव्यगत सौंदर्य दीप्ति और वचन का मूल्याकन अमरशतक, गाथासप्तशती, आर्या सप्तशती, और विकट नितम्बा आदि के मुक्तक छदो द्वारा किया।

शर्मा जी की तुलनात्मक समीक्षा के मूल मे उनकी सहृदयता और आनन्द भाव की तन्मयता भी व्याप्त रहती है। उनके वाह उस्ताद क्या कहने हैं! कितना माधुर्य है!! आदि वाक्य उनकी प्रभाववादी समीक्षा के ही रूप को व्यक्त करते हैं। इस

प्रकार शर्मा जी ने अपनी तुलनात्मक आलोचना के क्रोड मे हिन्दी समीक्षा-सिद्धान्त के न जाने कितने रूपो को पल्लवित किया। इस दृष्टि से आधुनिक हिन्दी समीक्षा शर्मा जी की पर्याप्त है। इस दिशा मे उनकी यह उपलब्धि श्लाघ्य एव शसनीय है।

तुलनात्मक आलोचना के सामान्यत· तीन रूप मिलते हैं ·

(१) किसी ग्रंथ की टीका अथवा व्याख्या करते समय अन्य कवियो के समान भाव वाले छदो का उपयोग।

(२) किसी कवि की सागोपाङ समीक्षा करते समय किन्हीं-किन्ही प्रसगो मे अन्य कवियो के छदो से तुलना।

(३) दो कवियो की अनेक प्रसगो मे विशद व्याख्या और विवेचना।

प० कृष्ण विहारी जी मिश्र की तुलनात्मक समीक्षा तीसरे रूप के अन्तर्गत आती है। मिश्र जी से पूर्व शर्मा जी ने इस रूप के सूत्रपात करने मे किसी भी प्रकार का योग नही दिया। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक देव और विहारी सजीवनी भाष्य-कार द्वारा मिश्रबन्धुओ पर लगाए गए आरोपो का जवाब देने के लिए लिखी थी। देव और बिहारी के अन्तर्गत मिश्र जी ने वडे संयम एवं गम्भीरता के साथ शर्मा जी के विचारो का खडन किया है और देव और विहारी विषयक अपनी धाराओ का अच्छे शब्दो मे स्पष्टीकरण किया है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रतिष्ठित आलोचको ने भी प० कृष्ण विहारी मिश्र की इस सयमित आलोचना की पूर्ण श्लाघा की है, और मिश्रबन्धुओ की अपेक्षा इन्हे आलोचना का सच्चा अधिकारी माना है[६]। मिश्र जी की तुलनात्मक आलोचना ने समीक्षा के गर्हित एव अभद्र स्वरूप को उभारने का प्राय. कोई प्रयास नही किया। इस दृष्टि से मिश्र जी की आलोचना के दो रूप अत्यन्त स्पष्ट हैं

(१) आलोचना का अनाविल एव निष्पक्ष स्वरूप।

(२) विवेचना शक्ति और कवि सुलभ सहृदयता का समन्वय।

मिश्र जी ने देव और विहारी के विवादास्पद स्थलो का निर्णय अपनी मान्य एव तर्क सगत कसौटी के आधार पर किया है। उनकी आलोचना व्यग और उपहास की प्रवृत्ति से वहुत कुछ वची है। उन्होने वडे निष्पक्ष भाव से विहारी और देव के काव्यगुणो के सौदर्य और काव्यगरिमा का विश्लेषण किया है। उनकी आलोचना के सतुलित रूप का एक नमूना लीजिए।

आकार एव प्रकार मे देव की कविता विहारी के काव्य से अत्यधिक है, परन्तु लोकप्रियता मे विहारीलाल देव जी से कही अधिक यशस्वी हैं। सस्कृत एव भाषा के

अन्य कवियो के भावो को दोनो ही कवियों ने अपनाया है। पर यह वृत्ति देव को अपेक्षा बिहारीलाल मे कदाचित अधिक है। दोनों ही कवियो का काव्य मधुर ब्रज भाषा में निबद्ध है[७]। अब मिश्र जी की सूक्ष्म विश्लेषणात्मक शक्ति और उनकी सरस हृदयग्राहिता का नमूना लीजिए।

'चतुर माली जितनी सफाई से एक छोटे चमन को सजा सकता है उतनी सफाई से समग्र बाटिका को सजाने मे बडे परिश्रम की आवश्यकता है। छोटे चित्र को रगते समय यदि दो चार कूचियाँ भी चल गईं तो, चित्र चमचमा उठता है, परन्तु बडे चित्र को उसी प्रकार रगना विशेष परिश्रम चाहता है।'

'देव बिहारी' के पश्चात लाला भगवानदीन ने मिश्रबन्धुओ के देव विषयक अनुचित पक्षपात और प० कृष्ण बिहारी मिश्र द्वारा देव और बिहारी विषयक उठाए गए विवाद का उत्तर देने के लिये 'बिहारी और देव' नामक एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। इसमे सदेह नही कि लाला जी की वस्तुनिष्ठ प्रतिभा ने देव की भाषा विषयक विकृतियो की पकड मे अपूर्व एव अद्वितीय सफलता प्राप्त की। लेकिन देव की सूक्ष्म कलात्मक अनुभूतियो एव उनकी सरसता के वे अधिक प्रशंसक नही रहे। मिश्रबन्धुओ और प० कृष्ण बिहारी मिश्र की आलोचना करते समय लाला जी मे सतुलित दृष्टि का प्राय. अभाव मिलता है। लाला जी की आलोचना का एक नमूना लीजिए :

'यहाँ चोषी जाति का अर्थ टिप्पणी में लिखा है तेज गाय, उचकने वाली, नही-नही महाराज यह अर्थ तो नही है। ठीक अर्थ चोषी जाती है। बछडे से दूध पिलाये लेती है······सुरति गोपन्न को कार्रवाई है। प्रसग स्पष्ट कह रहा है, पर मिश्र जी अपनी धुन मे मस्त हैं।[८]

देव और बिहारी विषयक दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि शुद्ध पाठ और अर्थ विषयक भ्रांतियो के निराकरण से सम्बन्धित है, यद्यपि इस युग का सम्पावना वैज्ञानिक पाठ शोधन की दृष्टि से अत्यधिक सतोषजनक है, लेकिन अपनी साहित्यक शोधन परिधि एवं इयत्ता के अन्तर्गत उनकी महत्ता आज भी अक्षुण्ण है। आज भी वैज्ञानिक पाठ शोधन प्रणाली के समर्थक साहित्यक सम्पादन की उपेक्षा करके अपने पाठ को सर्व प्रकरण सुग्राह्य और वैज्ञानिक रूप नही दे पाते। वस्तुत देव और बिहारी के इस झगडे ने न।नावधि शुद्ध पाठो और आर्य समस्या मूलक गुत्थियों को सुलझाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है, अब उन विवादास्पद स्थलो पर विचार किया जायगा जिनकी चर्चा उस युग की एक मनोरजक घटना थी। अब बिहारी सतसई के कुछ भ्रष्ट पाठो का अंश लीजिए :

(क) बिहारी बिहार और प्रभुदयाल पांडे की सतसई का एक पाठ देखे :
'डक कुडगत सी ह्वै चली दुकचित चली निहारि'

मिश्र बन्धुओ ने यही पाठ उत्तम माना और अर्थ भी। इसी के आधार पर किया किन्तु इस पाठ के विरुद्ध लाला भगवानदीन जी ने एक उत्तम और अर्थ संगत पाठ स्वीकार किया। उनका पाठ यो है :

(ख) 'डेगकु डगति सी चलि उठकि चितई चली निहारि' उन्होंने 'डेगकु' के उचित अर्थ पर विचार करते हुए लिखा कि यहा 'एक डग' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार मिश्र बंधुओ ने हिन्दी नवरत्न मे कुकत शब्द की विकृति के संबन्ध मे अपने विचार प्रगट किए। लाला जी ने इस पाठ की शुद्धता के सबन्ध में सन्देह व्यक्त किया और सही और दुरुस्त पाठ इस प्रकार किया 'नतरकु कत इन बिय लगत उपजत बिरह कृसानु' मिश्रबन्धु महोदयो ने 'नतरुक' शब्द को ठीक नही माना। उनके कथनानुसार 'नतरु' शब्द होना चाहिये। इसमे 'कु' प्रत्यय व्यर्थ है। वस्तुतः मिश्र बन्धुओ की यह जाँच ठीक प्रतीत होती है।

'खुदी' शब्द को मिश्रबन्धुओ मे एक देशीय एव असाधारण माना जाता है, किन्तु लाला जी ने असाधारण एव मरोडा हुआ नही माना[९]। 'लाया' शब्द लगनि अर्थ मे सदा अशुद्ध है। लाला जी ने ऊलि को अशुद्ध बतलाया और शुद्ध पाठ भूलि माना है, जिसका अर्थ भूलना होता है। उसे मिश्रबन्धुओ ने स्वीकार नही किया। मिश्रबन्धुओ ने लाला जी की प्रसिद्ध पुस्तक 'बिहारी बोधिनी' के कुछ शब्दो के पाठ और अर्थ के सम्बन्ध मे आपत्ति प्रकट की है। बिहारी बोधिनी के दोहा सख्या ३१ मे प्रयुक्त 'जोर' पाठ को मिश्र बन्धुओ ने अशुद्ध माना है। उनके अनुसार जोर (जुल्म) शब्द चाहिए। मिश्र बन्धुओ की यह पकड उचित प्रतीत होती है। क्योकि नीचे की पक्ति मे 'और' के तुक मे जोर अशुद्ध है। इसी प्रकार लाला जी के 'दौरि' अर्थ पर मिश्रबन्धुओ ने आपत्ति प्रगट की है। उनके अनुसार 'दौरि' दौडने के ही अर्थ मे है। उडने के लिए नही[१०]। लाला जी ने प्रभुदयाल पाडे के 'तैन' पाठ को अशुद्ध माना है और उसके स्थान पर 'एन' पाठ शुद्ध बतलाया है। इसी प्रकार मिश्र बन्धुओ के जेठे भाई प० गणेश बिहारी मिश्र ने बहुत पहले देव के तीन ग्रथो का सम्पादन 'देव ग्रंथावली' नाम से किया था। इसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया था। इसमे पं० गणेश बिहारी मिश्र की गलत एवं भ्रांत टिप्पणियो की छानबीन लाला जी ने पर्याप्त क्रम के साथ की है। इसकी कुछ चर्चा की जा रही है। प्रेम चंद्रिका[११] पर उद्धृत 'चख के चखक भरि चाखत ही जांहि' छन्द के 'चखक' का अर्थ मिश्र जी ने 'गजक' लिखा है। इसके शुद्ध अर्थ चषक (प्यासा) के

सम्बन्ध मे लाला जी ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। कही-कही मिश्र जी ने पाठ ही बदल दिया यथा, जबूरस बुदजमुना जल तरग मे' की जगह 'जबू नद बुद जमुना तरग मे' पाठ कर दिया 'जबूरस'[१२] का अर्थ सोना लिखा। सस्कृत मे सोना अर्थ अवश्य है। लेकिन प्रसगानुसार यह अर्थ औचित्यपूर्ण नही है। आश्चर्य है कि लाला जी ने भी जबूरस' जामुन का रस के माना। यहाँ जबूरस जामुन का रस ही उचित है[१३]। यत्र-तत्र लाला जी की अर्थ विषयक सूचनाएँ बडे महत्व की हैं। एक स्थल पर उन्होने मिश्र बन्धुओ के 'सौरई' और रौरई की च र्ा करते हुए लिखा है कि 'सौरई' का अर्थ स्मरण और रौरई का बेचैन और रोमाच कथमपि नही होता। उनके अनुसार सौरई 'श्यामला' अर्थ मे रौरई 'रौरियाने' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। 'रौरियाना' 'भिखमंगे' के हट अर्थ मे आज भी बोला जाता है।[१४] आधुनिक एवं प्राचीन हिन्दी कोशो मे रौरई शब्द नही मिलता। लाला जी की ऐसी खोज सराहनीय है। कही-कही पर पाठो के कारण सारा अर्थ सौष्ठव लुप्त हो जाता है। और विकृत पाठो का यह दोष कवि की प्रतिभा के सिर पर मढ दिया जाता है। मिश्रबधुओ ने देव के एक उत्तम छन्द मे पाठ दोष का ध्यान न देने का कारण दु. प्रबन्ध दूषण बतलाया है। लाला जी ने इस दोष का निराकरण करते हुए एक प्राचीन पाठ की समीचीनता पर पूर्णरूपेण विचार किया है। मिश्रबन्धुओ और लाला जी के पाठो की बानगी दी जा रही है ·

मिश्र बन्धुओ का पाठ (क) बडे बडे नैननि ते आँसू भरि भरि ढरि,
गोरो गोरो मुख आज ओरो सो बिलात जाता[१५]

लाला जी का पाठ (ख) बडी बडी आँखिन ते आँसू बडे ढरि ढरि
गोरे गोरे मुख परि ओरै बिलात जात[१६]

अब 'डाढी' शब्द लीजिये, इस शब्द का अर्थ मिश्रबन्धु महोदय दो रहा आग बतलाते, है लेकिन 'सिलाकारी जी' ने लाला जी के आधार पर उसे जली हुई अर्थ मे ग्रहण किया है[१७]। वास्तव मे जली हुई अर्थ मे सूर और तुलसी आदि कवियो ने भी इसे प्रयुक्त किया है। अत यही अर्थ उत्तम है।

इस विवाद ने कई शब्दो की निरुक्ति एव उनके भिन्न-भिन्न प्रयोगो के औचित्य पर विचार करने की भी प्रेरणा दी। बहुत से लुप्त हो जाने वाले शब्दो की नये सिरे से छानबीन की गई। अत· निरुक्ति विषयक उपलब्धि उस युग की एक अति महत्वपूर्ण देन है। मध्ययुगीन काव्य के ये मनस्वी बहुत कुछ कोशकारो के भी दायित्व एवं अध्यवसाय को समेटे हुए अपनी साधना मे सतत प्रयत्नशील रहे। अब

देव के कुछ ऐसे शब्दो की सूची दी जा रही है जिसे लाला जी ने देव के विकृत शब्दो की चर्चा करते हुए बहुत पहले पेश की थी।

टिकसरो	टेक, आश्रय
दख	दर्प
दुभीख	दुर्भिक्ष
मगछी	मगाक्षी
भभीख	भविष्य
ज्वारी	ज्वानी
कौल	कमल
उदेत	उदोत[१८]

'गौहरे' शब्द की चर्चा सबसे पहले लोकनाथ द्विवेदी ने की[१९]। गौहरे यथार्थ मे वृजभाषा का ठेठ शब्द है। अब भी गोशाला अर्थ मे बोला जाता है। 'पनिहा' शब्द का प्रयोग बिहारी सतसई के अलावा हरीराम व्यास की रचनाओ में भी मिलता है। मिश्रबन्धुओ ने इसे बुदेल खडी शब्द बतलाया है[२०] लेकिन सिलाकारी जी ने इसे सस्कृत 'प्रणिधा' का अपभ्रंश माना है[२१] जो औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है इसका 'अर्थ' गुप्तचर बतलाया गया है। 'सक्षिप्त शब्द सागर' मे पनहा शब्द मिला है। इसे कोशकार महोदय सस्कृत 'पण' का विकृत रूप बतलाते हैं और अर्थ चोरी का पता लगाने वाला दिया है। इसी प्रकार कई शब्दो की निरुक्ति विषयक वास्तविक सूचनाएँ आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्रबन्धुओ की भ्रातियो का निराकरण करने के सिलसिले मे दी थी[२२] यथा समरन स० स्मर,सक्राति स० सक्रमण (अपभ्रंश सक्रोन), सोन जाई स० स्वर्ण जाति अथवा स्वर्णयूथिका, संस्कृत मे वारि और 'वार' दोनो हैं। 'वार्द' का अर्थ भी बादल होता है।[२३] लाला भगवानदीन ने 'ग्राथ' की उत्पत्ति पर विचार करते हुए लिखा है कि यह शब्द राजपूताने मे बोला जाता है। इसका अर्थ अकवार (स० एक माल) है। सक्षिप्त शब्द सागर मे इसका अर्थ तो दिया गया है।[२४] लेकिन उत्पत्ति की जगह केवल सदेहात्मक चिह्न लगाकर छोड दिया गया है। 'तेळ्यो' स० 'तुष्ट' का विकृत रूप है। और वोद शब्द की चर्चा करते हुए लाला जी लिखते हैं यह 'विद' धातु से बना है।[२५] और अब तक राजपूताना मे बोला जाता है। उलाहित[२६] शीघ्रता के अर्थ मे अब भी बुदेलखड मे बोला जाता है। 'चुटकि' शब्द से परिचित रहने के कारण पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने इसकी बडी दुर्दशा की है।[२७] सूर काव्य के एक मान्य विद्वान ने भी 'चुटकि' की बडी भ्रामक टिप्पणी जडी है[२८] वास्तव मे यह हिन्दी का शब्द है। और कोडा मारने के अर्थ मे

अब भी इस्तेमाल होता है। 'लोमन' 'लोचन' के अलावा स० लावण्य के अर्थ मे देव और बिहारी दोनो की रचनाओ मे मिला है। आघु स० 'अर्घ' का रूप है। और महार्घ का महगा विकृत रूप आज भी बोला जाता है।[२९]

देव और बिहारी की भाषा विषयक दो विरोधी धारणाएँ हैं। (१) आचार्य पं० राम प्रसाद शुक्ल और लाला भगवानदीन की (२) मिश्र बन्धु और पडित कृष्ण बिहारी मिश्र की।

आचार्य शुक्ल और लाला जी ने बिहारी की भाषा देव की तुलना मे अधिक आदर्श और व्याकरण सम्मत माना है। और इधर मिश्रबन्धुओ और प० कृष्ण बिहारी मिश्र ने देव की भाषा के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि भाषा साहित्य मे देव और मतिराम इन दो कवियो की भाषा सर्वोत्कृष्ट है।[३०] इसमे सदेह नही की भाषा विकृति देव और बिहारी दोनो की रचनाओ मे मिलती है। लेकिन नाद सौन्दर्य अनुप्रास और यमक प्रियता के कारण देव को बिहारी की तुलना मे भाषा के प्रसाद गुण को प्राय खो देना पडा है। भूषण और देव को शुक्ल जी ने भाषा को तोडने मरोडने के सम्बन्ध मे दोषी ठहराया है। यह कथन जितना सत्य है उतना यह भी सत्य है कि भाषागत मादक संगीत की जैसी अटूट धारा हमे देव मे मिलती है वह बिहारी मे सम्भव नही। देव और बिहारी के अन्यान्य गुणो के विवाद के साथ ही उनकी भाषागत विकृति और व्याकरणीय अपरूप के विवेचन मे कम छान-बीन नही हुई। लाला जी तो देव की भाषा के पीछे हाथ धोकर पडे रहे। उनकी भाषा-विकृति विषयक पकड अचूक है। उन्होंने देव की भाषा को व्याकरण के प्रत्येक अग की दृष्टि से कसने का प्रयास किया है। इधर डा० नगेन्द्र ने और विस्तार पूर्वक देव की भाषा की सुन्दर विवेचना की है। देव की भाषा विषयक जाच कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। क्या क्रियावाद, क्या वाच्य, क्या लिंग, क्या वचन क्या सभी दृष्टियो से उनकी भाषा का विश्लेषण किया जाता है। बिहारी की भाषा का विवेचन भी प्राय इसी भाँति हुआ है। पहले मिश्रबन्धुओ द्वारा लगाए गए बिहारी के भाषा विषयक आक्षेपो पर विचार करना आवश्यक है

१—सज्ञा रूप · मिश्रबन्धुओ के अनुसार बिहारी ने केला को ते केलि कर दिया जो कि सर्वदा विकृत प्रयोग है। इसे लाला जी ने भी कियदश मे स्वीकार किया है। इसी प्रकार पाव के लिए पानु भी उत्तम शब्द नही है। बिहारी के दूसरे आलोचको ने भी बिहारी के भाषा स्वरूप का सम्यक विचार किया है। आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'बिहारी की वाग्विभूति, एवं बिहारी नामक ग्रथ मे उनकी भाषा पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।

२—क्रियापद बिहारी ने यत्र-तत्र 'कीन दीन' जैसी अवधी क्रियाओ का भी प्रयोग किया है जो आदर्श भाषा के लिए अनपुयुक्त है। 'देखि' कुछ बुन्देल खण्डी भविष्यत् क्रियाओ का प्रयोग भी चिन्त्य है। माननीय डा० श्यामसुन्दर दास ने भी इसे उत्तम नही माना है। अब देव की भाषा विषयक विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

१—क्रिया रूप देव ने क्रियाओ का प्राय मनमाना प्रयोग किया है। देव के तुकाग्रह और अनुप्रास प्रियता ने क्रियाओ के आदर्श रूप के संवारने मे किसी प्रकार का योग नही दिया। लाला भगवानदीन ने उनकी क्रियाओ के मनमाने प्रयोग की बडी कडी आलोचना की है।

लाला जी के अनुसार देव ने पोषण करने के लिए पुरवोत क्रिया का प्रयोग किया है। इसके उत्तर मे प० कृष्णबिहारी मिश्र ने केशव को प्रस्तुत किया है। मिश्र जी के अनुसार केशव ने शोभा पाने के लिये 'शोभजति' क्रिया का प्रयोग किया है। यही नही चित्र खीचने के लिए चित्र का प्रयोग किया है।[३१] इसी भाति क्रियाओ के लिंग के सम्बन्ध मे भी पर्याप्त गडबडी हुई है। यथा 'खेंचि खरी दई दौरि सखी के उरोजन बीच सरोज फिराय कै'[३२] इसमे लाला जी ने 'दई' क्रिया समर्थक मानी है। लेकिन कर्म के लुप्त होने के कारण यह अच्छा प्रसंग नही कहा जा सकता। 'देव केलिकानन मे कहकहा कोकिल की' मे लाला जी ने कहकहा[३३] को पुलिंग माना है। लेकिन देव के अनुमार यह स्त्रीलिंग है। क्योकि षष्टी विभक्ति स्त्रीलिंग सूचक है। ऐसा अनुमान है कि कहकहा 'कोकली' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। लाला जी ने देव की लहरिया, पहरिया, और छहरिया आदि क्रियाओ का विकृत रूप माना है। प० कृष्णबिहारी मिश्र ने इसे उत्तम मानते हुए इसकी अच्छी वकालत की है और सूर के पदो में भी ऐसे प्रयोगों का सकेत किया है। 'बिज्जु छटा छराय[३४] उठ्यो' को लाला जी ने व्याकरण से गलत माना है। लाला जी का यह कथन सर्वथा सत्य है, क्योकि बिज्जु कर्ता स्त्रीलिंग मे है अत यहाँ छहराय उठी क्रिया होनी चाहिए। वास्तव मे क्रियाओ के प्रयोग मे देव ने यत्र-तत्र बडी अनियमितता का व्यवहार किया है। उन्होंने भविष्यत् काल की क्रियाओ के लिए बितै होगी जैसे प्रयोग कितै ह्वो के अनुप्रास के लिए कर डाला, इसी प्रकार एक स्थल पर मिश्र बन्धुओ ने बिहारी के 'मरिबोभयो प्रसीस' मे मरिबो क्रिया के रूप मे माना है[३५] किन्तु पं० पद्मसिंह शर्मा ने इसका अर्थ मरना आर्शीवाद के समान माना है। मिश्रबन्धुओ ने बिहारी की क्रिया 'खटकति' को सदोष माना है। उनके अनुसार यह बहुवचन मे होनी चाहिये। इसके प्रतिवाद मे आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'खटकति' दोनो लिंगो मे बहुवचन मानी गई है।[३६]

वाक्य विषयक गडबडी : देव की भाषा मे वाक्य से सम्बन्धित बडी भूले हुई हैं। लेकिन यत्र-तत्र भूलो की बलात् उद्भावना भी की गई है। देव की इस पक्ति मे 'काके कहे लूटत सुने हो दधि दान' मे कर्मवाच्य की क्रिया का ध्यान न देने के कारण वाक्य अजीब सा मालूम होता है। डा० नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि इसका खीचतान कर अन्वय होगा 'काके कहे दधि दान लूटत' 'मैं सुने हो'[३७] लेकिन इसका अन्वय इस प्रकार यदि हो (काके कहे दधि दान मे लूटत सुने हो) किसके कहने से दान (टैक्स) के रूप मे दधि लूटते हुए सुने गये हो तो अधिक उत्तम होगा और ऐसे वाक्य पदो के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की शिकायत की गुन्जाइश नही होगी।

विशेषणो का भद्दा प्रयोग देव की रचनाओ मे लाल जी ने कुछ भद्दे विशेषणो के प्रयोग की भी चर्चा की है, यथा 'धीमो तेज' के स्थान पर भीनो तेज मिलता है।[३८] देव मे विशेषणो के प्रयोग कही-कही क्रिया का भी भ्रम पैदा कर देते हैं इसी लिए हिन्दी के मान्य आलोचक डा० नगेन्द्र को भी देव की इस पक्ति मे वचन विषयक भूले मालूम हुई है। 'पायन को चित चायन को वल लीलत लोग अथाय नि वैठ्यो'[३९] शब्द विचारणीय है। यहाँ इसका अर्थ यो होगा अथायनि (वैठको) मे बैठे हुए लोग लीलत 'वर्तमान काल की क्रिया के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। डा० नगेन्द्र ने 'वैठ्यो' शब्द क्रिया माना है। इसी से वचन विषयक दोष स्पष्ट लक्षित होता है।

मुहावरे भाषा की जान माने गए हैं। देव और बिहारी की भाषा मे मुहावरो की अच्छी छानबीन की गई है। बिहारी के मुहावरो की प्रशसा उनके आलोचको ने हृदय से की है। इधर देव की भाषा विषयक भूलो की चर्चा करते हुए लाला भगवानदीन ने उनके बद मुहावरो की भी चर्चा की है उनके अनुसार देव ने मुहावरो की मिट्टी पलीद की है। इसमे सन्देह नही कि देव ने मुहावरो का उत्तम प्रयोग नही किया। लेकिन लाला जी ने देव के जिस छन्द में मुहावरे के सदोष प्रयोग की बात चलाई है वह फिर भी विचारणीय है। छन्द यो है .

'लाजनि हौं लरजौं' गहिरी वरजौं,
गहिरी कहिरी केहि दायन।[४०]

लाला जी के अनुसार इसमें दो मुहावरे हैं! गहिरी लरजन और गहिरी बरजन। अतः बहुत काँपना और बहुत वरजना के अर्थ मे ये बद मुहावरे हैं, किन्तु प्रतीत यह होता है कि उसमे एक ही मुहावरा है, वह है गहिरी लरजन और दूसरे 'गहिरी' को पूर्व कालिक क्रिया मानना अच्छा होगा। यहाँ विशेषण नही होगा, जैसा

लाल जी ने माना है। पूरे वाक्य का अर्थ यों होगा (अरी बतला, किस ढङ्ग से उन्हे (नायक को), पकड कर मना करू, क्योकि मैं लज्जा से अत्यन्त काँप रही हूँ।

यद्यपि देव और विहारी को लेकर काफी मोर्चेबन्दी हुई, लेकिन उनकी कलात्मक और भावात्मक अनुभूतियो की गहरी पैठ की क्षमता रखने वाले इन आलोचको की सराहना आज भी होती है। एक युग था जब, लाला भगवानदीन बिहारी की कलात्मक विधा की जी खोलकर तारीफ करते थे और बहुविध कलात्मक सौष्ठव को उद्‌घाटित करने वाले अवयवो का सुन्दर परिचय रसिक समाज को देते थे। लाला जी और उनकी सजग शिष्य मडली रीति काव्य की ऐसी पारखी थी कि भाव एवं कला दोनो दृष्टियो से चट निरूपित कर लेती थी कि कहा कितना और किस प्रकार का दोष है। यथा, लालाजी की रुग्णावस्था मे देव के एक प्रसिद्ध सवैये को लेकर काव्य चर्चा हो रही थी। लाला जी इसके भाव सौन्दर्य पर जितने लट्टू हो रहे थे उतने ही अन्तिम पंक्ति के पतर प्रेकर्षपे पर नाराज, वह सवैया यो हैं .

'माखन सो मन दूध सो जोबन है दधि तौ अधिकै उर ईठी।
जा छबिआ मे छपाकर छाछ समेत सुधाव सुधा सब सीठी।
नैनन नेह चुनौ कवि देव बुझावत बैन वियोग अगीठी।
ऐसी अनोखी अहीरि अहै कहौ क्यो न लगै मनमोहन मीठी।'

इसकी बारीकियो पर ध्यान जाने पर काशी के आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने 'मनमोहन' शब्द को अनावश्यक बताया और प्रसंग के सर्वथा विरुद्ध। उनके अनुपार सभी उपमान गोरस से सम्बद्ध हैं अत. 'क्यो न लगै या गुपालहि मीठी' कह देने से पता प्रकर्ष कोष का परिहार हो जाता है।[४१] यह वही सवैया है, जिसे पढ़ते पढते प० कृष्ण बिहारी मिश्र तन्मय हो जाते थे और जिसके भाव और कलागत सूक्ष्म सौन्दर्य के निरूपण में उन्होंने काफी निष्ठा व्यक्त की है। उक्त सवैया की मिश्र जी ने जो विशेषता 'देव और बिहारी'[४२] मे बतलायी है वह इस प्रकार है।

(क) गौणी सारोपा लक्षण

(ख) व्यंजक पात्र

(ग) शृंगाररस (प्रकाश शृगार)

(घ) विभास हाव

(ङ) जाति दृष्टि से चित्रिणी नायिका

(च) समेत सुधा बसुधा सब सीठी मे उपादान लक्षण।

(छ) माधुर्य, समाधि और अव्यक्त गुण प्रधान है।

(ज) वृति कौशिकी है।

(झ) वृत्यानुप्रास, काव्यलिंग, प्रतीप, व्यतिरेक, एक देशीय लुप्तोपमा।

इस छन्द मे कला एव भाव दोनो तत्व आ गए हैं। इसी प्रकार मिश्रबन्धुओं ने बिहारी की कला एव भावानुभूति की बडी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। मिश्र बन्धु विनोद प्रथम भाग की भूमिका मे उद्धृत बिहारी के एक दोहे की विशद व्याख्या का संक्षिप्त नमूना दिया जा रहा है। जिस छन्द की व्याख्या की गई है वह इस प्रकार है।

अरी खरी सटपट परी विधु आगे मग हेरि,
संग लगे मधुपन लई, भागन गली अधेरि।

(क) परकीया कृष्णाभिसारिका।
(ख) सटपट मे वृत्यानुप्रास।
(ग) सन्धि, पूर्वालकार, व्याघात, तृतीय विभावना और अवज्ञा।
(घ) भौरो के साथ होने से पद्मिनी नायिका है।
(ङ) ओज, काति, अर्थव्यक्त गुण।
(च) वाचक चमत्कार होते हुए भी व्यग्य।
(छ) आरमरी वृत्ति।
(ज) भ्रमर और अधकार उद्दीपन।

चमत्कार के साथ ही साथ कृष्णबिहारी मिश्र ने देव की गम्भीर भाव व्यजना की श्लाघा अधिक की है। भाव सौन्दय के ही कारण केशव की तुलना मे मिश्र जी ने देव के इस छन्द को अत्युत्तम माना है:

[४४]देवजुआजु मिलाप की औधि, सुबीतत देखि विसेखि विसूरी
हाथ उठायो उड यवे को उडि काग गरे परी पारिक पूरी।

बहुत समय की बात है जब माधुरी के किसी अक में प० कृष्णबिहारी मिश्र ने देव के प्रसिद्ध छन्द राजपौरिया को रूप राधे को बनाम लार्ड के एक-एक शब्द की पच्चीकारी और भाव व्यजना के विश्लेषण के निमित्त कई पृष्ठो का उपयोग किया था। कहने का तात्पर्य यह है कि बिहारी और देव के सम्बन्ध में लाख तू तू मैं-मैं होने के बावजूद भी इन कलाकारो के छन्द गत वर्णन मे भी, शब्द मे भी एव भाव सौन्दर्य नीति से युक्त गुणो की मजूषा खोलनी ही पडती थी।

संदर्भ संकेत

(१) द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, भूमिका, भाग पृ० २० प्र० सं० सन् १८८९।

(२) A sketch of Hindi literature—Page 68-69 । (३) देव और बिहारी, भूमिका, भाग पंचम सस्करण । (४) हिन्दी आलोचना : उद्भव और समीक्षा, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० २३७ । (५) विहारी सतसई, पं० पद्मसिंह शर्मा पृ० १० । (६) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५३१ । (७) देव और विहारी, प० कृष्ण विहारी मिश्र । (८) विहारी और देव, लाला भगवानदीन, पृ० ५४ । (९) विहारी और देव लाला जी, पृ० १२ । (१०) विहारी बोधिनी, लाला भगवानदीन, दो० सं० ७५ । (११) वि० और दे०, लाला जी, पृ० १६ । (१२) जवूनद सोने के अर्थ मे आप्टे कोश पृ० २२० । (१३) वि० और देव, लाला पृ० ५३ । (१४) वही पृ० ५४ । (१५) मिश्र बधु विनोद, प्र० भाग, पृ० ३२ । (१६) वि० और देव, ला० पृ० ६० । (१७) विहारी दर्शन, लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी पृ० ७७ । (१८) वि० और देव पृ० १८ । (१९) विहारी दर्शन, सिलाकारी । (२०) हिन्दी नवरत्न, मिश्र बंधु पृ०, २२८, द्वि० स० । (२१) विहारी दर्शन, सिलाकारी पृ० ८७ । (२२) सक्षिप्त शब्द सागर, पृ० ६७८ । (२३) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २५० । (२४) स० श० सा०, वि० पृ० ८०८ । (२५) वि० दे०, पृ० १४ । (२६) वही पृ० ५४ । (२७) वि० स०, प० पद्म सिंह शर्मा, पृ० २७३ । (२८) सूर सुषमा पृ० ६० । (२९) वि० दे०, ला० पृ० ८ । (३०) हि० नवरत्न, मिश्र बधु, पृ० २९२ (३१) देव और विहारी, पं० कृष्ण विहारी मिश्र, पृ० (३२) सुजान विनोद पृ० ५६ । (३३) विहारी और देव, लाला जी पृ० ४६ । (३४) वही पृ० ४६ (३५) हिन्दी नवरत्न मिश्र वन्धु पृ० ३६ । (३६) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल पृ० । (३७) रीति काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता पृ० २१८ । (३८) विहारी और देव, लाला जी पृ०, ४५ । (३९) सुखसागर तरंग, सं० बाल दत्त मिश्र प्र० सं० पृ० १२९ । (४०) विहारी और देव, लाला । जी पृ० ४८ । (४१) विहारी, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० ५४ । (४२) विस्तार के लिए देखें देव और विहारी, पृ० १५६, १५७ । (४३) और विस्तार के लिए देखिये मिश्र वन्धु विनोद, प्रथम भाग पं० संस्करण, पृ० २६ । (४४) देव और विहारी, पृ० ४१ ।

बिहारी सतसई और संस्कृत प्राकृत काव्य

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

संस्कृत के अच्छे-अच्छे काव्यो मे बिहारी का पूर्ण प्रवेश होना, उनके अनेक संस्कृत के कठिन ग्रन्थो के श्लोको को दोहो मे बहुत सफलतापूर्वक उद्धृत करने से प्रमाणित होता है। इन दोहो से केवल बिहारी का संस्कृत पांडित्य ही नही, प्रत्युत उनकी काव्य-प्रतिभा का वैलक्षण्य तथा उत्कर्ष भी लक्षित होता है। जिन भावो को उन्होंने लिखा है, उनको वैसा ही नही रहने दिया है, प्रत्युत उनमे कुछ न कुछ विशेष रंग-ढंग तथा काव्य-चमत्कार से नया प्राण फूंक दिया है। इस बात के कतिपय उदाहरण लिखे जाते हैं

बिहारी के पहले तथा २३८ वे[1] दोहो से प्रतीत होता है, कि उनके हृदय मे, उनके बनाते समय माघ के :

> प्रफुल्लतापिच्छ निभैरभीषुभि. शुभैश्च सप्तच्छद पांशुपाडुभि ।
> परस्परेणच्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभूवतु ।।

इस श्लोक का भाव घूम रहा था, जिसको उन्होंने, अपनी प्रतिभा से एक नया रंग देकर, उक्त दोहो मे सुसज्जित कर दिया। इतना ही नही, प्रत्युत श्लोक की उक्ति को एक नए तथा परम चमत्कृत भाव से विभूषित कर दिया। माघ ने श्री कृष्णचन्द्र जी तथा श्री नारद जी के श्याम तथा गौर वर्णों की आभाओ को, एक का दूसरे पर, चढने के कारण दोनो के शरीरो का एक रंग, अर्थात् हरित, हो जाना मात्र कहा है, पर दोनो के एक वर्ण हो जाने से कोई विशेष ध्वनि उक्त श्लोक से नही निकलती। बिहारी ने भी प्रथम दोहे मे श्री राधिका जी की पीत आभा से श्री कृष्ण चन्द्र जी का हरित हो जाना कहा। पर दोहे में हरित शब्द ने, एक नया प्राण पिरो कर उसके भाव को श्लोक के भाव से कही अधिक चमत्कृत कर दिया है। 'हरित' शब्द से जो हरे भरे, अर्थात् प्रसन्न, हो जाने का व्यंग्यार्थ दोहे मे झलकता है, वह बिहारी को निज प्रतिभा का प्रतिबिम्ब है। इसके अतिरिक्त, 'हरित' शब्द से जो हृत अर्थ ने भी दोहे के चमत्कार को चौगुना कर दिया। इसी प्रकार २३८ वे[2] दोहे मे श्री कृष्णचन्द्र तथा श्री राधिका जी के, परस्पर आभा से, एक वर्ण हो

जाने के वर्णन के साथ उनके एकत्र रहने तथा एक वय एवं एक मन के कथन ने दोहे के भाव को बहुत अधिक उच्च कर दिया है ।

श्री गोवर्धनाचार्य जी की 'आर्या सप्तशती' की कई एक आर्याओ के भी भाव बिहारी के दोहो मे दिखाई देते हैं । उन भावो में भी बिहारी ने अपनी प्रतिभा का चटकीला रग चढा दिया है । उदाहरणार्थ दो दो आर्याओ तथा दोहो के भावो का कथन नीचे किया जाता है ।

> स्वारथु, सुकृतु न श्रमु वृथा, देखि, विहग, विचारि ।
> बाज, पराऐ पानि परि, तू पच्छीनु न मारि ।।

इस दोहे मे :

> आयासः परहिंसा वैतसिकसारमेय तव सार. ।
> त्वामपसार्य विभाज्य· कुरग एषोऽधुनैवान्यै ।।

इस आर्या का भाव दिखाई दे रहा है, पर 'कुते' के स्थान पर विहंग कहकर बिहारी ने अपने दोहे का चमत्कार बढा दिया है, क्योकि यद्यपि 'सारमेय' शब्द भी साभिप्राय है, और कुते की कुलीनता व्यजित करता है, तथापि उसकी गति तथा पहुँच परिमित भू मंडल ही तक है, और विहग (विहायसा गच्छतीति विहंग :) की स्वच्छद गति अपरिमित आकाश तक है, एव विहंग की दृष्टि भी बडी दूरदर्शिनी होती है । इस दूरदर्शिता के साथ 'देखि' शब्द का प्रयोग बडा ही समुचित हुआ है । इन बातो के अतिरिक्त पराए तथा पच्छी (पक्षी) शब्दो ने दोहे के भाव को बहुत ही उत्कृष्ट कर दिया है ।

> मोर चन्द्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमानु ।
> लखिबी पाइनु पर लुठति, सुनियतु राधा मानु ।।

इस दोहे मे श्री गोवर्धनाचार्य जी की :

> मधुमथनमौलिम्भाले सखि तुलयसि तुलसि किमुध राधाम् ।
> यत्तव पदमदसीय सुरभयितु सौग्भोद्‌भेद ।।[४]
> शंकरशिरसि निवेशितपदेति मा गर्वमुद्वहेन्दुकले ।
> फलमेतस्य भविष्यति तव चण्डीचरणरेणुमृजा ।।[५]

इन दोनो आर्याओ के भाव बिहारी ने आकर्षित कर लिए हैं, पर सिर चढि तथा पाइन पर लुठति 'लोकोक्तियो ने दोहे मे जो चमत्कार उत्पन्न कर दिया है, वह आर्याओ से बिहारी के बाटे की बात है ।

'ग्रमरूकशतक' के भी कई एक पद्यो का भाव विहारी ने बडी सफलता से ग्रहण किया है। उनमे से निदर्शनार्थ एक दोहा लिखा जाता है ·

मैं मिसहा सोयौ समुझि, मुहुँ चूम्यौ ढिग जाइ।
हंस्यौ, खिसानी, गलु गह्यौ, रही गरैं लपटाई ।।

बिहारी ने इस दोहे मे 'ग्रमरूकशतक' के ·

शून्यं वासगृह दिलोक्य शयनादुत्थाय किंचिच्छनै,
निद्राव्याजमपागतस्य सुचिर निर्वर्ण्यपत्युर्मुख ।
विस्त्रब्ध परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थली ।
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिर चुंबिता ।।

इस श्लोक का भाव पूर्णतया झलक रहा है। इन दोनो पद्यो के भावो का एक हो जाना 'काकतालीय न्याय' किसी प्रकार भी नही कहा जा सकता। पर बिहारी ने अपने दोहे मे अभीष्ट भाव के उपयुक्त आवश्यक बाते मात्र रक्खी हैं, और श्लोक के प्रथम चरण का भाव एव अन्य कतिपय शब्द सर्वथा छोड दिए हैं, जिससे दोहे मे लाघव तथा सुघराई, श्लोक की अपेक्षा अधिक आ गई है। 'मिसहा' के शब्द ने तो दोहे मे बडा ही चमत्कार तथा जीवन का सचार कर दिया है।

विहारी का :

प्रगट भए द्विजराजकुल सुवस बसे व्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सव केसव केसवराइ ।।

यह दोहा भी जान पडता है कि श्री गोवर्धनाचार्य जी की .

यतिगणयति गुरोरनु यस्यास्ते धर्म कर्म सकुचितम् ।
कविमहमुशनसमिव तं तात नीलावरं वंदे ।।[६]

इस आर्या के अनुकरण पर बनाया गया है। उधर श्री गोवर्धनाचार्य जी ने आर्या मे अपने पिता की वन्दना की है और इधर बिहारी ने अपने पिता से क्लेश निवारण की प्रार्थना। रूपकालकार की प्रधानता दोनो ही छन्दो मे है। गोवर्धनाचार्य जी ने, अपने पिता के नाम (नीलाबर) मे अम्बर (आकाश) शब्द पाकर, उनकी तुलना शुक्र से की है, और विहारी ने अपने पिता का नाम केशव होने के कारण उनकी तुलना केशव भगवान से।

एक वात यहाँ ध्यान देने की है कि श्री गोवर्धनाचार्य जी ने अपने पिता की तुलना जो शुक्राचार्य से की है, उससे उनके पिता का एक महान् कवि होना प्रतीत होता है। पर बिहारी ने जो अपने पिता की तुलना केशव भगवान से की है, उससे उनका कोई वड़े कवि अथवा सिद्ध महात्मा होना व्यजित होता है।

संस्कृत कोष तथा साहित्य के अतिरिक्त, बिहारी के कितने ही दोहो से उनका ज्योतिष तथा वैद्यक शास्त्रो मे भी प्रवेश प्रतीत होता है। ज्योतिष के सम्बन्ध मे उनके ४२, १०५, ६६०, ७०७ अको के दोहे द्रष्टव्य हैं, और वैद्यक के सम्बन्ध मे १२०, ४७२ अंको के दोहे।

संस्कृत के यथेष्ट विषयो मे पंडित होने के अतिरिक्त बिहारी के कितने ही दोहो से प्रतीत होता है कि, वे प्राकृत तथा अपभ्रंश के व्याकरणो तथा काव्यो के भी अच्छे ज्ञाता थे। उक्त भाषाओ के व्याकरणो का ज्ञान, गैन (गगन, गअन, गयन, गैन) केस (कदब, कदम, कअम, कयम, कइम, केम) नै (नदी, नई, नइ, नै), निय (निज, निअ, निय) इत्यादि शब्दो के प्रयोग से लक्षित होता है, क्योकि ये रूप साहित्यिक ब्रजभाषा मे सामान्यत: देखने मे नही आते, पर प्राकृत तथा अपभ्रंश के व्याकरणो से सिद्ध होते हैं तथा ये अथवा इनके कोई पूर्व रूप उक्त भाषाओ मे बरते भी जाते हैं। बिहारी का प्राकृत काव्यो का ज्ञान, उनके 'गाथा सप्तशती' की जितनी ही गाथाओ के भावो को, अपनी प्रतिभा का विशेष चमत्कार देकर, दोहो मे निबद्ध करने से सिद्ध होता है। निदर्शनार्थ समान भाव के दो-दो दोहे तथा गाथाएँ यहा दी जाती है :

तीज परब सौतिनु सजे भूषन बसन शरीर।
सबै मरगजे मुह करी इही मरगजैं चीर।।

यह दोहा :

हुल्लफलरहणपसाहिआण छणवासरे सवत्तीणम्।
अज्जाएँ मज्जणाणाअरेण कहिअ व सोहग्गम्।।[७]
(उत्साहतरलत्वप्रसाधितानां क्षणवासरे सपत्नीनाम।
आर्या मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम।।)

इस गाथा को देख कर अवश्य बनाया गया, पर बिहारी ने दोहे मे 'मरगजे मुहँ करो' कह कर उसको गाथा से अत्यन्त उत्कृष्ट कर दिया है। इसके अतिरिक्त जिस सुन्दरता से अनेक अलंकार इस दोहे को चमत्कृति प्रदान कर रहे हैं, वह शोभा गाथा मे नही दिखाई देती।

बाम बाँह फरकति, मिलै जौ हरि जीवनमूरि।
तौ तोही सौं भेटिहौं राखि दाहिनी दूरि।।

इस दोहे का भाव, गाथा सप्तशती की :

फुरिए वामच्छि तुए जइएहिइ सो पिओज्जता सुइरम्।
समीलिअ दहिणअ तुइ अवि एह पलोइस्सम्।।

(स्फुरिते वामक्षि त्वयि यद्येष्यति स प्रियो द्य सत्सुचिरम् ।
समीत्य दक्षिण त्वयैवैत प्रेक्षिष्ये—)

इस गाथा से लिया हुआ ज्ञात होता है। गाथा की उक्ति मे वस्तुत बडा अनूठापन है। पर प्रियतम के आगमन के समय एक आख बन्द करके उसको देखना कुछ अस्वाभाविक तथा अनुचित सा भी अवश्य है। अत गाथा का भाव तो विहारी ने लिया, पर बाई आँख के स्थान पर बाई बाह का फडकना कहकर, और उसी को पुरस्कृत करने की प्रतिज्ञा कराकर, अपने दोहे को उक्त अस्वाभाविकता तथा अनौचित्य से बचा लिया, क्योकि यदि बाई बाँह से भेटने मे भी कुछ अनौचित्य हो तो भी, मिलनोत्सुकता मे इस बात पर ध्यान जाना कठिन है, कि नायिका ने पहले किस बाँह से भेटा।

विहारी ने ७०० दोहे बनाकर अपने ग्रन्थ का नाम सतसई रक्खा, उससे भी उनका गाथा तथा आर्या-सप्तशतियो का पढना तथा उन्ही की जोड पर अपनी सतसई बनाना, अनुमानित होता है।

विहारी के और भी अनेक दोहो के समानार्थक श्लोक इत्यादि, आर्यासप्त-शती, अमरुकशतक, गाथासप्तशती इत्यादि से उद्धृत करके, विद्वद्वर साहित्याचार्य श्री पद्मसिह जी शर्मा ने, अपने 'सजीवन भाष्य' मे बडी योग्यतापूर्वक तुलनात्मक समालोचना की है। पाठक महाशयो को यह विशेषत उक्त ग्रन्थ मे द्रष्टव्य है।

संदर्भ-संकेत

१—मेरी भौ बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जातन की झाई परे स्याम हरित दुति होइ॥
नित प्रति एकत ही रहत वैस वरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक।

२—नित प्रति एकत ही रहत वैस वरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक॥

३—हे व्याध के कुत्ते! (तनिक विचार कर, निष्फल कार्य करने से तेरा क्या लाभ?) (व्यर्थ) श्रम और अन्य प्राणी की हत्या—यही तेरा सारभूत है—यही तेरे भाग मे आयेगा। (बलपूर्वक) तुझे दूर भगाकर इस हरिण को अभी इसी समय व्याध के अनुयायी बाँट लेगे (तो ऐसा पाप-कर्म व्यर्थ तू क्यो करता है)॥

४—श्री कृष्ण के मस्तक पर माला रूप सखि तुलसि! तू राधा को अपने समान क्यो समझती है? क्योकि (श्री कृष्ण सर्वदा राधा के चरणो पर प्रणाम करते हैं

अत. मस्तक माला होने मे) तेरे परिमल का उद्रेक राधा के चरण को सुरभित करने के लिए ही है । इस प्रकार जो गौरव उसे प्राप्त है, वह तुझे नही ।

५—हे इन्दु कले ! तूने शकर के सिर पर चरण स्थापित किया है—ऐसा गर्व मतकर । तेरे गर्व का मार्जन रूप फल चण्डी की चरण धूलि से होगा (चण्डी को मानवती देखकर चरण प्रणाम करने पर चरण रेणुमार्जन होता है, कुपित मेरी सखी तुझे चरण ताडन करेगी अत ऐसा गर्व मत कर ।।

६—गुरु (१—प्रभाकर नामक विद्वान २—वृहस्पति) के बाद जिनकी गणना होती है, जिनके अस्त (१—नाश, अदर्शन) से धर्म कर्म (१—अन्य धर्म प्रवर्तक न रह जाते से २—शुक्रास्त मे कतिपय धार्मिक कर्मों का निषेध होने से) सकुचित हो गया उन काव्य कर्ता, 'कवि' अपरनाम वाले शुक्र की भाँति प्रसिद्ध नीलाम्बर नामक पिता की मैं (गोवर्धनाचार्य) वन्दना करता हूँ ।।

७—उत्सव के दिन उत्साह चाञ्चल्य मे स्नानद्वारा प्रसाधित सपत्नियो के निकट केवल उस आर्याने ही मज्जन मे अनादर दिखाकर अपना सौभाग्य सूचित किया है ।

८—"हे बाये नेत्र, तुम्हारे स्फुरित होने से यदि वह प्रिय आज ही आ जाय तो मैं अपनी दाँया नेत्र मूदे रह कर केवल तुमसे बहुत देर तक उसे देखूँगी ।

अमरु, पंडितराज जगन्नाथ और बिहारी

● डा० कमलेशदत्त त्रिपाठी

संस्कृत मुक्तको की सुदीर्घ परम्परा शताब्दियों की समय सीमा में विस्तीर्ण है। प्राचीन वैदिक साहित्य, पाली और प्राकृत साहित्य मे हमे वे तत्व उपलब्ध होते हैं, जो आगे चल कर मुक्तको के विकास की कडियाँ बनते हैं। वैदिक सूक्तो की मुक्त प्रवृत्ति, देवस्तुति के साथ ही जीवन के विभिन्न पक्षो का काव्यमय स्वपूर्ण उपस्थापन भावी खण्ड काव्यो और मुक्तको के ही अधिक समीप है। ऋक् संहिता के उषस्, पर्जन्य, सरित्, अरण्यानी सूक्त, परोपकार, दान एव सदुक्ति प्रशसा के सूक्त तथा अथर्व सहिता के प्रणय सम्बन्धी अभिचारो के सूक्त और ऐसे कितने ही सूक्त सस्कृत मुक्तक परम्परा के आरम्भ हैं। पाली की गाथाएँ और प्राकृत की 'गाहासत्तसई' तक तो मुक्तक सुदृढ़, सुस्पष्ट और समृद्ध परम्परा स्थापित हो चुकी थी।

इस पृष्ठभूमि में और इसके समान्तर संस्कृत की समृद्ध मुक्तक परम्परा है। नीति, वैराग्य और शृंगार परक मुक्तको, शतको और सप्तशतियो की लम्बी शृंखला। भर्तृहरि, गोवर्धन, बिल्हण, जगन्नाथ जैसे शुद्ध मुक्तक कवियो के साथ ही सुभाषित सग्रहो मे सुरक्षित शत-शत कवियो और कवयित्रियो की लम्बी परम्परा। इस विपुल मुक्तक राशि मे संस्कृत मुक्तको का विविध, रस-सिक्त और कभी धूमिल न पड सकने वाला रूप है, जीवन के रस और जीवन की ताजगी से भरा। इस लम्बी मुक्तक परम्परा मे एक नाम ऐसा है जो संस्कृत मुक्तक कवियो का प्रतिनिधि नाम हो सकता है और वह नाम है अमरु का।

हाल और भर्तृहरि की समृद्ध परम्परा में अमरु के मुक्तक आए। आचार्य आनन्दवर्धन ने अमरु को बडे समादर से स्मरण किया। उनके शृगाररसस्यन्दी मुक्तको को 'प्रबन्धायमान' कहा। अभिनव गुप्त ने तो एक श्लोक को 'प्रबन्धशत' की भाँति कहा। अमरु के मुक्तको मे प्रबन्धो की ही भाँति मुख, प्रतिमुख गर्भ आदि सन्धियों के चिन्ह दिखाई पडते हैं। मुक्तको में 'रसबन्धाभिनिवेश' मे तो अमरु की सफलता अद्भुत है।

प्राचीन भारत मे जीवन के लिए उपयोगी अन्यानेक शास्त्रों के साथ ही कामशास्त्र का भी आविर्भाव हुआ था। जीवन के इस पक्ष पर भी बौद्धिक रूप से

विचार किया गया। यह भी प्राचीन भारतवासी के मस्तिष्क के खुलेपन का प्रमाण है। साहित्यशास्त्र मे नायक और नायिकाओ के भेदो पर विवेचन हुआ। इन मुक्तको को नायक और नायिका भेद के उदाहरणो के रूप में व्याख्यात किया गया। ऐसे भी प्रयत्न किए जिनमे नायक-नायिका के प्रत्येक भेद को स्पष्ट करने के लिए मुक्तको की रचना की गई थी। रुद्रट का 'शृगारतिलक' इसी प्रकार की रचना थी। डा० पिशेल ने 'अमरुशतक' को भी मूलत: 'शृंगार तिलक' की ही भाँति विभिन्न रसो और नायक-नायिका भेद के उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से रचित बताया। उनके इस कथन का प्रतिवाद डा० एस० के० दे ने यह कह कर दिया है कि चूँकि कोई भी परम्परा 'अमरुशतक' की रचना के पीछे कोई विशेष उद्देश्य का होना नही बताती, अतः यह बात असम्भावित ही है। ए० बी० कीथ ने भी 'अमरुशतक' को नायक और नायिका के भेद के बन्धनो से मुक्त समझकर इन मुक्तको को प्रणय के पृथक्-पृथक् चित्र माना है। अमरु के प्रसिद्ध टीकाकार अर्जुनवर्मदेव ने भी इन मुक्तको को सभोग, ईर्ष्या, मान, अभिसार आदि का पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र चित्रण माना है। भले ही अमरु के मुक्तक नायिका-नायक के किसी भेद मे आते जाएँ किन्तु निश्चय ही उनकी रचना इस विशेष उद्देश्य से नही की गई थी।

अमरु के मुक्तको मे प्रणय की विविध स्थितियो का अकन कवि ने अत्यन्त कुशलता से किया है। महान् साम्राज्यो के उदय के साथ ही महान् नागरिको का उदय हुआ। पौरो और जनपदो की पृथक् जीवन-पद्धति स्पष्ट होती आ रही थी। वात्स्यायन ने कामशास्त्र के विधान प्रस्तुत किए। कला, काव्य और शास्त्रो की आराधना के केन्द्र अब नगर बन रहे थे। राजाओ की राजसभाएँ, राजधानियाँ और नगरियाँ एक अभिजात्य सस्कृति का पल्लवन कर रही थी। 'निष्पन्नसस्य ऋद्धि शरद् मे गाते पामर' का जीवन और कला तथा साहित्य मे सम्यगभ्यस्त पौर का जीवन कुछ पृथक् हो गया था। आख्यान, आख्यायिका, व्याख्यान, आलेख्य और समस्यापूर्ति से विनोद करने वाले समाज, प्रेक्षणक और गोष्ठी के रसिक पौर का आन्तर जीवन अभिजात्य और संस्कृत हो गया था। हाल की 'सतसई' मे प्राप्त प्रणय के सहज, लोक सामान्य चित्र से ये चित्र भिन्न थे। 'अमरुशतक' मे अकित चित्र उस मतवाले पौर जीवन के चित्र ही अधिक प्रतीत होते हैं। 'केलिरुचि सहृदय कान्त' प्रणय की कला मे दक्ष होता था। सखियाँ प्रणय करने, मान करने, विलास प्रदर्शित करने की कला का विधिवत् उपदेश देती थी। भवनो मे पले शुक-सारिका रसिक प्रणयीजनो के प्रणय-व्यापार मे साक्षी हुआ करते थे। यहाँ 'गोदावरी के तट पर कगारो से उतरती हलिकस्नुषा' नही दिखाई पडती। यहाँ तो प्रणय को कला के रूप मे आधारित करने वाले युगलो की कहानी है। उनके रंग भरे चित्र हैं—सुन्दर, मोहक, संस्कृत।

बिहारी के मुक्तको पर अपने को केन्द्रित करेंगे । बिहारी सम्यगधीत और बहुश्रुत कवि प्रतीत होते हैं । उन्होने पुरातन समृद्ध परम्परा का पूरा-पूरा उपयोग किया । उन पर 'गाहासत्तसई' तथा 'आर्यासप्तशती' का प्रभाव भी अवश्य ही पडा । सतसई की प्रेरणा ही इन रचनाओ से प्राप्त हुई । किन्तु बिहारी ने जो प्रभाव ग्रहण किये उन्हें एक समग्र परम्परा के प्रभाव के रूप मे अधिक स्पष्टता से देखा जा सकता है । साथ ही कई कवियो का विशिष्ट वैयक्तिक प्रभाव भी द्रष्टव्य है । इन उभयविध प्रभावो का अलग-अलग दर्शन कठिन नही है । सस्कृत की समूची मुक्तक परम्परा के अध्ययन से कुछ विशिष्ट सामाजिक स्थितियाँ, पारिवारिक आचार, भावो की अभिव्यक्ति की भङ्गिमाएँ, रुढियाँ, उपमाएँ और कवि परम्पराएँ स्पष्टत दृष्टिगोचर होती हैं । रीति-कालीन हिन्दी कवि संस्कृत काव्य-शास्त्रीय परम्परा से ग्रहण करने के साथ ही कविता के इन परम्परागत तत्वो को ग्रहण करते, यह स्वाभाविक ही था । जब मौलिक चिन्तन और स्वतन्त्र सर्जन की गति मन्द हो जाती है, उस पराभवयुगीन साहित्य मे तो यह अनिवार्य ही है । चिन्तन और सर्जन के मौलिक एवं स्वतन्त्र युग मे जो कुछ पूर्व परम्परा से ग्रहण किया जाता है, वह सर्वथा सहज प्रक्रिया मे होता है, अत. अनारोपित रूप मे आया करता है । किन्तु पराभवयुगीन साहित्य कला और चिन्तन न केवल स्वतन्त्र योगदान मे असमर्थ होता है, अपितु गृहीत तत्वो की गरिमा को भी निभा नही पाता ।

किन्तु बिहारी काफी अशो मे जिस परम्परा और जिन प्रभावो को ग्रहण करते है, उसके स्तर को निर्वाहित करते हैं । इतना ही नही अपनी सीमाओ मे वे नूतन योगदान भी करते हैं । बिहारी पर संस्कृत मुक्तक परम्परा का समग्र और विशिष्ट कवियो का जो प्रभाव पडा, उसका पूर्ण और सविस्तार विवेचन तो अन्य निबन्ध की ही अपेक्षा करता है, किन्तु अमरु की समानान्तरता को सक्षेप मे इस तरह से देखा जा सकता है । अमरु के समान बिहारी के शृगारपरक मुक्तक, अभिजात-शिष्ट नागर जीवन को ही अपना मुख्यत: विषय बनाते हैं । जहाँ ग्राम्यजीवन की कुछ एक स्थलो पर छबि है, स्पष्टत उसे गाहासत्तसई तथा सस्कृत के अन्य मुक्तक कवियो के प्रकाश मे समझा जा सकता है । परन्तु सामान्य रूप से बिहारी के मुक्तक भी शिष्ट, अभिजात, कलाकुशल जन के सूक्ष्म और कोमल मनोभावो को अकित करते हैं, जिनके अकन मे सस्कृत-परम्परा मे अमरु का जोड पाना कठिन है । यहाँ हालिकजन, गोपवधू और गँवार के निश्छल, भोले, कटाव-छँटाव और तराश से रहित अकृत्रिम प्रणय के स्थान सविलास, सज्जित, कलाप्रवीण प्रणय के ही दर्शन होते हैं । इस अश मे अमरु बिहारी के समानान्तर बैठते हैं ।

केवल अमरु के मुक्तको के शृंगार की छटा ही बिहारी-सतसई मे दृष्टिगोचर

नही होती अपितु अमरु के मुक्तको का अनुवाद ही जहाँ-तहाँ प्राप्त होता है। अमरु का श्लोक है .

"शून्यं वासगृह विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छने,
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थली,
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरंचुम्बिता ॥"

(अमरु—८२)

विहारी ने इसका रूपान्तर इस प्रकार किया :

"मैं मिसहाँ सोयौ समुझि मुहुँ चूम्यौ ढिग जाइ।
हँस्यौ, खिसानौ, गलगह्यौ रही गरैं लपटाइ ॥"

(विहारी रत्नाकार—६४२)

अमरु के "त्वं मुग्धाक्षि विनैव कंचुलिकया" (श्लोक सं० २७) श्लोक का विहारी ने अपने छोटे से छन्द की सीमा मे यह रूपान्तर किया :

"पति रति की वतियाँ कही, लखी सखी मुसकाइ।
कै कै सबै टलाटली अली चली सुखपाइ ॥"

(विहारी रत्ना—२४)

अमरु ने "मुग्ध मुग्धतयेव नेतुमखिल. काल किमारभ्यते" (अमरुशतक—७०) मे मुग्धा नायिका का जो चित्र खीचा, विहारी ने इस तरह प्रस्तुत किया :

"सखी सिखावति मानविधि, सैननि बरजतिबाल।
हँसए कह मोहिय वसत सदा विहारी लाल ॥"

(विहारी रत्नाकर, उपस्करण २—११६)

इसी तरह "भ्रूभङ्गे रचितेऽपि" (अमरु शतक—२४) के भाव पर दो दोहे हैं

"मोहि लजावत, निलज ए हुलसि मिलत सब गात।
भानु उदै की ओस लौं मानु न जानति जात।"

(विहारी रत्नाकर—५६६)

"कपट सतर भौहे करी मुख अनखौंहे बैन।
सहज हँसौंहे जानि कै सौंहे करति न नैन ॥"

(विहारी रत्नाकर-४१२)

अमरु ने परस्पर रूठ गये दम्पति का एक अनोखा चित्र "एकस्मिन् शयने"

(अमरुशतक—२३) श्लोक मे अंकित किया है। बिहारी ने इसे इस तरह प्रस्तुत किया :

"खिचै मान अपराध हूँ चलिगै बढ़ैं अचैन।
सुरत दीठि तजि रिस खिसी हँसे दुहुँन के नैन ।।"

(बिहारी रत्ना०—६४६)

विरह से उत्तप्त उरोज पर विरहिणी के अश्रु छन-छन कर उडते जाते हैं। अमरू ने "तप्ते महाविरहवह्नि" (अमरूशतक—८६) श्लोक मे यह वर्णन किया है। बिहारी ने उसे इस प्रकार रखा :

"पलनु प्रगटि, बरुनीन वढि, नहि कपोल ठहरात।
अँसुआ परि छतिया छनकु छनछनाइ छिपि जात ।।"

(बिहारी—६५६)

इन उदाहरणो से इतना तो स्पष्ट ही है कि बिहारी ने अमरु के शतक का न केवल रसास्वाद ग्रहण किया, अपितु उसका अपनी रचना मे पूर्णरूप से उपयोग भी किया। बिहारी ने चूँकि पूर्वतन कवि अमरु से कुछ ग्रहण किया, केवल इसलिए वे अमरू से हेठे है, या रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से अमरु बढे-चढे हैं अथवा बिहारी उन्हे पीछे छोड जाते हैं, इस प्रकार की समालोचना की गम्भीरता हमारी बुद्धि से परे है। अमरु का सस्कृत साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान है और बिहारी का हिन्दी साहित्य मे। यह बात ध्यान मे रख कर यदि हम यह कहे कि अमरु के समानान्तर हिन्दी साहित्य में बिहारी हैं, तो यह अधिक ठीक बात होगी। यह इसलिए भी उचित् होगा, क्योकि बिहारी के शृङ्गार परक मुक्तको का आस्वाद अमरु के मुक्तको के आस्वाद का समवर्ती है। अन्तर यह अवश्य है कि अमरु अपने छन्दो के वृहत्तर आकार मे अधिक स्पष्ट और वडे चित्र देते हैं, मृदुपदावली मे अपना विशिष्ट सगीत देते हैं और पूर्वतन कवियो से पृथक्, स्वतन्त्र और मौलिक अभिव्यक्ति भगिमा देते हैं, किन्तु बिहारी के चित्र प्राय फलक मे छोटे और भगिमा मे सर्वथा मौलिकता का आभास नही दे पाते। किन्तु इतने पर भी बिहारी मे मौलिक वर्णन भङ्गिमाएँ न हो, चटक और आवर्जक चित्र न हो ऐसा भी नही कहा जा सकता।

पडितराज जगन्नाथ और बिहारी—इस स्थल पर सस्कृत के अन्य मुक्तक कवि पण्डितराज जगन्नाथ की बरवस स्मृति हो आती है। बिहारी और पण्डितराज एक युग मे विभिन्न भाषाओ के माध्यम से अपनी प्रतिभा का प्रकाशन कर रहे थे। पण्डितराज एक ओर सस्कृत काव्य-शास्त्र की गौरवमयी परम्परा के अन्तिम धुरन्धर आचार्य हैं, तो दूसरी ओर संस्कृत मुक्तक परम्परा के अत्यन्त प्रदीप्त नक्षत्र हैं।

उनकी साहित्यिक गतिविधि का समय मोटे तौर पर सन् १६२० से १६६० ई० तक माना जाता है। उन्होने मुगल सम्राट जहाँगीर, शाहजहाँ, उदयपुर नरेश जगतसिंह (१६२८–१६५४) तथा कामरूप नरेश प्राणनारायण (१६३३--१६६६) की राज सभाओ को अलकृत किया। सभवत. लगभग यही समय जब बिहारी ने भी नरेश जयसिंह की सभा को अलकृत किया। मुगल दरबार से भी उनका सम्पर्क हुआ। कोई कठिन नही कि बिहारी और पण्डितराज एक दूसरे से परिचित रहे हो।

पण्डितराज जगन्नाथ के मुक्तको और बिहारी के मुक्तको मे कई समानताएँ दिखाई पडती है। बिहारी ने अपने मुक्तको के लिए अत्यन्त लघुकाय दोहा मात्र चुना, इसकी परम्परा पहले से विद्यमान ही थी, उन्होंने शृगारपरक, भक्तिपरक, अन्योक्ति परक तथा नीतिपरक दोहे लिखे। वे शृगारपरक दोहे लिखते-लिखते और नीति की सूक्तियाँ कहते कहते सजग हो कर राधा-कृष्ण की चर्चा करने लगते हैं। पण्डितराज ने भी आर्यासप्तशती की परम्परा मे आर्याछन्दो को भी ग्रहण किया। यद्यपि उन्होंने अन्य छन्द भी अपनाये और प्रचुर मात्रा मे उनमे रचना की किन्तु आर्या मे भी उन्होने अत्यन्त ललित रचनाएँ की। उन्होंने भी कृष्ण की भक्ति मे सराबोर रचनाओं के साथ-साथ शृङ्गारपरक, नीतिपरक, और अन्योक्तिपरक रचनाये लिखी। उनके 'भामिनी विलास' मे अन्योक्ति, शृगार, करुण और शान्तिपरक चार समुल्लास हैं। पण्डितराज और बिहारी को रचनाओ मे अन्योक्ति तथा नीतिपरक मुक्तकों के कहते समय एक अद्भुत समान भङ्गिमा है। पडितराज भ्रमर को सम्बोधित करते हुए कहते हैं :

"येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत।
कुरजे खलु तेनेहा तेनेहा मधुकरेण कथम्॥"

जिसने अमन्द मकरन्द वाले कमलो में अपने दिन बिताये हैं, उस मधुकर ने आह! कुरैया के फूलो मे अपनी इच्छा की है, भला क्यो?

कोकिल के प्रति उनकी उक्ति है

"कोकिल तावद्विरसान्, यापय दिवसान् वनान्तरे निवसन्।
यावन्मिल दलिमाल. कोऽपि रसाल समुल्लसति॥"

कोकिल, अपने विरस दिनो को तब तक किसी दूसरे वन मे रह कर गुजार दो, जब तक कोई आम्र बौर फूल नही जाता, जिस परे भौरो की मालाएँ मडरा रही होगी।

पडितराज की इन अन्योक्तियो की भगिमा की तुलना बिहारी से करने पर एक अद्भुत साम्य प्राप्त होता है।

इसी प्रकार पंडितराज के कृष्ण-परक मुक्तको मे और विहारी के राधाकृष्ण परक मुक्तको के आस्वाद मे भी अद्भुत आस्वादसाम्य है। पडितराज भी विहारी की तरह अन्तत. कृष्ण नाम की माध्वीक-विनिन्दक सुधा मे आनन्द ग्रहण करते हैं। उनके अभिव्यक्ति प्रकार, विषय और शैला मे पर्याप्त समानता है।

अमरु, पडितराज एवम् अन्य ऐसे कवियो विहारी के मुक्तको की समानता पर विचार करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि वहुत कुछ ये समानताएँ एक परम्परा से अनुप्राणित होने के कारण लगती है। इनकी समानता के लिए परम्परा की एकता का ऐतिहासिक कारण है। किन्तु जहाँ स्पष्टतः भाव-ऐक्य अथवा अनुवाद है वहाँ तो वैयक्तिक और विशिष्ट प्रभाव की बात का अपलाप नही ही किया जा सकता। सस्कृत लम्वी मुक्तक परम्परा के सन्दर्भ मे विहारी के साथ-साथ एक ओर अमरु और दूसरी ओर पडितराज को रख कर विचार करने का एक स्पष्ट आशय यह है कि हिन्दी की मुक्तक परम्परा एक ओर प्राचीन मुक्तक परम्परा और कवियो से वहुत कुछ ग्रहण करती रही, दूसरी समकालीन सस्कृत कवियो से भी उनका सम्बन्ध बना रहना कोई अजीब बात नही है। इस दृष्टि से विचार करते समय हमारे मुक्तको के प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण पक्ष उजागर होता है।

विद्यापति और बिहारी

● डा० केदारनाथ लाभ

विद्यापति और बिहारी के काल मे यद्यपि तीन-साढे तीन सौ वर्षों का अन्तर है एव देश काल के इस गहरे भेद के कारण दोनो महाकवियो के काव्यविषय और शिल्प, उभय दृष्टियो से कुछ इस प्रकार आपस मे मिलते-जुलते एव अलग-विलग हो दीख पडते हैं कि उनका अध्ययन अपने आप मे मनोरजन हो जाता है। दोनो ही दरबार के कवि हैं, दोनो के काव्य प्रतिपाद्य राधाकृष्ण हैं एव दोनो मुक्तककार हैं। किन्तु समानता की इस भूमि पर खडे होकर भी दोनो के सौन्दर्य बोध, भाव-प्रवेश, शब्द-शिल्प एव दृष्टि भगी की अन्तर्वेधकता मे कुछ ऐसा पार्थक्य है जो दोनो कवियो को एक नदी के दो किनारे पर खडा कर देता है।

भाषा-काव्य मे राधा की सर्वप्रथम अवतारणा यद्यपि विद्यापति के द्वारा ही हुई किन्तु उन पर पडे हुए पडोस के जयदेव एव चंडीदास के प्रभाव को विस्मृत नही किया जा सकता और इतना ही क्यो ? गाथा सप्तशती, और अमरु शतक के प्रभाव को ही हम क्यो भूले ? प्रथम शताब्दि की गाथा सप्तशती मे राधा का वर्णन यो हैं ·

मुहमाहृएण त 'कह गोरअ रहिआएँ अवणेन्तो।
एताण वल्लवीण अण्णाण वि गोरअ हरसि ।।

यानी हे कृष्ण। तुम अपने मुह की हवा से राधा के मुख मडल पर व्याप्त धूल को दूर कर (प्रकारान्तर से चुम्बन द्वारा उसे श्रेष्ठता प्रदान कर) अन्य गोपियो का अभिमान चूर-चूर कर रहे हो। यह वर्णन अपनी व्यजना शक्ति एव भावोत्कृष्ट्य की दृष्टि से सहज आकर्षण है।

यहा यह ध्यान मे रखना चाहिए कि उपर्युक्त राधा किसी वैष्णव सम्प्रदाय के रंग से रजित नही बल्कि जन-प्रचलित भावनाओ की मटमैली साडी मे लिपटी एक सहज-सरल, निश्छल-निरलकृत ग्राम-वनिता के ऋजु पर, आकर्षक रूप मे प्रकट हुई है।

ग्यारहवी शताब्दी के जयदेव की राधा भी कुछ ऐसी ही थी। जयदेव पर १४ वी शताब्दी के निम्बार्क और विष्णु स्वामी के वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव नही माना जा सकता। सच तो यह है कि तान्त्रिको के जिस वाम-मार्ग का प्रभाव मध्य-कालीन भारत पर नानाविध पड़ा था, उसमे स्त्री-पूजन को अत्यधिक महत्व मिला था। कौल धर्म भी अपनी सिद्धि का साधन स्त्री को ही मानता था। आगे आकर शक्ति-सम्प्रदाय ने हर पुरुष को शिव और हर नारी को शक्ति का स्वरूप माना। इस प्रकार शिव-शक्ति को लेकर काफी शृंगारपूर्ण रचनाएँ हुईं। कालिदास के कुमार-सम्भव मे शाक्तो या शैवो की यही मान्यता काम करती है, जहाँ शिव-पार्वती के उद्दाम-सम्भोग का वर्णन किया गया है। यही शिव-शक्ति का युग्म रूप आगे चलकर "राधा-कृष्ण" का युग्म रूप बन गया। शक्ति मत का प्रभाव मिथिला-बगाल जैसे पूर्वी भारत और समस्त उत्तराखण्ड मे था। सुतरा, शक्ति की पद्धति पर राधा की अवतारणा धर्म मे ही नही साहित्य मे भी हुई। और शक्ति मत की भाँति ही राधा-कृष्ण पूर्वी प्रदेशो मे आरम्भ मे शृंगार के आलम्बन के रूप मे ही गृहीत हुए। यही कारण है कि जयदेव ने स्वयं अपने काव्य का प्रयोजन बताते हुए कहा :

यदि हरि स्मरणे सरसं मनो यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल कान्त पदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

जयदेव की राधा ब्रह्मवैवर्त पुराण की राधा नही, वह तो उनकी शृंगार प्रिय मनोवृत्ति को मूर्तरूप देने वाली कामकला प्रवीणा कोई सुघर यौवना है। उनके कृष्ण गोपी, पीन, पयोधर-मर्दन करने वाले तरुण पुरुष हैं और राधा :

किसलय शयन विवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम्।
कृत परिरम्भन चुम्बनया परिरम्य कृताधर पानम्॥

की कामना से दग्ध तरुणी है। वह मात्र एक विलासिनी-बाला है॥

विद्यापति की राधा जयदेव की राधा के समीप है। भेद इतना ही है कि जय-देव की ज्ञातयौवना कामातुरा राधा है। विद्यापति की राधा वय.सन्धि की राधा है। जिसमे शनैः शनैः वचन चातुर्य एवं काम-जिज्ञासा का आगमन होता है और फिर वही उन सभी कलाओ को सीखती है जो किसी भी प्रथमाभिसारिका नायिका के लिए अपेक्षित है। यही कारण है कि विद्यापति राधा के स्वरूप-वर्णन मे मासलता की दृष्टि से पूर्ववर्ती जयदेव एवं परवर्ती बिहारी के निकट हैं किन्तु भाव-चित्रण की दृष्टि से पूर्ववर्ती चडीदास से पीछे चले जाते है।

चडी दास की राधा, कृष्ण के प्रेम मे सराबोर एव भाव-विह्वल हो कर निवेदन करती है :

वधु ! तुमि से आमार प्राण !
देह मन आदि तोमाते सपेछि कुल शील जाति मान ॥
पिरीति रसेते ढालि तनु मन दियाछि तोमार पाय ।
तुमि मोर गति, तुमि मोर पति मन नाहि आन चाय ॥
कलकी वलिया डाके सब लोके ता हावे नाहिक दुख ।
तोमार लागिया कलकेर हार गलाय परिते सुख ॥
सती वा असती तोमाते विदित भाल मंद नहि जानि ।
कहै चडोदास पाप-पुण्य मम तोमार चरण खानि ॥

प्रेम की निश्चय निराकृत एव निर्व्याज अभिव्यजना का इससे बढ कर क्या उदाहरण हो सकता है। प्रेम के रस में अपने तन मन को डाल कर जिसने अपना सर्वस्व कृष्णार्पण कर दिया है अब वही कृष्ण मात्र उसकी गति है, वही उसका पति है, समस्त तर्कातर्कों से ऊपर उठ कर अपनी ग्रीवा मे कलको का हार पहन कर सती, असती, अच्छी-बुरी के भेद से अनभिज्ञ होकर जो अपने समस्त पाप-पुण्यो को कृष्ण के चरणो पर अर्पित करती है । वह एकान्त आत्म समर्पण की भावना-वाली शाश्वत प्रेम की प्रज्वलित दीपशिखा चंडीदास की राधा है। विद्यापति की राधा मे यह भाव ढूढे भी नही मिलता । सूर अलवत्ता अनेक स्थलो पर विद्यापति से रस-ग्रहण करके भी भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से अपने सभी पूर्ववर्ती राधा कृष्ण काव्य प्रणेताओ से काफी ऊँचे उठ जाते हैं। पर सूर को छू भी नही पाते और मासलता मे विद्यापति से होड लेते दिखाई पडते हैं ।

विद्यापति राधा की वय: सन्धि की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं·

सैसव जोबन दुहु मिलि गेल ।
श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल ॥
मुकुर लई अब करई सिंगार ।
सखि पूछई कइसे सुरत-विहार ॥
निरजन उरज हेरइ कत बेरि ।
हसइ से अपन पयोधर हेरि ॥
पहिल बदिर-सम पुन नवरग ।
दिन दिन अनग अगोरल अग ॥

अथवा :

सैसव जौवन दरसन मेल ।
दुहु दल वले दन्द परि गेल ॥

कवहु बाँधय कच कवहु विथारि ।
कवहु झाँपय अंग कवहु उघारि ।।
अति थिर नयन अथिर किछु मेल ।
" उरज–उदय थल तालिम देल ।।

और बिहारी कहते हैं :

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अग ।।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता रग ।।

अथवा

तिय-तिथि तरुन-किसोर-वय पुन्यकाल सम दोनु ।
काहूँ पुन्यनु पाइयतु वैस-संधि-सक्रोनु ।।

अथवा

निरखि नवोढा नारि तन, छुटत लरिकई-लेस ।
भौ प्यारी प्रीतमु तियनु, मनहुँ चलत परदेश ।।

यहाँ विद्यापति की दृष्टि वय सधि काल मे होने वाले नारी शरीर के परिवर्तनो पर विशेष गयी है एव मानसिक परिवर्तनो पर अपेक्षा कृत कम । हाँ, रूपात्मक और क्रियात्मक परिवर्तनो का उन्हे पूरा ध्यान है। बिहारी का ध्यान प्रथम दोहे मे वर्ण-परिवर्तन पर दूसरे दोहे मे नायिका की वय सन्धि देख कर कवि हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव पर एव तीसरे दोहे मे सपत्नी के हृदय मे उत्थित असूया पर । स्पष्ट है कि पहले दोहे मे बिहारी विद्यापति से ऊंचे चले गए हैं पर अन्य दो दोहो मे मात्र वर्णन चमत्कार है । स्थूलता तो दोनो मे है ही ।

उसी भाँति :

पीन पयोधर दुबरि गता ।
मेरु उपजल कनक--लता ।।

कहकर विद्यापति राधा के उरोजो के काठिन्य एवं विशालता का सकेत मेरु कह कर एव दुर्बल गोरे गात का उदाहरण कनकलता से देकर जो प्रभाव उत्पन्न करते हैं वही बिहारी :

जैती संपति कृपन कैं, तैती सूमति जोर ।
बढत जात ज्यौं-ज्यौं उरज त्यौं-त्यौं होत कठोर ।।

या

ज्यौं-ज्यौं जोबन-जेठ दिन कुचमिति अति अधिकाति ।
त्यौं-त्यौं छिन-छिन कटि-छपा छीन परति नित जाति ।।

कह कर उत्पन्न करते हैं। विद्यापति के मेरु उपजल कनक-लता मे दूरारूढ कल्पना है पर विहारी के उपमान जीवन के अत्यधिक निकट के हैं। अत चित्र उकेरने या वर्णन की प्रभावोत्पादकता मे विहारी विद्यापति से वढ जाते हैं, पर सौन्दर्य के स्थूल या मासल अकन मे दोनो के मन समान रूप से रमते पाये जाते हैं।

देह सौन्दर्य के चित्रण मे विद्यापति सांगोपाग वर्णन करते हैं जब कि विहारी किसी अग विशेष या अग भगिमा का खडित चित्रण कर ही तुष्ट हो जाते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि विद्यापति को गीतो का प्रणयन करने के कारण ऐसा करने की पूरी छूट, पूरा अवसर और पूरा स्थान मिल जाता है जब कि बिहारी को एक सीमा में ही यह सब करना होता है। उदाहरणार्थ ·

पल्लवराज चरन जुग सोभित
गति गजराजक माने।
कनक कदलि पर सिंह सभारल
तापर मेरु समाने।
मेरु उपर दुइ कमल फुलायल
ताल बिना रुचि पाई।
मनि-मय हार धार बहु सुरसरि
तओ नहि कमल सुखाई

विद्यापति इसमें क्रमिक रूप से नख-शिख वर्णन ही नहीं करते, रूपकों के माध्यम से सजीव चित्र भी खडा करते चलते हैं। पर विहारी में चित्रात्मकता की क्षमता अधिक होते हुए भी ऊहात्मकता के प्राबल्य के कारण उनके चित्रों मे रमणीयता नही आ पाती। साथ ही चित्र एक झटका देकर रह जाता है कोई सम्मिलित प्रभाव नही उत्पन्न कर पाता है। देखिए :

(अ) लिखन वैठि जाकी सवी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।
(ब) पत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास ।
नित प्रति पून्यौई रहत आनन ओप उजास ।।
(स) अग अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह ।
दिया बढायें हूँ रहै बडो उज्यारो गेह ।।
(द) कहत सवै, वेदी दियै आकु दसगुनो होतु।
तिय-लिलार वेंदी दियैं अगिनितु बढ़तु उदोतु ।।

इसी से डा० सुधीन्द्र का कथन है—'विहारी की दृष्टि नारी के अंग-प्रत्यंग पर बडी सूक्ष्मता से पडी है—जंघा, नितम्ब, कटि, त्रिवली, उरोज, ग्रीवा, कण्ठ सभी को कला के आवरण में लिपटा हुआ कवि ने दिखाया है। इस आलंकारिक चित्रण मे कही-कही ऊहा का चमत्कार इतना वढ़ गया है कि विश्वास कौतूहल में बदल जाता है।

यही स्थिति दोनो महाकवियो के संयोग-वियोग वर्णन मे भी है। विद्यापति संभोग शृंगार के उद्दाम क्षणो का वर्णन करते समय भी, यथार्थता एवं स्वाभाविकता की सीमा का उल्लघन नही करते और एक हद तक उनके नायक-नायिका पर मिथिला को सास्कृतिक परम्परा और प्रथाओ से आवृत वर-वधू के प्रथमाभिसार का रंग चढ जाता है एव नर-नारी के सहज मन का परिचय भी प्राप्त हो जाता है। यथा विद्यापति की नायिका प्रथम समागम के क्षण :

नहि नहि करय नयन ढर नोर
कांच कमल भमरा झिकझोर
जइसे डगमग नलनिक नीर
तइसे डगमग धनिक सरीर ॥

अथवा उसे जब·

सखि सब देल भवन कए सजनि गे
घुरि आइलि सभ नारि।
कर धए लैल पहु लग कए सजनि गे
हेरए वसन उघारि ॥
भए वर सनमुख बोलइ सजनि गे
करे लागल सविलास
नव रस रीति पिरीति भेल सजनि गे ॥
दुहु मन परम हुलास ॥

तो एक सीमा तक यथार्थता और स्वाभाविकता के कारण मन इसमे रमता ही है। उद्दाम शृंगार रसराज बन जाता है। किन्तु विहारी की नायिका जब

हसि-हसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।
वलकि बलकि वोलति वचन, ललकि ललकि लपटाति ॥

अथवा

ज्यो ज्यो पावक लपट सी तिय हिय सौं लपटाति।
त्यो त्यो छुही गुलाब सैं छतिया अति सियराति ॥

तो वर्णन मे चमत्कार का जो दर्शन हो जाय सयोग की स्वाभाविकता का दर्शन नही हो पाता । इनमे उन्माद का चित्र आता है सयोग की सहजता का नही ।

विप्रलंभ शृंगार के वर्णन मे तो विद्यापति विहारी से और वढे-चढे कवि सिद्ध होते हैं । यद्यपि डा० रामकुमार वर्मा विद्यापति को विहारी के समान घाट-बाट का चित्रण करने वाला ही समझते हैं । उनके अनुसार विद्यापति ने अन्तर्जगत का उतना हृदयग्राही वर्णन नही किया जितना वाह्य जगत का । तात्पर्य यह है कि विद्यापति ने मानव चित्रकृतियो के आरोह का साधारण रूप से ही चित्रण किया है । इसकी अपेक्षा स्थूल शरीर के हाद-भाव चेष्टाएँ, अगविकास का चित्रण करने मे कवि का हृदय अधिक रमा है । किन्तु वस्तुस्थिति वैसी है नही है । यह सच है कि विद्यापति और विहारी दोनो दरवारी कवि थे जिसके कारण दोनो का अपनी कविता मे कलात्मक चमत्कार का प्रदर्शन करना अनिवार्य सा था एवं दोनो पर रीतिशास्त्रीय परम्परा तथा पाडित्य प्रदर्शन करना अनिवार्य सा था एव दोनो पर रीतिशास्त्रीय परम्परा तथा पाडित्य प्रदर्शन का प्रभाव था फिर भी विद्यापति के पास वैयक्तिक अनुभूति की परिपक्वता थी, जिसके कारण उनके काव्य मे मानवीय भावनाओ का भी सम्यक चित्रण हो सका है । देखिये—परदेश गमन की वाते सुनकर ही विद्यापति की राधा कहती है .

माधव तोहे जनि जाह विदेश
हमरो रग रमन लए जए वह लए कौन सन्देश ।

विरह विदग्धा राधा करुणालाप करती है

सखि मोर पिया ।
अवहु न आओल कुलिस हिया
नखर खो आओलु दिवस लिखि लिखि
नयन अधाओलु पिया पथ देखि ।।

अथवा

माधव हमर रटल दूर देस
केओ न कहय सखि कुसल सनेम ।।
जुग जुग जिवथु वसथु लाख कोस
हमर अभाग हुनक नहि दोष ।

अथवा

सखि हे हमर दुखक नहि ओर
ई भर वादर माह भादर सून मन्दिर मोर ।

इन उपर्युक्त पंक्तियो मे एक नारी हृदय की विरहानुभूति एवं उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति का कोई भी विदग्ध पाठक सहज अनुमान लगा सकता है। यही बिहारी के विरह वर्णन की कुछ पक्तियाँ ले :

इत आवति चलि जाति उत चली छसातक हाथ।
चढी हिंडौरे ही रहै लगी उसासनु साथ॥

या

आडे दै आले वतन जाड़े हू की राति।
साहस ककै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति॥

इनमे विरह का ऊहात्मक या हास्यास्पद रूप मात्र खड़ा किया गया है नारी मन की पीड़ा तो दबी ही रह गई।

ऐसी ही पंक्तियो को लक्ष्य कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि—कही कही इनकी वस्तु व्यजना औचित्य की सीमा का उल्लंघन करके खेलवाड़ के रूप मे हो गई है। (हि० सा० का इतिहास, पृ० २४८)

मेरा अभिप्रेत केवल यह है कि वर्णन चाहे नायिका के नख-शिख का हो या वय: सन्धि का, मान का हो या विपरीत रति का, संयोग का हो या विप्रलम्भ शृंगार का, विद्यापति और बिहारी दोनों ही इनमें खूब डूबते हैं और दोनों ही इनके चित्रण में अपनी कला की रंगीनी का खूब प्रदर्शन करते हैं किन्तु जहा विद्यापति तन से मन की ओर भी प्रयाण करते हैं एवं देह सौन्दर्य से आगे बढकर अन्र्तसौन्दर्य का भी अंकन करते हैं वहाँ बिहारी पाडित्य प्रदर्शन के व्यामोह मे पडने के कारण, देह सौन्दर्य तक ही अपना क्षेत्र सीमित कर विद्यापति से बहुत पीछे छूट जाते हैं। जहाँ विद्यापति तन और मन तथा काम और प्रेम के समन्वित कवि हैं वहाँ बिहारी मात्र शरीर और वासना के कवि होकर रह जाते हैं। यही कारण है कि विद्यापति की 'जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित मेल' अथवा :

ततहि धाओल दुहु लोचन रे
जतए गेलि वर नारि।
आसा लुबुध न तेजय रे
कृपनक पाछु भिखारि।

अथवा

सरसिज बिनुसर, सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे

यौवन विनु तन, तन विनु यौवन
की औवन पिय दूरे ।।

जैसी पक्तियाँ विहारी मे लाख ढूँढ़ने पर भी नही मिलती हैं।

विद्यापति और विहारी दोनो शृगारी कवि हैं, एक मे भावना की सच्चाई है अपर में बौद्धिक चमत्कार की भरमार। रीतिकाल को कविताएँ बुरी नही, मृत हैं। इस काल मे रूप की सृष्टि तो हुई, किन्तु कवियो ने अपने हृदय की बेचैनी नही लिखी और घनानन्द तथा वोधा को छोड दे तो ऐसा लगता ही नही कि रीतिकाल के कवियो का अपना भी कोई प्रेम था...रीति काल का दोष उसकी शृगारिकता नही, यही निर्जीवता और नकलीपन है। विद्यापति और चडीदास कम शृगारिक नही हैं, किन्तु उनकी शृगारिकता के पीछे उनका प्रेम उपस्थित है, वह वासना उपस्थित है जो पुरुष में नारी के लिए और नारी में पुरुष के लिये विद्यमान रहती है। इस वासना की अभिव्यक्ति की सच्चाई और सीधापन विद्यापति के शृंगार को स्वाभाविक बनाये हुए हैं।[1] और यही स्वाभाविकता विद्यापति के काव्य को अमरत्व एवं रमणीयता प्रदान करती है।

विद्यापति के काव्य मे वहुत सी ऐसी पक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं जिनके आधार पर ग्रियर्सन को यह कहना पडा था।

यानी "जिस भाँति सोलोमन के गीतों को क्रिश्चियन पादरी कहते हैं उसी भाँति हिन्दी भक्त विद्यापति के पदो को पढते हैं और किञ्चित् भी कामवासना का विकार अपने हृदय मे नही देखते।" वावू श्यामसुन्दर दास, वावू व्रजनन्दन सहाय, तथा डा० विमान विहारी मजुमदार भी विद्यापति के पदो मे वैष्णव लीला का गान पाते हैं एवं चैतन्य महाप्रभु तो विद्यापति के इन पदो को गाते-गाते मूर्च्छित हो जाते थे। किन्तु विहारी के दोहो के सम्बन्ध में यही या ऐसी ही बात नही कही जा सकती फिर भी अध्यात्मिक भावो के अभाव के कारण ही विहारी के दोहे—निकृष्ट नही ठहराये जा सकते। सच तो यह है कि काव्य की कसौटी कोरी अध्यात्मिक भावना की उपस्थिति से नही हो सकती। और सबसे बढकर कि यह अध्यात्मिक भावना भी तो विद्यापति के पदो या गीतो पर लादी गई है। कोई चाहे तो विहारी मे इसे ढूँढ सकता है। किन्तु मेरा कथन मात्र इतना है कि जिस प्रकार विद्यापति के पदो में एक ग्राम-वाला या ग्राम-तरुण से लेकर एक निश्छल निर्विकार भक्त हृदय तक को तन्मय एवं रसोद्बुद्ध कर देने की सहज क्षमता है उसका विहारी के दोहो में सर्वथा अभाव है, अपने कथन की पुष्टि में मैं शुक्ल जी की पंक्तियाँ रखूंगा जो हृदय के अत-स्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं। किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर

अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नही हो सकता। बिहारी का काव्य हृदय मे किसी ऐसी लय या सगीत का संचार नही करता जिसकी स्वर-धारा कुछ काल तक गूंजती रहे।..... मार्मिक प्रभाव का विचार करे तो देव और पद्माकर के कवित्त सवैयो का सा प्रभाव बिहारी के दोहो का नही पडता।[2] और इसके साथ ही डा० रामरतन भटनागर की विद्यापति के सम्बन्ध मे व्यक्त उक्ति भी देखिये—"विद्यापति सयोग शृगार मे उससे भी बढे-चढे है—यहाँ वे स्थल हैं जिनके कारण विद्याप त वैष्णव कवियो को ग्राह्य हुए, नही तो उनके सयोग शृगार की गर्हित भावनाओ ने उन्हे सदा के लिए लाछित कर दिया था।[3]

कविता के सम्बन्ध मे कुछ व्यक्तियो की मान्यता यह है कि उसमे भाव पक्ष की अपेक्षा अभिव्यजना पक्ष का अधिक महत्व है निश्चय ही यह मान्यता विवाद ग्रस्त है किन्तु काव्य अथवा कला को परखने की यह भी एक विशिष्ट दृष्टि भगी है। कवि कहाँ तक अपने भावो को चित्रात्मक स्वरूप प्रदान करता है इस बात पर उसकी सफलता कूती जाती है। और इस दृष्टि से बिहारी अद्वितीय सिद्ध होते हैं।

यह नही कि विद्यापति चित्र नही उकेरते, नही ! वे भी उकारते हैं और कही-बिहारी से बढकर किन्तु उनका ध्यान भावो के सहज अभिव्यजन पर अधिक है। यत्र-तत्र पाडित्य प्रदर्शन, शास्त्र ज्ञानाभिव्यजन एव दृष्टि कूट के स्थलो को बाद मे देखने पर उनमे भावो की निश्छल अभिव्यक्ति हम पाते हैं। जो अलकार स्वतः ही काव्य के भूषण बन कर आ गए उन्हे विद्यापति ने ग्रहण कर लिया पर वे अलंकारो की सजावट या नक्काशीगिरी या रूप तराशी के फेर मे नही पडे।

बिहारी नीले अचल मे छिपी किसी छबीली के मुह को देखकर यह उत्प्रेक्षा करते हैं कि माना यमुना के नीर मे चन्द्रमा झलमलै रहा हो

छिप्यौ छबीलौ मुहु लैस नीलैं अचर-चीर।
मनौ कलानिधि झलमैल कालिंदी कै नीर॥

विद्यापति नीले वस्त्र के, पवन वेग के कारण, नायिका के शरीर से हट जाने पर उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो नवीन जलधर के तले विद्युत रेखा सचरण कर रही हो :

ससन-परसु खसु अम्बर रे देखलि धनि देह।
नव जलधर तर सचर रे जनु बिजुरी रेह॥

और देखे

मोहू सौं तजि मोहु दृग चले लागि उहि गैल।
छिनकु छवाइ छवि गुरडरी छले छबीले छैल॥

(बिहारी)

"उस छैले ने एक क्षण के लिए अपना रूप दिखाकर मेरे नेत्रों को ऐसे छल लिया है कि वे अब मेरा परित्याग कर उसी के पीछे चलने लगे हैं जैसे गुड़ की डली के पीछे चीटे चलते हैं ·

ततहि धाश्रोल दुहु लोचन रे जतए गेलि वर नारि।
श्रासा लुबुध ने तेजए रे कृपनक पाछुभिखारी।।
(विद्यापति)

(वह सुन्दरी जिस श्रोर गई उसी श्रोर मेरी श्राँखे भी चल पडी, जैसे कृपण के पीछे भी भिखारी इस श्राशा से चलता जाता है कि कही श्रब उन्हे दया श्रा ही जाय।)

निश्चय ही दोनो उदाहरणो में विद्यापति बिहारी से चित्रात्मकता की दृष्टि से पीछे नही पडे है, किन्तु ऐसे स्थल कम श्राये हैं। बिहारी एक कारीगर की भाँति रुक-रुककर छेनी-हतौडे से पत्थर को काट-काट कर मूर्ति गढते हैं श्रौर उसमे एक-चिक्नाहट लाने का हर सम्भव यत्न करते हैं। विभिन्न हाव-भावो, श्रग-भगिमाश्रो एव गतियो को एक-एक मात्र ४८ मात्राश्रो वाले दोहो मे नियोजित कर बिहारी ने कला की सूक्ष्मता का जो उदाहरण प्रस्तुत किया वह वस्तुत. श्रौर शृगारी कवियो के लिए शक्य नही था। देखिए

बतरस लालच लाल की मुरली घरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाइ।।
नासा मोरि, नचाइ दृग, करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकै हिये, गडी कटीली भौंह।।

चमक, तमक, हासी, ससक, मसक, झपट लपटानि।
ए जिहि रति, सो ·ति मुकति, श्रौर मुकति श्रति हानि।।

कज नयनि मंजनु किए, बैठी व्यौरति बार।
कच श्रगरी बिच दीठि दै, चितवति नद कुमार।।

भावानुभाश्रो की इस सम्यक् योजना एव गत्यात्मक सौन्दर्य के इस चित्राकन-वैशिष्ट्य ने बिहारी को विलक्षण श्रेष्ठता प्रदान की है। रामधारी सिह दिनकर का यह कथन इस दृष्टि से बडा ही उपयुक्त है कि बिहारी के दोहो मे न तो कोई बडी श्रनुभूति है न कोई ऊँची बात, सिर्फ लडकियो की कुछ श्रदाएँ हैं, मगर कवि ने उन्हे कुछ इस ढब से चित्रित कर दिया है कि श्राज तक रसिको का मन कचोट खाकर रह जाता है। जो लोग कविता मे सिर्फ ऊँची श्रनुभूति श्रौर

ज्ञान की बडी-बडी बातो की तलाश मे रहते हैं, विहारी की कविताओ मे उन्हे अपने लिए चुनौती मौजूद मिलेगी। विहारी की कविताओ मे से आलोचना का यह सिद्धान्त आसानी से निकाला जा सकता है कि कविता की सफलता, भाव या विचार की ऊँचाई से नही, प्रत्युत कला और कारीगरी की उच्चता से है। कविता कामायनी मे भी सफल हो सकती है और बिहारी सतसई मे भी और दोनो सफलताएँ अपने-अपने स्तर पर अद्भुत और महान हैं।[४]

अलकार को काव्य का अनिवार्य तत्व मम्मट ने भी नही माना था और आज का साहित्य शास्त्री भी नही मानता। किन्तु "भूषण विनु न बिराजई कविता बनिता मित्र" केशव की यह उक्ति आज भी अपनी सत्यता की ड्योढी पीटती ही है। विद्यापति संस्कृत की परिपाटी पर चलते हैं और बिहारी भी। पर विद्यापति, जैसा कि पूर्व ही निवेदन कर चुका हूँ, अलकारो की सजावट मे रम कर भी चित्र अकन या भाव-विन्यास मे लगे रहे। विहारी को चित्र सजाने के लिए अलकारो की परमावश्यकता थी। बिहारी के दोहो मे एक ही साथ अनेक अलकार मिले-जुले दीख पडेंगे। पर वे अलंकार अलकार ही हैं भार नही, वे भूषण हैं दूषण नही। असगति का एक उदाहरण ले :

> दृग अरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
> परति गाठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥

ऐसे ही अनेक अलकार हर दोहे मे प्राप्त होगे।

विद्यापति के पदो के सम्बन्ध में ग्रियर्सन का कथन है—"Even when the sun of Hindu-religion is set, when belief and faith in krishna, and in that medicine of desease of existence, the hymns of Krishna's love, is extinct, still of Krishna and Radha will never deminish"

विहारी के सम्बन्ध मे भी कहा जा सकता है कि जब तक मनुष्य में देह सौन्दर्य के प्रति आकर्षण रहेगा, नर का नारी के प्रति और नारी का नर के प्रति जैविक सम्मोहन-भाव रहेगा, तथा जब तक मनुष्य मे चित्रो के प्रति मोह एव कला-कारीगरी के प्रति रुचि रहेगी और थोडे मे बहुत कुछ कहने-सुनने की प्रवृत्ति रहेगी तब तक विहारी के पाठको की कमी नही होगी।

विद्यापति यदि किमी यमुना-तीर पर कुज-कुटीर मे ले जाकर 'रति सुवि-सारद' कृष्ण और केलि कला प्रवीण राधा के सयोग-वियोग मे हमारे मन को निम-ज्जित कर तन्मय करते रहेगे तो बिहारी भी हमे "संघन कुज, छाया सुखद, सीतल मद समीर" से युक्त यमुनातीर पर ले जाकर राधा की "वह चितवन औरे कछू जिहि वस होत सुजान" का दर्शन कराकर 'सरस राग रति रग' के रस के छीटो से मन, प्राणो को एक हल्का झटका देकर सदैव रूप की प्यास जगाए रहेगे।

संदर्भ संकेत

१—दिनकर . रीतिकाल का नया मूल्याकन 'अवन्तिका' . काव्यालोचनाक· पृ० १४६-४७

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २५१

३—गीताकार विद्यापति मे राम वाशिष्ठ द्वारा उद्धृत, पृ० १५८

४—अवन्तिका काव्यालोचना का पृष्ठ १४८

सतसईकार बिहारी और मतिराम

● डा० गोपीनाथ तिवारी

बहुत अधिक समय नही हुआ कि देव और बिहारी मे कौन श्रेष्ठतर है, इस विषय पर बडा वाद-विवाद उठ खडा हुआ था। पक्ष और विपक्ष मे पुस्तके लिखी गईं। एक ने कहा, कहाँ बिहारी और कहाँ देव,[1] तो दूसरे ने कहा देव देव है, बिहारी वहाँ कैसे पहुँच सकता है[2]? तथ्य यह है कि यह विवाद लहरो की गिनाई ही थी क्योकि देव और बिहारी मे साम्य तो बहुत ही कम है, विषमताएँ ही अधिक हैं। कहाँ बिहारी का लघुकाय दोहा और कहाँ देव का भीम शरीरी कवित्त, कहाँ बिहारी का उत्साहात्मक चमत्कार और कहाँ देव का भाव गाम्भीर्य, कहाँ बिहारी की स्वतन्त्र प्रकृति और कहाँ देव का आचार्यत्व से बधा हुआ गुरु स्वभाव। देव अपने क्षेत्र के अधिपति हैं तो बिहारी अपने प्रात के सम्राट। इसे कौन नही मानेगा कि शृगारिक दोहो के लिखने मे बिहारी का स्थान अद्वितीय और अनुपम है। हाँ, यदि कोई इस क्षेत्र मे खम ठोक कर सामने आता है, तो वह है 'मतिराम'। मतिराम पुकार कर घोषित करता है—'मेरी भी परीक्षा कीजिए, मेरे दोहो को भी देखिए, इनकी सरलता एवं स्वाभाविकता से भरा रूप-सौष्ठव निहारिए।' बिहारी और मतिराम मे अनेक विस्मयकर साम्य हैं। दोनो महाकवि समकालीन थे। बिहारी की सतसई का निर्माण १७०४ के लगभग हुआ। बिहारी सतसई के अन्तिम दोहो[3] मे बलख की लडाई का वर्णन है जो १७०४ मे लडी गई थी।[4] मतिराम की सतसई का रचनाकाल १७१६ वि० है।[5] इसका निर्माण १५ वर्ष बाद हुआ। किन्तु दोनो सतसइयो मे आश्चर्यकारी समानताएँ दिखाई पडती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बिहारी की प्रसिद्धि ने मतिराम को प्रभावित किया था।

दोनो महाकवियो का छन्द दोहा है, दोहो के अलकरण पर भी दोनो ने बडा ध्यान दिया था। हाँ मूलभूत अन्तर है, दोनो की स्थापना मे, दोनो के कौशल मे। बिहारी ने वक्रता और चमत्कार पर ध्यान रखा है, मतिराम ने उसी बात को स्वाभाविक एव सरल ढग से कह दिया है। हाँ कल्पना को दोनो ही ने सजाया है। दोनो महाकवियो मे निम्नलिखित क्षेत्रो मे साम्य दिखलाई पडता है—विषय, भाव, उपमान, पद। दोनो ने सतसइयो मे शृंगार का पल्ला पकडा है। बीच-बीच मे भक्ति

और नीति का पुट भी दिया है। शृंगार के अनेक पक्षो का उद्घाटन दोनो ने विविध रूपो मे किया है। नाटिकाओ का नख-शिख दोनो ने चित्रित किया है। विना काजर की अँखियो पर दोनो ने नेत्र फेंके है। हाँ उन नेत्रो मे दोनो ने अपना व्यक्तित्व भरा ही है। बिहारी ने माधुर्य गुण एव शब्द लालित्य का सहारा लिया है।[६] मतिराम ने नायिका की स्वाभाविक भूल की दाद दी है।[७] नायिका के वस्त्राभूषणो को दोनो ने बारीकी से निहारा है। नायक-नायिकाओ की क्रीडाओ (चोर मिहीचनी इत्यादि) को भी दोनो ने समेटा है। तो नायिकाओ की मुद्राओ को भी काव्य मे उतार दिया है। बिहारीकी गवारिन और मतिराम की गँवारिन मे काव्य कौशल का अन्तर है, नही तो दोनो नागरी-नायिकाओ की प्रतिस्पर्धा मे उसे ला खडा किया है। बिहारी की गँवारिन हूज्यौ देकर इठलाती है। और नयन मार करती है[८] तो मतिराम की नायिका भी नयन-धनुहियो से तीर फेकती है।[९]

दोनो महाकवियो मे भाव साम्य भी बहुतायत से है। यह भाव साम्य दो क्षेत्रो मे दिखलाई पडता है—(१) भक्ति-क्षेत्र और (२) शृंगार-क्षेत्र।

(१) दोनो सतसइयो के मगलाचरण मे एक सी भक्ति-भावना मिलती है। दोनो कवियो ने श्री राधिका जी से प्रार्थना की है। दोनो ने स्पष्ट किया है कि राधा जी की प्रार्थना हम इसलिए करते हैं कि राधा जी भगवान् कृष्ण से बढकर है। दोनो के कृष्ण राधा को देख फूल उठते हैं। अन्तर है दोनो की अपनी शैली का। बिहारी भव बाधा दूर कराते हैं तो मतिराम मन का अज्ञान। बिहारी ने श्लेष के बल पर दोहे मे अनेक अर्थ भर दिये हैं। प्रचलित अर्थों के अतिरिक्त वैद्यक और रतिपरक अर्थ लगाए हैं। श्लेष के अतिरिक्त सात-आठ अलंकार और भी सामने ही रक्खे हैं। अलकार-चमत्कार के अतिरिक्त उक्ति का चमत्कार भी छिपा बैठा है—१—कबीर इत्यादि सन्तो ने नारी को भव की सबसे बडी बाधा माना है। बिहारी उससेभव-बाधा दूर कराते है। स्वय आगे बिहारी ने भी उसे बाधा की है जिससे जीव ईश्वर के निकट नही जा पाता।[१०] २—राधा बडी चतुरा हैं। वे किसी प्रकार भव-बाधा दूर कर ही देगी।

३—बिहारी वैधक, रगो का मिश्रण और कामोपचार जानते थे, यह भी इस दोहे से ज्ञात होता है। ४—गांव की भोली-भाली ग्रामीण राधा को नगरवासिनी 'नागरी' बनाकर उससे भव-बाधा दूर करवाई है। औषधोपचार की सुविधा नगर मे ही तो मिलती है। नागरिक बिहारी के लिए यह भी स्वाभाविक ही था। ५—'हरितदुति' के अर्थ चमत्कार सर्व विदित हैं।[११] मतिराम ने अपने मगलाचरण वाले दोहे में राधिका जी से मन के अन्धकार दूर करने की प्रार्थना की है।[१२] अन्ध-

कार को सूर्य और चन्द्र दोनो हरते हैं। किन्तु महाकवि मतिराम हृदय के तम-तोम को राधा के मुखचन्द्र से दूर कराने की कामना करते हैं। चन्द्रमा शीतलता, सुधा और आनन्द देता है। राधिका का मुख चन्द्रमा ही हो सकता है, सूर्य नही। वह मुख पूर्ण चन्द्रमा है जिसे देख कृष्ण का आनन्द-सागर बढ़ जाता है। अलंकार और माधुर्य गुण तो दोहे मे है ही, सबसे बडी बात है सरलता और स्वाभाविकता। केवल भक्तिपरक अर्थ लगाता है। कवि उस राधा से अपने मन के अन्धकार को दूर करना चाहता है, जो कृष्ण को भी आनन्द देती है, उधर बिहारी की राधा कृष्ण का रग बदल देती है, चमक छीन है, हरा-भरा बना देती है और श्यामता हर लेती है। ये सब सब गुण राधा मे वा, राधा की छाया मे हैं। इस प्रकार दोनो सतसइयो मे मगलाचरण दोहे एक से होते हुए भी अपनी विशेषताएँ साथ लिए हैं।

दोनो कवियो ने गोपाल को अपने हृदय मे बैठने के लिए निमत्रित किया है। दोनो ने कृष्ण को एक-सा गोप वेष किया है और फिर कृष्ण से इस वेष के साथ हृदय ही मे सदा रहने की प्रार्थना की है।[13]

दोनो ने सिर और उर के मुकुट और माला का वर्णन किया है। दोनो दोहो मे भक्ति से अधिक शृगार भाव प्रधान हो गया है। दानो मे उक्ति चमत्कार है। मतिराम कहते हैं कि उर पर गुजमाल और सिर पर मोर मुकुट पहिने हुए, दो कुजो मे बिहार करने वाले कृष्ण बिहारीपन की आदत छोडकर मेरे ही मन-रूपी-कुजो मे बिहार करिए। आप कुज बिहारी हैं, मेरा मन भी कुञ्ज है। कुञ्ज के समान अन्धकार और एकात यहाँ भी है। अत' मेरे मन मे वास कीजिए। कवि, भक्त अथवा नायिका की उक्ति कही जा सकती है। मतिराम ने गोपवेश के दो ही चिन्ह प्रकट किये हैं—मंजु गुज के हार उर और मुकुट मोर पद पुज। उधर बिहारीलाल ने गोपवेश के चार प्रतीक रखे हैं, मोर, मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उरमाल। बिहारी मे इस आकार की पूर्णता आ जाती है। 'बिहारीलाल' शब्द बडा चमत्कारपूर्ण है। बिहारीलाल कवि का नाम है। कवि कहता है, ऊपर दिए गोपवेश से मेरे मन मे बसिए। शृगार परक अर्थ बडा सरस और व्यग है, नायिका कहती है, ए लाल! लाल का अर्थ चमत्कार से भरा है। लाल का एक अर्थ है प्रिय, दूसरा लाल की भाँति अमूल्य और तीसरा अनुराग से भरे। सो ए लाल! तुम बिहारी हो, विहार करने वाले हो। एक स्थान पर कभी रहते नही हो, बस इधर-उधर क्रीडा करते फिरते हो। तो अपना यह बिहारीपन अब छोड दो, नही तो बदनाम हो जाओगे। यह आदत सज्जन और बडो के लिए शोभनीय नही है। अब एक स्थान पर स्थिर होकर बैठो। अच्छा, एक स्थान पर रहकर अपनी आदत से मजबूर होकर

क्रीडा करना, बिहार करना चाहते हो तो मेरे मन मे सदा के लिये बैठकर बिहार करो। तुम्हारे लिए यह स्थान सदा उपयुक्त है। कोई दूसरा न देख पाएगा, तुम्हे सुख मिलेगा, निन्दा भी न होगी। "सदा" शब्द भी चमत्कार पूर्ण है। नायिका कहती है—इस स्थान को कभी छोडना मत। दोहा उक्ति-चमत्कार का अच्छा उदाहरण है। उधर मतिराम मे थोडी सी रूपक की शोभा है, नही तो सरलता है। भक्ति परक अर्थ भी हो सकता है।

शृगार के क्षेत्र मे तो विहारी और मतिराम का व्यक्तित्व और अधिक स्पष्ट है, यद्यपि साम्य भी मिलता है।

परकीया नायिका नायक के यहाँ कुछ लेने आती है और नायक के हृदय की स्थिति वदल जाती है, इस भाव को दोनो महाकवियो ने अपने-अपने ढग से प्रगट किया है। साधारणतया समझा जाता है कि प्रेम बहने वाला पदार्थ है। प्रेम मे हृदय भी तरल हो जाता है वह लहरो की नाई चञ्चल एव तरङ्गित वन जाता है। किन्तु बिहारीलाल ने प्रेम को दही के समान जमवा दिया है। नायक के हृदय मे 'नेह' जम जाता है।[१४] जावन (दही) से दूध जमता है किन्तु यहा तो तेल या घी (नेहँ) भी उससे जम गया है। यह चमत्कार नही तो क्या है? इसके अतिरिक्त नायिका की हाव मुद्राएँ भी बडी सुन्दर हैं। नायिका जावनु लेकर चल दी! उसने आगे वढ कर बहाना किया—अरे मेरी कटोरी कहाँ गई? ऊँह! मेरा आँचल कहाँ अटक गया, अरी कल तू मेरे घर भी आना।" द्वार से आगे वढकर उसने मुस्कुराकर नायक की ओर देखा। बस नायक दर्दे दिल मोल ले बैठा, नेह जम गया। नायिका को जमाने का काम अपने घर मे करना था, परन्तु वही काम कर दिया, नायक के घर मे।

मतिराम का दोहा भी कुछ इसी प्रकार है।[१५] इसमे नायिका प्रेम प्रकट करने के लिए नैन जोडती है, मुख मोडती है और हँसती है। अतः अनुभाव मुद्राएँ मानी जायेगी। नायिका आग लेने नायक के घर आई थी, उसके हृदय मे आग लगा गई कुछ थोडा चमत्कार अवश्य है परन्तु विहारी जैसा नही। आग लेने आई थी, लगाने नही। पर वह तो लगा गई। वह भी नायक के हृदय मे। स्वाभाविकता भी है, प्रम मे 'आग लगना या लगाना' प्रसिद्धी है और कवि परम्परा बन गया है। मतिराम ने नायिका की कई मुद्राओ का सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है। पहिले नायक की ओर देखा, फिर कुछ लजा कर मुख मोडा, पुनः हँसी और थोडा सा प्रेम प्रकट कर दिया है।

प्रेम जगत मे नेत्रो का वडा महत्व है । नेत्र ही तो वे माध्यम हैं जो दिल पर नेह का बिरवा जमा देते हैं । ये नेत्र रूप को देखते हैं, पर इनकी प्यास नही बुझती अधिकाधिक देखने, निहारने और जोहने की इच्छा होती है । इस एक भाव को दोनो महाकवियो ने अपने-अपने दोहे मे भरा है । विहारीलाल कहते हैं[१६] कि रूप की प्यास देखने से नही बुझती । इस दोहे के तीन प्रसंग हैं अत. अर्थ भी तीन हो जाते हैं (१) भक्त या कवि सगुण रूप का उपासक है । अत. कहता है—हे भगवान तुम्हारा सगुण रूप वडा सुन्दर (सलोना) है । ज्यो-ज्यो इस रूप को पीता हूँ और अधिक प्यास बढती है । (२) नायक नायिका से कहता है—प्रिये तेरा रूप वडा सलोना (सुन्दर) है । वह रूप गुणो से भरा है । उसे जैसे-जैसे नेत्रो से पीता हूँ, प्यास वढती ही है । नायक नायिका की दूती या सखी से भी उक्त कथन कर सकता है । (३) गोपिका कृष्ण से कहती हैं—तुम्हारा सगुण रूप तो है ही, वह वडा सुन्दर (सलोना) भी है । जैसे-जैसे मैं इसे नेत्रो से पीती हूँ, प्यास बढती ही है । गोपियो का तात्पर्य है कि हम तो तुम्हारे सगुण रूप को ही चाहती हैं । सलोना शब्द वडा अर्थपूर्ण है—सलोने का अर्थ है लावण्यमय । नमक से अधिकाधिक प्यास लगती है । इसी प्रकार रूप देखने से प्यास वढती हैं । मतिराम भी इसी भाव को व्यक्त करते हैं ।[१७] सीधा प्रसग है और सीधा अर्थ । सखी नायिका से कहती है—पिय के नैन तेरी कोमल मुस्कानि पीते रहते हैं, बराबर देखते रहते हैं । वडा आश्चर्य है, हे चन्द्रमुखी, उसके नेत्रो की प्यास कम नही होती । चन्द्रमा भी बार-बार देखा जाता है । अतः चन्द्रमुखी भी बार-बार देखी जाती है । चन्द्रमा का आकर्षण नायिका के मुख मे है ।

दोनो महाकवियो ने विरहाग्नि से भरी नायिका की दयनीय दशा का चित्रण किया है । नेत्रो का अनवरत प्रवाह विरह-आग को शान्त नही कर रहा है । यही वर्णन दोनो के दोहो मे हुआ है । तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि विहारी का ध्यान चमत्कार के मोह मे फँसा है तो मतिराम वैज्ञानिक स्वाभाविकता का आश्रय लेता है, विहारी कहता है,[१८]---हे लाल ! तूने मेरी सखी को सबसे अद्वितीय वियोग-अग्नि दी है जो असीम है और समाप्त हो जाने पर नही आती है । भयकर से भयकर आग वर्षा के जल से बुझ जाती है । किन्तु यह आग नही बुझती है । पानी वरसता है तो वह आग और सरसती—फैलती है—मानो घी पड रहा है एव उस आग की लपटे (आदि) पानी की झडी (झर) से ही नही मिटती हैं । कैसा आश्चर्य है ! उधर इसी भाव का चित्रण मतिराम का देखिए[१९]—महाकवि मतिराम के नेत्रो से नदी नही बहवाई, वरन् समुद्र प्रवाहित कराया है । एक वैज्ञानिक तथ्य है कि सागर के पेट मे वडवाग्नि जीवित है । वियोग की आग यही आग है । नयनो का

सागर वियोग की वडवाग्नि को नही बुझा पाता है। चमत्कार लाते हुए भी स्वाभाविकता की रक्षा की है। नेत्रो से वहा हुआ सागर अथाह है, उधर बिहारी की अग्नि अपार थी। निश्चय ही मतिराम के सागर की 'अपारता' अधिक स्वाभाविक है क्यो कि सागर का नाम ही है "वारापार"। विहारी के आर-पार आग अपार है। इस प्रकार भाव साम्य होते हुए भी दोनो महाकवियो की वर्णन शैली मे बहुत अन्तर है। एक उक्ति की वक्रता को पकडे हुए है तो दूसरा स्वाभाविकता लिए है। यदि मतिराम ने वक्रता कही भी है तो भी बिहारी के सामने वक्रता अल्प है।

उपमान साम्य :—इसमे भी यह अन्तर देखा जा सकता है। दोनो महाकवियो ने नायिका की देह को "दीपशिखा सी" माना है। दोनो की कथन शैली देखिये। विहारी कहते हैं[२०]—कि नायिका का शरीर 'दीपशिखा' के समान है—जिसके आभूषण भी वडे चमकदार हैं। परिणाम यह है कि घर में दीपक वढा दिये जाने पर भी प्रकाश वना रहता है। अलकारो की छटा के अतिरिक्त अर्थ सम्वन्धी चमत्कार भी उपस्थित है। दिया क्यो वढाया जाता है—(१) तेल के पैसे वच जाते हैं, (२) नायक रति प्रसग मे दीपक बुझा देता है, (३) नायिका की इस प्रसिद्धि की परीक्षा की जाती है कि उसका शरीर सदा चमकता है और प्रकाश देता है। उस मुहल्ले के पाठक पुस्तक पढने का काम उसी प्रकाश मे करते होंगे। एक शका अवश्य उठ खडी होती है। सम्भव है—यह आभूषणो ही की करामात हो। सो वात नही है। यही नायिका एक वार कृष्णाभिसारिका वनी।[२१] काले वस्त्र पहिन लिए। घनघोर अधेरी रात्रि थी। वेचारी चल तो दी, वडी दुर्गति हुई। वह अपने को काले वस्त्रो मे छिपा न सकी क्योंकि उसकी "दीपशिखा सी देह" दूर तक प्रकाश फेक रही थी।

मतिराम भी इसी उपमान को पकड कर कहते हैं[२२] वास्तव में तेरी देह 'दीपशिखा सी' है। क्यो ? दीपशिखा दिन मे पीली पड जाती है, दुर्वल वन जाती है परन्तु रात्रि मे तेल पाकर चमक उठती है। यही हाल तेरी देह का है। यह दिन मे प्रिय से अलग होकर पीली पड जाती है, मुरझा जाती है। परन्तु रात्रि मे पति का नेह पाकर सुन्दर वन जाती है। दोहा स्वाभाविकता से युक्त है। एक दूसरे स्थान पर मतिराम कहते हैं[२३] मैं देह को दीपशिखा के समान अवश्य वताता हूँ, किन्तु दोनो में एक अन्तर भी है। देह दीपशिखा के समान होते हुए भी कुछ अपनी विशेषता लिए है। दीपक मे प्रकाश होता है। परन्तु उसकी ओर घरवाले विशेष ध्यान नहीं देते। परन्तु देह जैसे-जैसे चमकती है, वैसे-वैसे नायक का नेह (प्रेम) वढता जाता है। (२) दूसरा भाव यह भी हो सकता है। जैसे-जैसे दीपक जलता है, वैसे-वैसे

उसमे तेल की मात्रा बढाई जाती है । इसी प्रकार नायिका की देह सुन्दर होती जाती है । तो उसका स्नेह भी बढता जाता है । (३) नायिका की देह दीप-शिखा सी तो है किन्तु यह दीपशिखा भिन्न प्रकार की है । क्यो ? साधारण दीप-शिखा जलती है तो तेल घटता जाता है । यह देह चमकती है तो स्नेह बढता जाता है । तीसरे अर्थ में अलंकार प्रयोग की विशेषता प्रकट की गई है ।

दोनो महाकवियो ने 'जल चादर दीप' उपमान ग्रहण करके नायिका का सुन्दर वर्णन किया है ।[२४] बिहारी कहते हैं—नायिका ने श्वेत साडी पहिन रखी है जो पाँच तोले की है उससे नायिका के शरीर की शोभा ऐसी प्रतीत होती है जैसी कि जल चादर के पीछे दीपको की शोभा । पाँच तोले की साडी कहने मे बिहारी ने चमत्कारिक ढङ्ग पकडा है । बिहारी का भाव है (१) नायिका कोमलागी है अतः पाँच तोले या एक छँटाक भार की साडी पहिन रखी है, (२) कामदेव के पाँच बाणो की तुलना मे पाँच तोले की साडी ही उपयुक्त है । (३) पाँच तोले वाली साडी से व्यजना की गई है कि साडी इतनी महीन है कि जल चादर दीपो के समान नायिका के अग दिखलाई पडते हैं । मतिराम ने इसी उपमान को ग्रहण कर कहा है[२५] बरौनियो से बहते आँसू जलचादर का रूप लिए हैं । स्वच्छ कपोल की चमक दीपक है । इस प्रकार आँखो से बह कर आँसू कपोल पर होकर जाते हैं । आसू के पीछे कपोल ऐसी शोभा गहती है मानो जल-चादर के पीछे दीपक दिखाई दे रहा है । कपोलो पर बहते श्वेत आसुओ का स्वाभाविक उपमान है । उधर बिहारी पँचतोलिया साडी को जलचादर बताते हैं और नायिका के सभी अगो को दीपक बताते है । यह दोनो कवियो की दृष्टि का अन्तर है ।

दोनो कवि नायिका के नेत्रो को मृग मानकर उनसे आखेट कराते हैं । बिहारी कहते हैं—कामदेव बडा निपुण शिकारी है । उसने अद्भुत शिकार खेलना सिखाया है । संसार मे नगर के रहने वाले काननचारी मृगो का शिकार खेलते हैं । किन्तु यहाँ विपरीत अवस्था है । काननचारी (श्लेष मे कानो तक फैले हुए) नैन-रूपी मृग चतुर मनुष्यो का शिकार खेलते हैं ।[२६] ये मृग मूर्खों पर नही, नगर के रहने वाले असुरो पर वार करते है । बिहारी ने नगर के रहने वालो की शृगारिक प्रवृत्ति पर भी व्यंग किया है । मतिराम ने भी नायिका के नेत्रो को मृग बताया है[२७] । ये नयन रूपी हरिन शिकार खेलते हैं । किन्तु इनके आखेट मे स्वाभाविकता है । चमत्कार नही । वे मृग, मृगो के शिकार मे सहायता देते हैं । कामरूपी बहेलिया एक पाश लिए है । वह नायिका के नयन-मृगो के द्वारा नायक के नयन-मृग को पकडता है ।

केवल मृग ही नही, दोनो ने नायिका के नेत्रो को मुँह जोर तुरग[२८] माना है तो सुभट वीर योद्धा[२९] भी बताया है । तुरंग और सुभट बन गए नेत्रो का तव बाण

भी बनाना ही चाहिये ।[30] ऐसे अनेक उपमान दोनो मे मिलेंगे जो बहुत समानता रखते हैं । साम्य रखते हुए भी दोनो की शैली बडी भिन्न है ।

उपमान साम्य ही नही, दोनो मे पदो की समानता भी मिलती है ।

(क) लाज लगाम न मानही नैंना मो बस नाहिं,
ये मुंह जोर तुरंग लौं ऐंचत हूँ चलि जाहिं । (बिहारी)
मानत लाज लगाम नहिं, नैकु न गहत मरोर
होत तोहि लखि बाल के, दृग तुरग मुंह जोर (मतिराम)

(ख) जासो लागैं पलक दृग, लागै पलक पलौन ।। (बिहारी)
नवल बाल पलका परी, पलक न लागत नैन (मतिराम)

(ग) वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान (बिहारी)
औरै कछु चितवनि चलनि, औरै मृदु मुस्कानि (मतिराम)

पदो और शब्दो का साम्य यह स्पष्ट करता है कि बिहारी का प्रभाव मतिराम पर अवश्य पडा था । हम यह तो नही कह सकते कि मतिराम जैसे समर्थ कवि ने बिहारी से पद और शब्द उठा लिए हैं । भाव एव उपमान साम्य के कारण भी शब्द साम्य आ गया है । अनजाने रूप से भी बिहारी के प्रभाव ने यह काम करा दिया है । जब हम किसी कृति से प्रभावित होकर उसे पचा जाते हैं तो लिखते समय उसके कुछ पद एवं शब्द प्रतिफलित हो जाते हैं । बिहारी में गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती एवं अमरु शतक के भाव, विचार, विषय एवं कही-कही शब्द भी आ बैठे हैं ।

संदर्भ संकेत

१—बिहारी और देव, ले० लाला भगवानदीन ।

२—देव और बिहारी, ले० कृष्णबिहारी मिश्र ।

३—बिहारी रत्नाकर, सतसई सप्तक एवं मानसिंह टीका का ७११ वाँ दोहा ।

४—सतसई सप्तक (स० डा० श्यामसुन्दरदास) प्र० स० भूमिका पृ० २५ ।

५—संवत् ग्रह ससि जलधि छिति, छठ तिथि वासर चन्द
६ १ ७ १

६—रस सिगार मजन किए, कजन भंजन दैन,
अंजन रजन हूँ विना, खजन गजन नैन ।। (वि०)
७—सखी सलोनी देह मैं, सजे सिगार अनेक,
कजरारी अँखियान मैं भूल्यौ काजर एक ।। (म०)
८—गदराने तन गोरटी, ऐपन आड लिलार ।
हूठ्यौ दै इठनाय दृग करै गँवारि सुमार ।।
९—नागरि नैन कमान सर करत न ऐसी पीर ।
जैसी करत गँवारि के दृग धनुही के तीर । म० स० ५
१०—या भव पारावार कौ उलघि पार को जाय ।
तिय छवि छाया ग्राहिनी गहै वीच ही आय ।।
११—मेरी भव वाधा हरौ राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाँई परै स्यांम हरित दुति होय ।।
१२—मो मन तम तोमहि हरौ राधा को मुख चन्द ।
वढ़ै जाहि लखि सिन्धु लौ नन्दनन्दन आनन्द ।।
१३—मोर मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल ।
इहि वानक मो मन वसौ सदा विहारीलाल ।। (विहारी)
मजु गुज के हार उर मुकुट मोर पर पुज ।
कुजविहारि निहारिये मेरेई मन कुज ।। (मतिराम)
१४—फेरु कछुक करु पौरि तै, फिरि चितई मुसकाय ।
आई जामन लेन तिय, नेहै गई जमाय ।।
वि० दो १८२
१५—नैन जोरि मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाइ ।
आगि लैन आई हियैं, मेरे गई लगाइ ।। (मतिराम)
१६—त्यौं-त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं-ज्यौ पियत अघाय ।
सगुन सलोने रूप की जु न चख तृषा वुझाय ।। वि० र० ४१७
१७—पियत रहत पिय नैन यह तेरी मृदु मुसक्यानि ।
तऊ न होति मयक मुखी तनक प्यास की हानि ।। मति०
१८—लाल तिहारे विरह की, अगिनि अनूप अपार ।
सरसै वरसै नीरहू, झरहू मिटै न झार ।। (विहारी)
१९—नारि नैन के नीर को, नीरधि वढै अपार ।
जरै जौ न वियोग कै वडवानल को झार ।। (मतिराम)
२०—अग अग नग जगमगै, दीपसिखा सी देह ।
दिया वढाए हूँ रहै, वडौ उजारौ गेह ।। वि० दो० १४७

२१—निसि अँधियारी की लपट, पहिरि चली पिय गेह।
कहौ दूराई क्यौं दुरै, दीपसिखा सी देह।। मति०

२२—सखी तिहारी साँच यह दीपसिखा सी देह।
दिन दीपति पियराति है, अधिक राति रति नेह।।

२३—तेरी औरे भाँति की दीपसिखा सी देह।
ज्यौं-ज्यौं दीपत जगमगै, त्यौं-त्यौं बाढत नेह।। मति०

२४—सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छबि होति।
जल चादर के दीप लौं, जगमगाति तन जोति।।
वि० बो० १२१

२५—अँसुआ बरुनी ह्वै चलत जलचादर के रूप।
अमल कपोलनि की झलक झलकति दीप अनूप।। मति०

२१—निसि अँधियारी की लपट, पहिरि चली पिय गेह,
कहौ दुराई क्यो दुरै, दीपसिखा सी देह। मति०

२२—सखी तिहारी साँच यह दीपसिखा सी देह।
दिन दीपति पियराति है, अधिक राति रति नेह।। मति०

२३—तेरी औरै भाति की दीप सिखा सी देह।
ज्यौं-ज्यौ दीपति जगमगै, त्यौ-त्यौ बाढत नेह।।मति०।।

२६—खेलन सिखए अलि भले चतुर अहेरी मार,
काननचारी नैन मृग नागर नरनि सिकार। (बिहारी)

२७—खेलत मार सिकार है जोरे पास समेत।
नैन मृगनि सो बाँधिकै नैन मृगनि गहिलेत। मति०

२८—बि० बोधिनी २७४, मतिराम सतसई ३७३

२९—बि० बोधिनी ६८ ” ३२६

३०—बि० बो० २२६ व ७३ सतसई सप्तक मे मतिराम सतसई ४०१ व ९२।

———

ब्रजभाषा में सतसई की परंपरा

● डा राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

सतसइयो के सम्बन्ध मे चार बाते विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—(१) वे मुक्तक-काव्य हैं, (२) उनकी परम्परा प्राकृत से प्रारम्भ हुई थी, (३) इनकी रचना दोहा छन्द मे हुई है, तथा (४) इनमे छन्दो (दोहो) की संख्या सात सौ, पर बल दिया गया है।

रचना शैली के विचार से काव्य दो प्रकार का होता है, प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध-काव्य मे एक आदर्श रख कर किसी लोक प्रचलित कथा के आधार पर एक कथा लिखी जाती है और उसमे जीवन के विभिन्न पक्षो से सम्बन्धित घटनाओ का समावेश रहता है इसके छन्दो मे पूर्वापर सम्बन्ध रहना अनिवार्य है। प्रबन्ध का समस्त सौन्दर्य प्रबन्ध कल्पना पर अवलम्बित रहता है। प्रसग का थोडा सा भी अनौचित्य उसकी रस-सिद्धि पर व्याघात कर देता है।

मुक्तक काव्य मे प्रत्येक पद्य का प्रथक् अस्तित्व है और वह स्वयं पूर्ण रहता है। मुक्तक के छन्द स्वतन्त्र रूप से अपने समस्त भावो को बिना किसी बाहरी सहायता के व्यक्त करने मे पूर्णतया समर्थ रहते हैं। इस सम्बन्ध मे आनन्दवर्द्धन का मत उल्लेखनीय है—

"पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्" (ध्वन्यालोक) अर्थात् पूर्वापर प्रसग के लिए, और पद्यो का सहारा न होने पर भी जिसमे रस की अभिव्यक्ति हो जाए उसे मुक्तक कहते हैं।

हमारे विचार से मुक्तक के अन्तर्गत "विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रस-निष्पत्ति." भाव, विभाव, अनुभाव वाले भरत मुनि के सूत्र के आधार पर 'रस-सिद्धि' अत्यन्त कठिन है। उक्ति-वैचित्र्य अथवा वाग्वैदग्ध के द्वारा मुक्तक का सौन्दर्य-साधन हो जाता है।

मुक्तक मे पूर्वापर प्रसंग की कल्पना का कार्य सहृदय पाठक पर छोड दिया जाता है। मुक्तक का आनन्द लेने के लिए श्रोता या पाठक को स्वय ही सम्पूर्ण प्रसंग का अध्याहार करना पडता है। मुक्तक के स्निग्ध छीटों के कारण हृदय-कलिका थोडी

देर के लिए खिल उठती है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो में "यदि प्रबन्ध-काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" सभा समाज की शोभा के हेतु वनस्थली का आयोजन नही किया जा सकता है, इसके लिए तो गुलदस्ता ही उपलब्ध किया जा सकता था। बस मुक्तको के लोकप्रिय होने का यही कारण है। राजाओ, महाराजाओ की सभाओ तथा कवि-मण्डलियों मे प्रबन्ध-पाठ के लिए समय मिलना कठिन था। वहाँ सम्मान पाने के लिए मुक्तक का ही आश्रय ग्रहण किया जा सकता है। निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते हैं कि सभा-समाजो की चहल-पहल के कारण मुक्तक-काव्य का विशेष प्रचार हुआ। इन्ही मुक्तको के सग्रह विभिन्न शतक, सप्तशती, सतसई आदि मे मिलते हैं।

आर्यों के प्राचीन साहित्य मे दो प्रकार की रचनाएँ विशेष रूप से मिलती हैं :

(१) आध्यात्मिकता अथवा ज्ञान-काड सम्बन्धी, और (२) कर्मकांड सबधी। प्रथम के अन्तर्गत उपनिषद, दर्शन तथा बौद्धो और जैनियो के धर्म-ग्रथ उल्लेखनीय हैं। द्वितीय के अन्तर्गत ब्राह्मण-ग्रथ, गृहसूत्रादि, प्राचीन स्मृतिया एवं पौराणिक साहित्य आता है। इन रचनाओ का दृष्टिकोण धार्मिक था और वे प्राय पंडित वर्ग तक सीमित थी।

विक्रम संवत के आसपास एक तीसरे प्रकार के साहित्य का श्री गणेश हुआ। इसमे ऐतिहासिकता-पूर्ण सरस कवित्व का प्राधान्य था। जनकवि-विरचित सरस कवित्व-पूर्ण मुक्तको, छोटे-छोटे पदो द्वारा जनसाधारण का मनोरंजन ही इसका उद्देश्य था। आध्यात्मिकता और कर्मकाड से उसका कोई सम्बन्ध न था।

लौकिक काव्य की ये रचनाएँ सर्वप्रथम जन-साधारण की भाषा 'प्राकृत' मे हुईं। इस प्राकृत को वैयाकरणो ने 'महाराष्ट्र प्राकृत' कहा है। इन सरस रचनाओ का सर्वप्रथम ग्रन्थ 'गाहा-सत्तसई' है। इसके रचना काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है, परन्तु यह निर्विवाद है कि इसका सकलन विक्रम के प्रथम शतक आन्ध्र-राजघराने के शातवाहन के वशज राजा हाल द्वारा किया गया था। सकलन-कर्ता ने लिखा है कि उस समय १ करोड के लगभग गाथाएँ प्रचलित थी। उनमे से चुन कर सात सौ गाथाएँ इस सकलन मे संग्रहीत हैं। सभव है उक्त कथन मे कुछ अतिशयोक्ति हो, परन्तु इस प्रकार की प्रचलित गाथाओ का एक नरेश द्वारा सकलित किया जाना उनके महत्व, मूल्य एव उनकी लोक-प्रियता का परिचायक है।

जनसाधारण की भाषा 'प्राकृत' मे ऐसी सरस एव लोकप्रिय रचनाओ का बाहुल्य होने पर पडितो का ध्यान भी उस ओर गया और सस्कृत भाषा में भी इस प्रकार की रचनाएँ होने लगी।

संस्कृत में की गई इस प्रकार की काव्य-रचना का सर्व-प्राचीन स्वरूप हमे (अमरुक) कवि की रचना—'अमरुक शतक' मे दिखाई पड़ता है। इसके पूर्व की रचनाएँ यदि थी, तो वे अप्राप्य हैं। अमरुक का समय ६वी शती से कुछ पूर्व ठहरता है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्द्धन (१०वी शती) ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है तथा इसकी गणना सर्वोत्तम मुक्तक रचना के रूप मे की है।

अमरुक की कविता मनोरम शृगार से आकण्ठ भरी हुई है। इसमे प्रेम का सजीव चित्रण किया गया है। कामी और कामिनियो की विभिन्न अवस्थाओ से उत्पन्न मनोवृत्तियो का सूक्ष्म विश्लेषण करके मनोरम विवरण प्रस्तुत करना 'अमरुक शतक' की सबसे बडी विशेषता है। अमरुक के विषय मे यह कहा जाता था कि उसके एक-एक छन्द के ऊपर सौ-सौ प्रबन्ध काव्य न्योछावर हैं—"अमरुक कवेरेक श्लोकः प्रबन्धशतायते।"

प्राकृत की 'गाथा-सतसई' तथा अमरुक की सस्कृत-रचना 'अमरुक-शतक' के समान गोवर्द्धनाचार्य की 'आर्या-सप्तशती' एक अन्य प्रसिद्ध रचना है। इसका रचना काल विक्रमी सवत् की १२वी शती के अन्तिम चरण (११७३) के आस-पास माना जाता है। गीत-गोविन्द के रचयिता जयदेव तथा गोवर्द्धनाचार्य समकालीन थे और दोनों ही बग देश के अन्तिम राजा लक्ष्मण सेन के आश्रित थे।

'आर्या-सप्तशती' की रचना के पहिले आर्या जैसे छोटे छन्द मे किसी अन्य कवि ने ऐसा लाघव नही दिखाया था। 'आर्या-सप्तशती' मे शृंगार रस के संयोग और वियोग, दोनो ही पक्षो से सम्बन्धित कुशल एव सजीव वर्णन हैं। गोवर्द्धनाचार्य ने नायिकाओ की नाना प्रकार की चेष्टाओ के अत्यन्त मार्मिक वर्णन लिखे हैं।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिए। गोवर्द्धनाचार्य ने 'गाथा-सतसई' की ही देखा-देखी सस्कृत मे 'आर्या-सप्तशती' लिखी थी। उन्होंने स्वयं कहा है :

> वाणी प्राकृतसमुचितरसा बलेनैव संस्कृत नीता।
> निम्नानुरूपनीरा कलिंदकन्येव गगनतलम्॥

अर्थात् "वाणी प्राकृत मे ही रसीली लगती है, उसे मैं बलपूर्वक संस्कृत मे बदल रहा हूँ। नीचे बहने वाली यमुना को आकाश की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।" 'आर्या-सप्तशती' मे विषय और छन्द-संख्या, दोनो ही दृष्टियो से गाथा सतसई का अनुकरण किया गया है। केवल एक अन्तर है। गाथाओ मे पाई जाने वाली वन्य सुकुमारता का आर्याओ मे सर्वथा अभाव है। आर्याओ की नायिकाओ मे नागरिक जीवन की कृत्रिमता आ गई है।

ब्रजभाषा (हिन्दी) में दो प्रकार की सतसइयाँ पाई जाती हैं—(१) नीति, सुभाषित अथवा सूक्ति-सतसइयाँ और (२) शृंगार सतसइयाँ। प्रथम के अन्तर्गत

रहीम, तुलसी और वृन्द की सतसइयाँ आती हैं तथा द्वितीय के अन्तर्गत बिहारी सतसई, मतिराम-सतसई, रसनिधि-सतसई, राम-सतसई और विक्रम-सतसई आती हैं। रसनिधि ने 'रतन-हजारा' लिखा था। उसका सक्षिप्त सस्करण रसनिधि-सतसई कहलाने लगा है। एक धार्मिक ग्रन्थ दुर्गा-सप्तशती भी मिलता है। आधुनिक काल में 'वियोगी हरि' ने 'वीर-सतसई' लिखी है। इस प्रकार ब्रजभाषा-साहित्य-सागर मे अनेक सतसइयाँ पाई जाती हैं।

शृंगार-सतसई की परम्परा बिहारी से प्रारम्भ होती है। शेष सतसइयाँ उन्हीं के अनुकरण पर लिखी गई हैं। बिहारी गाथा-सतसई, आर्या सप्तशती तथा 'अमरुक-शतक' से भली प्रकार प्रभावित हुए थे।

बिहारी के बहुत से दोहे अपभ्रन्श के दोहो से भी मिलते हैं।

बिहारी के पहिले भी हिन्दी मे शृंगार रचना होती थी। रहीम के ग्रन्थ 'नगर-शोभा' मे बराबर शृंगार के दोहे मिलते हैं। रहीम ने सतसई लिखी थी या नही, इस सम्बन्ध मे मतभेद है। रहीम सतसई के लगभग आधे छन्द मिलते हैं।

बिहारी के पहिले कृपाराम ने अपनी 'हित-तरगिणी' मे लिखा था कि :

बरनत कवि सिंगार-रस, छन्द बडे बिस्तारि।
मैं बरन्यौं दोहान बिच, याते सुघर बिचारि॥

वास्तव मे बात यह है कि दोहा जैसे छोटे छन्द को एक प्रकार से समास-पद्धति के चमत्कार-प्रदर्शन, वाग्वैदग्ध एव काव्य-कौशल का माध्यम माना गया है। अनेक कविजनो ने दोहा-रचना की प्रशसा की है। यथा :

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यौं रहीम नर कुडली, सिमिट कूदि चलि जाहिं॥
रूप कथा पद चारु पट, कंचन दोहा लाल।
ज्यौं-ज्यौं निरखत सूक्ष्म-गति, मोल रहीम बिसाल॥

—रहीम

मनिमय दोहा दीप जहँ उर-घर करै प्रकास।

—तुलसी

बिहारी ने दोहा-रचना मे चरम सफलता प्राप्त की है। दोहा जैसे छोटे छन्द मे भाव-व्यजना करने मे वह बेजोड हैं। इन्होंने सचमुच ही 'गागर में सागर' चरितार्थ किया है।

बिहारी के दोहो के विषय मे प्रचलित यह लोकोक्ति सर्वथा सार्थक है :

सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर ॥

'सतसई' संस्कृत 'सप्तशती' का रूप है। मुक्तको को सौ के बन्धन में बांधने की परम्परा सी चली आती है। मुक्तको के सग्रहो में सात सौ की संख्या के लिए सबसे अधिक आग्रह दिखाई देता है। रसनिधि ने 'हजारा' लिखकर मुक्तक को 'हजारी' का पद देने का प्रयत्न किया, परन्तु वह लोक को रुचिकर न हुआ और 'हजारी' का निर्माण कम कवियो ने ही किया है। सात सौ से कुछ अधिक पद्य रहने पर भी संग्रह को 'सतसई' ही कहा जाता है। मन्त्र-साहित्य में भी सात सौ की संख्या को ही महत्व दिया जाता है। हो सकता है कि अनुप्रास-प्रियता, सतसई शब्द का श्रुति-माधुर्य उसकी लोक-प्रियता का कारण बन गया हो।

सूक्ति-सतसई—सतसइयो के दो भेद हैं, सूक्ति-सतसई और शृंगार-सतसई। सूक्ति का प्रधान उद्देश्य है उपदेश। नित्य प्रति की बातो को सूक्तिकार एक ऐसे मार्मिक ढंग पर कहता है कि वह हृदय पर सीधा प्रभाव डालने में समर्थ होता है। सूक्ति या सुभाषित का अर्थ है 'अच्छा कथन' और इसके अन्तर्गत सामाजिक, नैतिक, धार्मिक तथा पारमार्थिक तथ्यो को एक नवीन एवं विशेष ढंग से कह कर उपदेशात्मक बना दिया जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि सूक्तिकार प्रत्युत्पन्नमति एवं वृहद् ज्ञान भण्डार से युक्त हो। दृष्टांत सूक्तिकार का सबसे बडा बल है। तुलसी और वृंद की सतसइयाँ सूक्ति सतसई हैं।

तुलसी-सतसई—(जन्म सम्वत् १५८९) इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के बारे में विद्वानो मे मतभेद है। दोहावली के लगभग डेढ़ सौ दोहे (सतसई) में मिलते हैं। बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'सतसई-सप्तक' में इसे सर्वथा प्रामाणिक ग्रन्थ माना है और उन्होंने तुलसी-सतसई का इस प्रकार विवेचन किया है—"तुलसी-सतसई में सात सर्ग हैं। प्रथम सर्ग मे भक्ति विषयक दोहे हैं, द्वितीय मे उपासना पराभक्ति के, तीसरे मे सांकेतिक वक्रोक्ति से राम-भजन किया है। चौथे, पाँचवे और छठे में क्रमशः आत्म-बोध, कर्म-सिद्धान्त और ज्ञान-सिद्धान्त सम्बन्धी दोहे और सातवें सर्ग के दोहो में राजनीति का निरूपण किया गया है।" सूक्ति की कसौटी पर गोसाईं जी के दोहे सर्वथा खरे उतरते हैं, उनमे महान् तथ्यो का कथन है—

ज्ञान गरीबी गुरु धरम, नरम वचन निरमोख।
तुलसी कबहुँ न छाँडिए, सील, सत्य संतोख ॥१॥

स्वामी होनो सहज है, दुरलभ होनो दास।
गाडर लायो ऊन को, लाग्यो चरन कपास ॥२॥

बरखत हरखत लोग सब, करखत लगै न कोइ ।
तुलसी भूपति भानु सम, प्रजा भाग बस होइ ।।३।।

हरे चरहिं तापहिं बरे, फरे पसारहिं हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ ।।४।।

वृन्द-सतसई—(जन्म सम्वत् १७२० के आस-पास) नीति पर इनके दोहे सर्वाधिक प्रचलित हैं। उनमे सर्वत्र एक रस-विदग्धता है। वृन्द की भाषा सरल, मुहावरेदार तथा कहावतो से पूर्ण है। यथा :

बुरे लगत सिख के वचन, हिए बिचारो आप ।
करुवे भेषज बिन दिये, मिटे न तन को ताप ।।१।।

अपनी पहुँच बिचारि कै, करतब करिए दौर ।
ताते पाँव पसारिए, जेती लाबी सौर ।।२।।

अति परिचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय ।।३।।

सबै सहायक सबल के, निबल न कोउ सहाय ।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाइ ।।४।।

रहीम-सतसई—(जन्म सम्वत् १६१०) अब्दुर्रहीम खानखाना वृन्द की टक्कर के ही सूक्तिकार हैं। इनकी सतसई की प्रामाणिकता के बारे मे भी मतभेद है इनके लिखे हुए लगभग साढे तीन सौ दोहे मिलते हैं। इनकी सूक्तियो के दृष्टान्त बेजोड हैं :

काज परे कछु और है, काज सरे कछु और ।
रहिमन भाँवर के भए, नदी सेरावत मौर ।।१।।

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ ।
छेद में डडा डारि के, चहै नाँद लइ लेइ ।।२।।

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ मागन जाँइ ।
उनते पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाँह ।।३।।

उरग, तुरग, नारी, नृपति, नीच जाति हथियार ।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न वार ।।४।।

इनके अतिरिक्त शृगारी कवियो ने भी नीति-सम्बन्धी सूक्तियाँ लिखी हैं। 'विहारी-सतसई' एवं 'मतिराम-सतसई' की कई सूक्तियाँ तो खूब प्रचलित हैं :

(अ) बिहारी :

जो चाहै चटक न घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइए, नेह चीकने चित्त ॥१॥

बढत-बढत सम्पति-सलिल, मन-सरोज बढि जाय।
घटत-घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाय ॥२॥

(ब) मतिराम :

राधा मोहन-लाल को, जाहि न भावत नेह।
परियो मुठी हजार दस, ताकी आँखिन खेह ॥१॥

अद्‌भुत या धन को तिमिर मो पै कह्यौ न जाइ।
ज्यों-ज्यों मनिगन जगमगत, त्यों-त्यों अति अधिकाई ॥२॥

शृङ्गार-सतसई—'रचना-चमत्कार आ जाने से सूक्ति का उद्देश्य पूरा हो जाता है, किन्तु शृंगार-रस-परक कविता मे रस-सिद्धि आवश्यक है। अतः शृंगार-सतसइयाँ 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के उदाहरण स्वरूप समझी जानी चाहिए।

सर्वत्र व्याप्त एवं रसराज होने के कारण शृगार-रस-परक कविता सर्वप्रिय होती हैं। शृंगार-सतसइयों के इतने अधिक प्रचार का कारण शृंगार-रस की लोक-प्रियता ही है। इस कोटि के अन्तर्गत बिहारी-सतसई, मतिराम-सतसई, रसनिधि-सतसई, राम-सतसई तथा विक्रम सतसई, ये पाँच सतसइयाँ आती हैं।

शृंगार सतसइयो की परम्परा बिहारी-सतसई से प्रारम्भ होती है। उत्कृष्टता की दृष्टि से भी बिहारी-सतसई का स्थान प्रथम है। महाराज जयसिंह की आज्ञानुसार बिहारी लाल ने 'सतसई' की रचना की थी।

हुकुम पाय जयसाहि को, हरि-राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ॥

अब हम प्रत्येक 'सतसई' के कुछ दोहे उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

बिहारी-सतसई—(जन्म सम्वत् १६५२) रसिक-समाज में सबसे अधिक सम्मान बिहारी-सतसई का है। काव्य रीति के प्रत्येक अंग-उपांग की विशेषताएँ उसमे मिलती हैं, एक ही दोहे मे मधुर भावाभि व्यंजना, पद-लालित्य, अलंकार-विधान, शब्द-सौष्ठव, सब कुछ एक साथ मिल जाते हैं :

जुरे दुहुन के दृग झमकि, रुकै न झीनें चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यों, परै गोल पर भीर ॥१॥

लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुँहजोर तुरग लौं, ऐंचत हूँ चलि जाहिं ।।२।।

बिथुर्‍यौ जावक सौति पग, निरखि हँसी गहि गाँस।
सलज हँसौंही लखि लियौ, आधी हँसी उसाँस ।।३।।

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति ।।४।।

इनका प्रत्येक शब्द सार्थक एवं साभिप्राय है।

मतिराम-सतसई—(जन्म सम्वत् १६७४ के आसपास)—यह सतसई किसी भोगनाथ नामक राजा को समर्पित है। इसके अधिकाश दोहे मतिराम कृत 'रस-राज और 'ललित ललाम' ग्रन्थो से लिए गए हैं। इनके भाव और इनकी भाषा सर्वथा स्वाभाविक है :

लिखति अवनि-तल चरन सो, विहँसत विमल कपोल।
अधनिकरे मुख-इदु तैं, अमृत-विन्दु से बोल ।।१।।
नवल नेह मैं दुहुनि कौ, लखी अपूरब बात।
ज्यौं सूखति सब देह है, त्यौं पानिप अधिकात ।।२।।
चद-किरन लगि बाल-तन उठै आगि प्रति जागि।
परत करत दिनकर किरनि, ज्यौं दरपनि मैं आगि ।।३।।
मन्त्रिनि के बस जो नृपति, सो न लहति सुख-साज।
मनहिं बाँधि दृग देत दृग, मन-कुमार कौं राज ।।४।।

रसनिधि-सतसई—(रचना काल सम्वत् १६६० से सम्वत् १७२७ तक) यह रसनिधि कवि के 'रतन-हजारा' का सक्षिप्त सस्करण है। इनकी कविता मे तन्मयता खूब है। फारसी के ढग की तबियतदारी के फेर मे पड जाने से कही-कही सुरुचि की अवहेलना हो गई है ·

रसनिधि जब कबहूँ बहै, वह पुरबइया बाइ।
लगी पुरातन चोट जो, तब उभरति है आइ ।।१।।
तौ तुम मेरे पलन तैं, पलक न होते ओट।
व्यापी होती जो तुम्हैं, आह भए की चोट ।।२।।
दरदहिं दै जानत लला, सुधि लै जानत नाहिं।
कहो बिचारे नेहिया, तुब घाले किन जाहिं ।।३।।
श्रवन सुनौ है यह नयौ, नेह नगर में भाव।
देत न तहँ मन भावतौ, मन के साहे पाव ।।४।।

राम-सतसई—(रचना काल सम्वत् १८६० से १८८० तक) इसके रचयिता रामसहाय दास हैं, जो काशी नरेश के आश्रित थे। इसमे माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रचुरता है :

जान कहौ तौ जाइए, कुसल रहौ हे कंत।
हौं बाचिहौं हिमत सौं, सुख साचिहौं वसंत ॥१॥
नित घट उठवाती अटी, मो देती न उठाय।
आन कका के माथ की, साथ व जाउँ लवाय ॥२॥

विक्रम-सतसई—(रचनाकाल १८३९ से १८८६ तक) इसके रचयिता महाराज विक्रम साहि हैं, जो बुंदेलखण्ड की चरखारी रियासत के राजा थे। विक्रम-सतसई के सम्बन्ध मे कोई विशेष उल्लेखनीय बात नही है। उदाहरण देखिए :

मिलत अगाऊ बिन कहै, यहै दोष इन माहिं।
उर उरझावत हठ नयन, सुरझावत फिर नाहिं ॥१॥

होरो मे जोरी करत, भोरी करि ब्रजबाल।
कहूँ ताकत घालत कहूँ, भरि-भरि मूठ गुलाल ॥२॥

अरुन उदै लौ तरुनई, अंग-अग झलकी आय।
छन-छन तिय तन ओस सी, मिटत लरिकई जाय ॥३॥

शृंगार-सतसइयो के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं :

(१) सूक्ति-सतसइयो की भाँति इनमे शील एव मर्यादा का निर्वाह नही हो सका है। कतिपय वर्णन अश्लील भी हो गए हैं।

(२) इनमे तल्लीनता कम और वाह्यार्थ-निरूपण अधिक है। कवि जनो का ध्यान कला-पक्ष अथवा काव्य-नैपुण्य पर विशेष रूप से केन्द्रित हो गया है।

(३) इनका प्रवर्त्तन बिहारी लाल ने किया तथा बिहारी सतसई के अनुकरण पर अन्य सतसइयो की रचना हुई, परन्तु बिहारी जैसी सफलता किसी को न मिल सकी। भाषा की समास-शक्ति और भाव की समाहार-शक्ति बिहारी मे चरम सीमा को प्राप्त हो गई थी। यथा :

पाय महावर दैन कौ, नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एडी मीडति जाय ॥

बिहारी के इस दोहे के भाव को लेकर रामसहाय और विक्रमसाहि ने क्रमश. निम्नलिखित दोहे लिखे, परन्तु यह बात न आ सकी—

छैल छबीली की छटा, लटि महावरी संग ।
जानि परै नाइन लगै, जबहिं निचोरन रग ।।
सहज अरुनि एडीनि की, लाली लखै बिसेखि ।
जावक दीवे जकि रही, नाइन पाइन पेखि ।।

नायक परदेश जाना चाहता है, उसे रोकने के लिए विहारी की नायिका ने एक युक्ति सोची :

पूस मास सुनि सखिन सों, सांई चलत सवार ।
गहि कर वीन प्रवीन तिय, राग्यौ राग मलार ।।

मतिराम ने भी कुछ ऐसी ही बात कहलाई है :

प्राननाथ परदेश को चलिए समौ विचारि ।
श्याम वैन घन वाल के, वरसत लागे बारि ।।

यही भाव विक्रम ने लिया है :

माँगी विदा विदेस कौ, दै जराइ अनमोल ।
बोली बोल न सुधर तिय, दिय अलाप हिंडोल ।।

मतिराम ने साक्षात वर्षा की झडी लगा दी और विक्रम ने बसन्त ऋतु का आभास कराया । विहारी की नायिका ही सबसे उत्कृष्ट रही । वह तो वर्षा प्रारम्भ करके नायक को विरह व्यथा का अनुभव कराने के प्रयत्न मे लग गई थी ।

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति ।
परत गाँठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति ।।

इस भाव को प्रकाशित करने के लिए रसनिधि ने दो दोहे लिखे ।

उरझत दृग वँधि जात मन, कहो कौन यह रीति ।
प्रेम नगर मे आइकै, देखी वनी अनीति ।।
अद्भुत गति यह प्रेम की, लखो सनेही आइ ।
जुरै कहूँ टूटै कहूँ, कहूँ गाँठ परि जाइ ।।

रसनिधि का वाग्विस्तार भी विहारी की सक्षिप्त सूक्ति के समान समर्थ न वन सका ।

(४) विभावो, हावो और चेष्टाओ की सुन्दर योजना एवं सजीव चित्रण मे केवल मतिराम ही कुछ विहारी के निकट पहुँच सके हैं ।

हिन्दी सतसई परंपरा : कुछ और कृतियाँ

• हरिमोहन मालवीय

बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'सतसई-सप्तक' के प्रकाशन के बाद विद्वानो के प्रयास से अनेक प्राचीन सतसइयो की खोज हुई है। सतसई सप्तक' के लिए बाबू श्यामसुन्दरदास जी को 'रतनहजारा' के ७०० छन्दो को छाँट कर रसनिधि सतसई का रूप देना पडा था। वास्तव मे बिहारी सतसई की लोकप्रियता का प्रभाव उत्तर भारत मे अत्यधिक पडा था और इसी कारण प्रचुर सतसई-साहित्य लिखा गया और सतसई लिखने की परम्परा आज तक चल रही है। प्रस्तुत लेख मे कुछ महत्वपूर्ण सतसइयो का परिचय तथा जिन-जिन सतसइयो की नामावली डा० माता प्रसाद जी गुप्त द्वारा संपादित 'हिन्दी पुस्तक साहित्य', डा० राजबली पाण्डेय द्वारा सपादित 'हिन्दी मे उच्चतर साहित्य' तथा अन्य स्रोतो से प्राप्त हुई है उसके आधार पर इस लेख मे सतसइयो और सतसईकारो के नाम का निर्देश मैंने कर दिया है। इस प्रकार की सूची के सहारे लखनऊ विश्वविद्यालय से 'हिन्दी सतसई परम्परा' पर डा० रमासिह ने जो महत्वपूर्ण शोध कार्य किया है उसे विस्तार देने की सभावनाएँ बढे गी।

दयाराम सतसई

श्री अम्बाशकर नागर ने 'दयाराम सतसई' का सटीक एव सुसम्पादित सस्करण १९६८ मे प्रकाशित करके मध्यकालीन व्रजभाषा काव्य की महत्वपूर्ण कृति को अध्येताओ के लिए प्रस्तुत किया है। दयाराम का मूल नाम दयाशंकर भट्ट था। इनका जन्म संवत् १८३३ मे डभाई गुजरात मे हुआ था। दयाराम की गुजराती रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। दयाराम की ४७ रचनाओ का उल्लेख डा० नागर ने किया है (दे० दयाराम सतसई पृष्ठ १४, प्रकाशक साहित्य भवन प्रा० लि०, प्रयाग, संस्करण १९६८)। ये पुष्टि मार्गी वैष्णव थे। दयाराम सतसई की रचना संवत् १८७२ मे हुई थी। इसमे ७३१ छन्द हैं।

निदर्शनार्थ निम्न दोहे प्रस्तुत हैं—

आदि—

श्री गुरु वल्लभ देव अरु, श्री विट्ठल श्री कृष्ण।
पद पंकज बंदन करौं, दुखहर पूरन-तृष्ण ॥१

मध्य—

विवेक सो भावि न टरे, सोच करो मत कोय।
गुन विचारको हे इतो, पाछे ताप न होय ।।३६१

अंत—

दया सतसिया ग्रन्थ यह, विरचित पर उपकार।
सब सज्जन दूषन तजौ, ग्रहन कीजियो सार ।।७३१

वृजराज विलास सतसई

पटियाला (पजाब) के साहित्यिक श्री ओमप्रकाश आनन्द ने पजाव के सतसई साहित्य का अध्ययन करके सर्वप्रथम हिन्दी जगत का ध्यान आनन्द सतसई, सतसई रामायण, वृजराज विलास सतसई तथा बसत सतसई की ओर आकृष्ट किया था (दे० सप्तसिधु, नवम्बर ५७ पृ० ४०)। श्री आनन्द ने अमीरदास कृत वृजराज विलास सतसई के सपादन का कार्य भी पूरा कर लिया था किन्तु वह प्रकाशित न हो सकी अन्यथा पजाव मे लिखित सतसई साहित्य का पूर्ण परिचय हिन्दी जगत को प्राप्त हो जाता। इस महत्वपूर्ण सतसई के रचयिता साधु अमीरदास का जन्म अमृतसर के आस-पास हुआ था। १८८६ वि० मे उन्होंने वृजराज विलास सतसई का प्रणयन कार्य पूर्ण कर लिया था। सतसई के अतिरिक्त आपकी अन्य कृतियाँ हैं—श्री कृष्ण साहित्य सिंधु, 'सभा मडल', 'शेर सिंह प्रकाश' 'वैद्य कल्पतरु' तथा 'अश्व साहित्य प्रकाश'। अमीर दास के तीन दोहे अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं—

अलक आनि आनन परी सौरभ सनी अपार।
मानो ससि सुतभानु मिलि करत सुहृदता सार ।।
परि पन्नन के झूमका लहरैं लेत कपोल।
मनो चन्द्र पै चन्द्र सुत करत चीकने चोल ।।
तिय कपोल पै तनिक तिल तन को करै उदोत।
काका जानि कलानिधै गह्यो सूरसुत गोद ।।

बसन्त सतसई—महाकवि बसन्त सिंह 'ऋतुराज' पटियाला के राज्याश्रयी कवि थे। आपकी वसन्त सतसई के अतिरिक्त कृतियाँ हैं—नलदमयंती, बसन्त बहार, बसन्त विनोद, मौसम पर्व, गुरुवशतरु दर्पण, रूर बसन्त, कथा जगदेव पँवार तथा सिखावन राजनीति। यह सतसई अन्योक्ति अलकार पर आधारित है। आपकी बृजभाषा रचनाएँ गुरुमुखी लिपि में प्राप्त हैं—

आपकी रचना के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

हंस—तू मराल बैठत कहाँ, पंथ सँवार सँवार।
यहाँ खीर अरु नीर कौ, रहत भाव इकसार ।।

मराल—तू रसाल सबको सुखद, देत सुफल रसभीन।
याही तें विधि करत नहिं, तोहिं कबै पतहीन ।।
अधर—कढन देहु मत बदन तें, अरे अधर अस बोल।
नाहक बसत परोस पर, छूटे जाहिं कपोल ।।

आनन्द प्रकाश सतसई—

इस सतसई के रचयिता पटियाला दरबार के कवि दलसिंह थे। इनकी अन्य कृतियाँ हैं 'रत्नहजारा' और 'भारती भण्डार' रत्नहजारा का रचनाकाल संवत् १६०५ है।

उपर्युक्त सतसइयो के अतिरिक्त भी हिन्दी मे प्रचुर सतसई-साहित्य प्राप्त होता है। प्राचीन सतसईकारो की परम्परा मे पंजाब के कवि कीर्ति सिंह कृत 'सतसई रामायण' अमेठो के राजा गुरुदत्त सिंह कृत 'भूपति सतसई' तथा काशी नरेश उदितनारायण सिंह के राजाश्रयी कवि रामसिंह कृत 'राममतसई' (१८८७ ई०) तथा पं० अम्बिकादत्त व्यास प्रणीत 'सुकवि सतसई' उल्लेखनीय हैं।

सतसई अभिधान से प्राप्त अन्य सतसइयाँ है—शिवदत्त काव्य तीर्थ कृत 'शिव सतसई' (सं० १६६६) वियोगी हरि कृत 'वीर सतसई' सं० १६८४, श्री रामेश्वर करुण कृत 'करुण सतसई' (स० १६६१) जानकी प्रसाद रामगुलाम द्विवेदी कृत 'जानकी सतसई', रामेश्वर अध्यापक कृत 'करुण सतसई', हरिऔध कृत 'हरिऔध सतसई', कन्हैयालाल सहल कृत 'वीर सतसई' (स० २००५), गुलाब सिंह धाऊ कृत 'प्रेम सतसई' महेश चन्द्र, जगतसिंह सेंगर कृत 'किसान सतसई', महेशचन्द्र प्रसाद कृत 'सदेश सतसई,' (१६८७), 'रामचरित' उपाध्याय कृत 'ब्रज सतसई', राजेन्द्र शर्मा कृत 'ज्ञान सतसई' (१६५८), उल्फतसिंह 'निर्भय' कृत 'किसान सतसई', गगानारायण बाजपेयी कृत 'शृंगार सतसई' (सं० २०२३), तथा श्री पन्नालाल मानस कृत 'मानस सतसई' आदि सतसइयो का उल्लेख मिलता है।

भाषा भेद के साथ ही समय परिवर्तन के साथ-साथ विषय परिवर्तन भी इन विविध सतसइयो मे मिलता है। बिहारी से प्रारम्भ होने वाली हिन्दी सतसई की परम्परा की बहुत सी कडियाँ अभी लुप्त हैं या उनके बारे मे सदेह हैं। तुलसी सतसई, रहीम सतसई, वृन्द कृत 'यमक सतसई' आदि के सम्बन्ध मे निश्चित सूचनाओ के अभाव मे फिलहाल इन्हे इस परम्परा मे नही रखा जा सकता। प्राचीन साहित्य के भण्डार को जैसे-जैसे देखा जायगा वैसे-वैसे अनेक महत्वपूर्ण सतसइयो के सम्बन्ध मे जानकारी मिलेगी।

हिन्दी की ही बोली राजस्थानी मे कवि सूर्य मल्ल की भाँति अन्य कवियो की भी इसी परम्परा की सतसइयाँ मिल सकती हैं।

बिहारी : श्रृंगार और यौवन का कवि

• श्री बैरन हालैंड

उठते यौवन और किशोरावस्था के प्रेम का मर्मस्पर्शी वर्णन आधुनिक हिन्दी काव्य मे सामान्य विषय है। प्रकृति के रूपको के प्रयोग करते-करते निराला जी ने अपने "परिमल" सकलन मे इनके विषयो को स्पष्ट रूप से सामने रखा है "प्रथम प्रभात" मे वह कहते हैं—

'तरुण अरुण यौवन प्रभात विज्ञान
प्रथम सुरभि मे भर उन्माद विकास
अभी अभी आई थी मेरे पास।'

"जुही की कली" मे उठता यौवन फूल का रूप ग्रहण करता है। "अमल-कोमल तनु तरुणी" जो पहले छन्द मे सोती थी बाद मे वायु-यौवन के झकझोर डालने से चौंक पडी और—

'चकित चितवन निज चारो ओर फेर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी—खिली,
खेल रङ्ग प्यारे सग।'

पन्त जी की "सोन-जुही" के पहले भाग मे एक "सोनजुही की बेल नवेली" समान रूप से व्यवहार करती है—

'यह ममता की मधुर लता
मन के आगन मे छाई!
सोनजुही की बेल लजीली
पहिले अब मुसकाई!'

भारतीय काव्य का यह झुकाव भारतीय समाज के व्यक्तित्व से उत्पन्न हुआ मालूम होता है। इस समाज मे किशोरावस्था का बडा ध्यान रखा जाता है। स्वाभाविक रूप से वह युवावस्था के आवेश, उत्साह और नयी भावनाओ का जीवन के लिए मनोवैज्ञानिक निश्चिन्तता और प्रौढता के प्रभाव को पहचानता है। इस सिद्धान्त का सबसे स्पष्ट उदाहरण तो शादी-बारात से सम्बन्धित परम्पराएँ मानी जा सकती हैं। ये परम्पराए प्रदर्शित कर देती हैं कि प्रेम-सम्बन्ध मे खाली शारीरिक भाव ही नही आन्तरिक भाव भी हैं।

ये आद्य भावनाओ की याद आदमी के अन्तरतम मन मे रखी जाती हैं और उस पर अपना प्रभाव डालती रहती हैं जैसे अपने "युक्ति" मे निराला जी कहते है —

'गत रागो का सूना अन्तर
प्रतिपल तब भी मेरा सुखकर
भर देगा यौवन—
मन ही सर्वसृजन
मोह पतन मे भी तो रहते है हम
तम कण चूम'

कविताओ के माध्यम से यानी सौन्दर्य-परक वर्णन से युवावस्था की भावनाए परिलक्षित की जाती हैं। उनके रचने और पढने से कवि और रसिक ये भावनाए क्रमश. व्यक्त कर सकते हैं और अनुभव कर सकते हैं।

कलात्मक अभिव्यक्ति से किशोरावस्था की भावनाओ का वर्णन करने की परम्परा पुराने सस्कृत साहित्य से उत्पन्न होती है । कालिदास और भर्तृहरि जैसे महान् कवियो की रचनाए यह तथ्य प्रमाणित करती हैं।

अपभ्रंश साहित्य मे हाल को गाथा सप्तशती से यह परम्परा चलती आयी है। मगर पुराने व्रज के कवि बिहारीलाल ने उस परम्परा को जारी रखने में उन भावनाओ पर सबसे बडा ध्यान दिया गया है।

पश्चिम-निवासी की दृष्टि से बिहारीलाल की रचना का महत्व यह है, कि वह हमारे साहित्य मे एक कमी पूरा कर सकती है और एक साथ ही हमे भारतीय समाज के एक प्रभावशाली पहलू को जो अब तक प्रभावकारी रहा है परिचित करा सकते हैं।

आजकल के कटुतापूर्ण और अवज्ञापूर्ण पाश्चात्य काव्य मे सौन्दर्य परक वर्णन वास्तव मे अविद्यमान हैं। गिन्जबर्ग और सेलीन जैसे कलाकार साहित्य को अप्रियता की सीमा तक ले चले हैं और दूसरे कलाकार बुद्धिवाद मे और शाब्दिक निरर्थकता मे फँस गये हैं।

इस कारण विहारी सतसई का एक अंग्रेजी अनुवाद भले ही दोषपूर्ण हो फिर भी पाश्चात्य साहित्य कुछ लाभ उठा कर आनंदित हो सकेगा। दोषपूर्ण इसलिए कि रीतिकालीन सबसे सुन्दर और पेचीदी रचनाओ मे से एक होकर सतसई का अनुवाद प्राय. कठिन ही नही असम्भव भी माना जाता है। आनन्दित करने वाला इसलिये कि मोनजुही सा यह काव्य युवावस्था की उत्तेजक भावनाओ से चमकता है। सतसई के कुछ छदो के अनुवाद नमूने के रूप मे प्रस्तुत हैं—

१२ चितई ललचौहैं चखनु डटि घूघट पट माँह ।
छल सौं चली छुवाइ कै छिनकु छबीली छाँह ।।

12 She stopped, took a longing look from eyes behind the veil,
Then artfully touching me a moment with her lovely shadow, left

६४ तन्त्री-नाद कवित्त-रस सरस राग रति-रग ।
अनबूडे बूडे तरे जे बूडे सब अग ।।

94. In sound of strings, poetic taste, zestful song, the act of love,
The half-immersed are sunk, saved the wholly drowned

२२० नव नागरि तन-मुलुकु लहि जोबन आमिर जोर ।
घटि बढि तें बढि घटि रकम करी और की और ।।

220 Prince youth besieged the land of adolescent form,
Made large and small wealth small and large in overall reform.

२५१ गिरि तें ऊँचे रसिक-मन बूडे जहाँ हजारु ।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम-पयोध पगारु ।।

251 Where thousands of loving hearts, higher than hills, have plunged,
That sea of love is ever a ditch for brutish ones.

३८८ रनित भृङ्ग-घटावली झरित दान मधु-नीरु ।
मद मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज-समीरु ।।

388 With musk of oozing juice, bells of buzzing bees,
Slowly, slowly he proceeds, the elephant, forest breeze

५५३ प्रजर्‌यौ आगि बियोग की बह्यौ बिलोचन-नीर ।
आठौ जाम हियौ रहै उड्यौ उसास-समीर ।।

553 Flaming from parting's fire, flowing with the fluid of the eyes,
On a sigh's wind, twenty-four hours a day, her heart flies.
(दोहों का क्रम "बिहारी रत्नाकर" के अनुसार है ।)

बिहारी की भाषा

● डा० ललित शुक्ल

'दीरख दोहा अरथ के आखर थोरे आहिं' को ध्यान मे रख कर यदि बिहारी की भाषा पर विचार किया जाय तो पता चलता है, कि बिहारी को शब्दो की प्रकृति और अर्थ की विवृत्ति का पूरा ज्ञान था। ज्योतिष, धर्मशास्त्र, रसायन शास्त्र, इतिहास, भूगोल और काम शास्त्र के शब्दो के प्रयोगो मे बिहारी ने अपने चातुर्य और शिल्प-साधना का अच्छा परिचय दिया है।

भाषा के क्षेत्र में बिहारी अपने युग के अन्य कवियो से अलग दिखायी पडते हैं। पद्माकर और देव की भाषा मे साम्य ढूंढा जा सकता है किन्तु बिहारी की भाषा की प्रकृति सर्वथा अलग और स्वतन्त्र है। मुहावरा, अलकार, शब्द-शक्ति आदि अर्थ के प्रकटीकरण की जितनी शैलियाँ हैं उन सब को कही-कही बिहारी ने एकत्र कर दिया है।

पहुला हारु हियै लसै, सन की बेंदी भाल।
राखति खेत खरे खरे, खरे उरोजनु बाल।।

'पहुला' शब्द के अर्थ का-टटा यहाँ नही खड़ा करना है। केवल इतना समझना पर्याप्त होगा कि यह फूलो का हार है जिसे गाँव की स्त्रियाँ पहनती हैं। रत्नाकर जी की व्याख्या खीचतान वाली लगती है। उनके उदाहरणो मे एकाध उपयुक्त जान पडते हैं। यह प्रयोग आवश्यक इसलिये है, क्योकि यह व्यक्ति वाचक सज्ञा है। 'सन की बेंदी' का सौन्दर्य दृष्टि-बोध का परिणाम है। व्यजना और मुहावरे का कमाल नीचे वाली पक्ति मे है। खेत राखना, खेत रखाना, मोहित करना, मार गिराना, खडे होकर, खडे हुए लोगो को, खडे उरोजो वाली और खडे उरोजो के प्रभाव से आदि अर्थ भाषा की शक्ति को प्रकट कर रहे हैं।

भाषा के विविध प्रयोगो से परिचित होकर भी कवि अपनी भाषा का अलग अस्तित्व रखता है। यह बात बिहारी की भाषा पर भी लागू होती है। संस्कृत शब्दो की बहुलता से युक्त बिहारी को ब्रजभाषा के प्रयोग मे युग से हटकर परिवर्तन किये गये है। शौरसेनी और मागधी मे प्रयुक्त होने वाले शब्दो को बिहारी ने आवश्य-

कता के अनुसार तोडा-मरोडा है। वस्तुतः बिहारी की भाषा सब कुछ कहकर भी अपने में कुछ न कुछ छिपाये रहती है।

क्रिया पदों की पुनरुक्ति से भाषा को चारु बनाते हुए बिहारी लिखते है :

हँसि हँसि हेरति नवल तिय, मद के मद उमदाति।
बलकि बलकि बोलति बचन, ललकि ललकि लपटाति।।

'हँसि' और 'बोलति' मे वह बात नही है जो 'उमदाति' और 'बलकि' मे है। 'ललकि' क्रिया का प्रसंगार्थ भी अधिक व्यजना पूर्ण है। लोक-भाषा मे बहुत सारी क्रियाएँ ऐसी हैं जिनकी तुलना मे वही अर्थ प्रकट करने वाली क्रियाएँ खडी बोली मे नही हैं। 'यो' से अन्त होने वाली क्रियाएँ ब्रजभाषा मे अधिक हैं। धर्‌यो, पर्‌यो, गर्‌यो, मिल्यो आदि प्रयोगो से इस बात का साफ पता चलता है। 'यो' का प्रयोग ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओ मे नही मिलता है। कुछ प्रयोग बैसवारी के ऐसे हैं जिन्हे इस सन्दर्भ मे उद्धृत किया जा सकता है किन्तु उनमे ब्रजभाषा जैसा माधुर्य नही पाया जाता।

'लगाना', 'बसाना', 'आना', 'जाना', आदि प्रयोगो मे 'इ' लगाने से थोड़े में अधिक अर्थ भर जाता है। 'लगाइ', 'बसाइ', 'आइ' तथा 'जाइ', का अर्थ 'लगाकर', 'बसाकर', 'आकर' और 'जाकर' होता है। क्रियाओ की इस प्रकृति का लाभ बिहारी ने बडे यत्न से उठाया है। खड़ी बोली का एक वाक्य है—'मन्दिर दिखाई पड रहा है।' इस वाक्य मे दीखना, पडना, रहना तथा है के साथ चार क्रियाएँ है। लम्बाई क्रियाओं ने बढाई थी। भोजपुरी में यह वाक्य होगा—मन्दिर लउकत ब तथा अवधी मे 'मन्दिर देखात अहै।' इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोक-भाषाओ की प्रकृति सश्लेषणात्मक है। मुख-सुख की दृष्टि कथन मे सुकरता सभी पसन्द करते हैं। बिहारी तो दोहाकार हैं। उनके लिये भाषा की यह प्रकृति वरदान है। कभी-कभी संज्ञाओ को क्रिया बनाकर बिहारी काम चला लेते हैं। 'अनुराग' से 'अनुरागि', 'नाच' से 'नाचि', 'चाह' से 'चाहि', 'बोल' से 'बोलति' के प्रयोग भाषा की अर्थवत्ता को स्पष्ट करते हैं।

समानुपातिक स्तर पर विचारने से बिहारी के काव्य में तत्सम शब्दो का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। उसके बाद क्रमश. अर्द्ध-तत्सम, तद्भव तथा अरबी और फारसी के शब्दो का नम्बर आता है। बिहारी के श्लेष की महिमा निराली है। शृगारी शब्दो मे ही वे ज्योतिष, वैद्यक, नीति-शास्त्र और धर्म-शास्त्र आदि जाने किन-किन क्षेत्रो के शब्दो का अर्थ भरते हैं। यह भाषा की निपुणता और पाण्डित्य का चमत्कार है। 'मगल बिन्दु सुरग' वाला दोहा इतना सुगठित है कि श्लेष के

आधार पर अर्थ मे बाधा नही पडती । 'रस' और 'नारी' के श्लेष से चमत्कार बढ जाता है । इस दोहे मे अधिकाशतः तत्सम शब्दो का प्रयोग हुआ है । यही नही, पूरी सतसई मे प्रतिबिम्ब, प्रभात, द्विज, रति, पीन, सिंधु, निकुञ्ज, कज्जल, काल विपाक, निदाघ, मुकुर, इन्दीवर, अलिपुज, चिबुक, कोकनद, मकरन्द, तन्त्रीनाद तथा जातरूप जैसे तत्सम शब्दो का प्राधान्य है । हाँ क्रियाएँ ब्रजभाषा की हैं । शुद्ध शब्दो से बनायी गयी क्रियाएँ भी ब्रजभाषा की हो गयी है ।

भाषा की विचार-दृष्टि यह सोचने पर बाध्य कर देती है कि सतसई मे कलात्मक सज्जा अधिक है अथवा सहज बोध एवं भाव सम्प्रेषण की शक्ति । अपने रचना कौशल मे बिहारी रीतिकाल मे सर्वश्रेष्ठ हैं । प्रत्येक शब्द को पहले ठोक बजाकर देख लेते हैं तब उसे प्रवेश की अनुमति देते हैं । इसीलिये वह अपनी कक्षा मे बैठ कर पूरा काम करता है क्योंकि उसकी स्थिति संस्तुति परक नही होती है । शब्दो का दारिद्र्य बिहारी के कवि के यहाँ नही पाया जाता । इसी गुण से रीझ कर एक बार पद्मसिंह शर्मा ने कहा था—

'भाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार था । सतसई की भाषा ऐसी विशुद्ध और शब्द-रचना इतनी मधुर है कि सूरदास को छोड कर दूसरी जगह उसकी समता मिलनी दुर्घट है ।'

पूरी तरह देखने-परखने से उक्त कथन की प्रामाणिकता साफ जाहिर हो जाती है । एक बार कुछ लेखको ने बिहारी की भाषा को बुन्देलखण्डी बताया था किन्तु प्रयोग बहुलता इस मत को परिपुष्ट नही करती । यदि जन्म का आधार लेकर कोई इस बात को प्रमाणित करता है तो भी बिहारी के साथ न्याय नही होगा । कवि का दृष्टिकोण भाषा के सम्बन्ध मे इतना 'वेजिटेरियन नही होता' । समाज भी अन्यान्य परिचित-अपरिचित भाषाओ के शब्दों को स्पृश्य समझकर अपनाता है इसलिये यह मत निराधार सा लगता है ।

विदेशी भाषाओ मे अरबी और फारसी के शब्दो की गुजाइश बिहारी के यहाँ है । उनके समय मे इन भाषाओ का प्रचलन था । जब भक्तिकाल के कवि इन भाषाओ के प्रभाव से नही बच सके तब बिहारी का क्या कहना । इनका सम्बन्ध तो दरबार से था ही । वहाँ से छन कर तमाम सहज शब्द जन सामान्य मे बोले जाने लगे । हमाम, हुकुम, हजार, कजामी, चश्मा, नेजा, अदब, अहसान, कबूल, सबी, रकम, गुमान तथा पायन्यदाज आदि शब्दो के प्रयोग पूरी सतसई में बिखरे पडे हैं । ऐसे शब्दो का प्रयोग बिहारी ने अपनी भाषा मे बडे अधिकार पूर्ण ढंग से किया है । इस बात के आधार पर दो तथ्य सामने आते हैं—

एक तो बिहारी को इन भाषाओ के शब्दो की पूरी जानकारी थी ।

दूसरे इन शब्दो का प्रचलन सामान्य जनता मे भी सभव हो सकता है । सभी शब्दो के सम्बन्ध मे तो यह बात नही कही जा सकती है पर फौज, अगूर, गोल, कबूतर, गुलाब, गुमान, दमामा, दरबार, फानूस, बहार आदि शब्दो का प्रचलन गाँव-गाँव मे है । और फिर यह आवश्यक नही है कि कवि भाषा लिखते समय प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान रखे । वस्तुत भाषा अभिव्यक्ति का साधन है । उसके प्रयोग की सुविधा अभिव्यक्तीकरण के अनुसार कवि को होनी चाहिए । इतना सब होते हुए भी कही कही बिहारी ने सस्कृत से सीधा सहारा लिया है :

> अनलस्तम्भन विद्या, सुभग ! भवान्नियतमेव जानाति ।
> मन्मथ शराग्नि तप्ते, हृदि मे कथमन्यथा वससि ।।

बिहारी कहते हैं—

> बिरह-बिथा-जल-परस-बिन बसियत मो हिय-ताल ।
> कछु जानत जलथंम बिधि, दुरजोधन लौ लाल ।।

श्री कण्ठचरित का एक प्रसंग है—

> केलिप्रदीप-लतिका-प्रतियात नाभि-
> निष्कञ्चुका कुच भुवो वधुरंगनानाम् ।
> कन्दर्प-भूभुजि मनो भवन प्रविष्टे,
> सीमन्तिता इव हिरण्मय-वेत्रदण्डा ।।

बिहारी की उक्ति है—

> मकराकृत गोपाल के सोहत कुंडल कान ।
> धँस्यो मनो हिय घर समर, ड्योढी लसत निसान ।।

इस प्रकार की समता उन्ही स्थलो पर मिलती है जहाँ बिहारी ने किसी शास्त्र सम्बन्धी बात कही है । जहाँ कहीं ऐसी समता है वहाँ बिहारी की प्रतिभा पृथक् दिखायी पडती है । किसी बात को पचाकर अपनी बनाकर और हो सके तो कुछ इजाफा करके कहने मे अच्छा रहता है । इन उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि सस्कृत के छन्दो का भाव बिहारी की अभिव्यक्ति की मौलिकता मे कोई बाधा नही पहुँचाता ।

भाषा की चारुता ध्वनि और व्यंजना पर निर्भर करती है । बिहारी की भाषा मे एक साथ कई भाषा के शब्द मिल सकते हैं किन्तु उनकी उपयोगिता इस बात में होती है कि प्रसग गर्भत्व और नयी अर्थ विवृत्ति के सन्दर्भ मे उनका महत्व अधिक

होता है । जहाँ कही अरबी-फारसी आदि भाषाओं के शब्द आये हैं प्राय उनका रूप पारिभाषिक बन गया है । इसलिये एक ओर वे पाठक को नया ज्ञान देते हैं दूसरी ओर उनके माध्यम से शब्द-शक्ति द्वारा नया अर्थ सामने आता है । आँखो की विलक्षण झलक का एक प्रसग है :

आज कछू औरै भए, छए नए ठिकठैन ।
चित के हित के चुगल ए नित के होंहि न नैन ।।

इस दोहे मे 'आज', 'कछू', 'भए', 'नए', 'चित', हित', आदि प्राय. सभी शब्द प्रचलन मे है । बिहारी के युग मे भी रहे होगे, इस समय भी हैं । 'चुगल' शब्द तुर्की भाषा के 'चुगुल' का बिगडा रूप है जो जनता मे व्यवहृत होता है । नयनो के प्रसंग मे चुगुली का दोषारोपण कितना काव्यात्मक हैं । 'चुगल' शब्द ब्रज और अवधी के शब्दो के बीच अनाहूत सा नही लग रहा है । सचमुच बिहारी शब्दो के पारखी थे । इसलिये थोडा परिवर्तन करके शब्द मे नया रग भर देते थे । 'और' को 'औरै' बनाने मे अर्थ में जो वृद्धि होती है वह किसी से छिपी नही हैं । सानुप्रासिकता का गुण तो बिहारी की कलम का अनुगामी हैं ।

जहाँ शब्दो मे दोहरे अर्थ पाये जाते हैं वहाँ व्यंजना के आधार पर कुछ न कुछ नया आ ही जाता है । स्त्री सम्बन्धी पर्यायों के युक्त एक दोहा है :

बामा, भामा, कामिनी कहि बोलौ प्रानेस ।
प्यारी कहत खिसात नहिं, पावस चलत बिदेस ।।

बामा, भामा और कामिनी का सम्बोधन नायिका इसलिये चाहती है क्योकि नायक वर्षा ऋतु मे परदेश जा रहा है । कुटिला, क्रोध करने वाली तथा स्वार्थिनी कहलवा कर अपना आक्रोश व्यक्त करती है । उसे 'प्यारी' मे वह बात नही मिलती क्योकि 'बामा' और भामा आदि मे व्यंग्य की जो बात छिपी हुई है वह शब्द का चमत्कार है ।

यद्यपि बिहारी ने शब्द-साधना पर विशेष ध्यान दिया था किन्तु कहीं-कही कुछ शब्दो के ऐसे प्रयोग मिलते हैं जो किसी अचल विशेष अथवा दरबार विशेष के लगते हैं । आज उनके प्रयोग घिसकर समाप्त हो गये हैं इसलिये ऐसे शब्द 'अजनबी' से लगते हैं । 'मुरासा,' 'सबील', 'अरगट', 'कुलिग', और 'मरगजा', जैसे शब्दो के लिये पाठको को सोचना पडता है । अर्थवती भाषा लिखने मे बिहारी की कुशलता बिजोड है । सश्लिष्टता, सादगी, अभिव्यक्ति की सहजता, स्वाभाविक आलंकारिता और व्यंजना व्यापार से युक्त भाषा लिखने मे बिहारी अनुपमेय कवि हैं ।

बिहारी का शब्द-विधान

● डा० जीवन प्रकाश जोशी

काव्य मे शब्द की महत्ता सबसे प्रथम है। काव्य रचना मे पहले शब्द-बोध होता है फिर अर्थ-भाव और रस-बोध होता है। काव्य के रचना तंत्र मे भी शब्द विधान पहले है। हाँ, काव्य के लक्ष्य की दृष्टि से रस की प्रधानता है किन्तु फिर रस निष्पत्ति के लिये भी पहले 'पद' की उपयुक्तता और महत्ता काव्य लक्षण के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने नाट्य-शास्त्र मे काव्य की पहली परिभाषा करते हुए, इस प्रकार पहली ही पंक्ति मे ही प्रकट कर दी है —

"मृदु ललितपदाढ्य गूढ शब्दार्थ हीन" . यहाँ शब्द ही काव्य का प्रथम शिला-न्यास है। अन्य आचार्यों ने भी पहला शब्द ही प्राय काव्य के लिए प्रयुक्त किया है—'शब्दार्थो सहितो काव्यम्,' शब्द-शक्ति और गुण रीति अलंकारो मे जो कि काव्य रचना तंत्र के विशिष्ट उपकरण हैं—सभी शब्द के प्रजाजन हैं। तात्पर्य यह है कि काव्य रचना मे शब्द विधान का व्यापक व्यापार है।

आचार्य जगन्नाथ ने ठीक ही कहा है —

"रमणीयार्थ प्रतिपादका शब्द कायम्"। Colondge ने शब्द की काव्यगत आतरिकता और उसके विधान को जो महत्ता दी है वहाँ जैसे काव्य की एक महत्वपूर्ण परिभाषा बनी है। वे कहते हैं 'Poetry is the best words in the best orders' यहाँ Best जैसे शब्द का विश्लेषण नही, भाग है और जो काव्य विधान के लिए अनिवार्य है। पाश्चात्य विद्वान टेनीसन ने भी एक स्थल पर उत्तम शब्द की महत्ता 'lovely words' कह कर स्वीकारी हैं। यह सर्वथा सत्य है कि उत्तम शब्द विधान से ही उत्तमोत्तम काव्य की रचना करने मे प्राय कवियो को सफलता मिलती है—चाहे वह एक पक्षीय—कला पक्षीय ही क्यो न हो। किन्तु ऐसे कवियो का काव्य भी साहित्य मे अपनी महत्ता रखता है। बिहारी और उनके काव्य की सफलता और महत्ता का आधार वास्तविक रूप मे उनका शब्द-विधान ही है, जिसको अलकार, गुण, शब्द-शक्ति या अन्य किसी भी रूप अथवा नाम से ग्रहण किया जा सकता है। यहाँ पर बिहारी के काव्य मे उनके शब्द-विधान

के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओ पर ही प्रकाश डालेगे। कुछ का कारण है स्थानाभाव।

हिन्दी साहित्य प्रेमी जानते ही हैं कि लगभग १२, १३ वी शताब्दी से व्रज बोली का छुटपुट प्रयोग खुसरो, कबीर और अन्य सतो के काव्य मे आरम्भ हो गया था, किन्तु उसका साहित्यिक सहज सुष्ठु प्रयोग अष्टछाप के कवियो ने किया। सूरदास ने व्रजभाषा को साहित्य के सृजन मे परिनिष्ठित रूप दे दिया। सूरदास की व्रज भाषा मे समस्त सरस भावो को वाणी देने की क्षमता जरूर आ गई किन्तु उसमे नक्काशी या शिल्प का समाहार उनसे बढ़कर रीतिकालीन कवियो ने किया। रीतिकालीन कवियो मे बिहारी अग्रगण्य है। बिहारी की भाषा मे व्याकरण की शिथिलता रही, लेकिन उसमे नक्काशी और भगिमा बेजोड़ है। यह उनके शब्द विधान के कारण है। बिहारी की भाषा भले ही व्याकरण वाहिनी न हो किन्तु उनके शब्द अजीब चित्र विधायक हैं और उन शब्दो मे सामंती युग की विलासी कलात्मक एषणा की अत्यन्त प्रभावशालिनी अभिव्यक्ति है। यहाँ उनका साकेतिक उल्लेख अपेक्षित है।

बिहारी ने अपने काव्य विधान मे परम्परागत और इस्लामी प्रभाव सम्मत शब्दो का बडा सधा हुआ प्रयोग किया है। दोनो ही प्रकार के शब्दो का सम्मिलित विधान उनके सामंतीयुग के वातावरण की अपरिहार्य माँग थी। बिहारी ने इस माँग को अनिवार्य माना समझा और उसकी पूर्ति के लिए उन्होंने दोहा जैसे लघु छंदो मे अपनी सूझ का सारा बल लगा दिया। उनके दोहो की प्रसिद्ध और प्रभाव शक्ति आज भी इसका प्रमाण है।

परम्परागत शब्द-विधान मे बिहारी ने तत्सम, अर्धतत्सम, तद्भव शब्दो का प्रयोग किया। अरबी, फारसी, शब्दो का प्रयोग उनका स्वतत्र और इतस्तत. व्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल कुछ घुमाव-फिराव लिये भी दिखलाई पडता है।

परम्परागत शब्दो मे समास प्रबल है जैसे :

'रनित-भृंग-घंटावली झरित दान मधु-नीरु।'

बिहारी के शब्द विधान मे समास ऐसे दृढ सम्बल रहे हैं जिमसे बडी से बडी अभिव्यक्ति का सफल बधान बध सका है। बिहारी की शिल्प क्षमता पर आश्चर्य होता है कि चार-चार शब्दो तक के समासो में भाषा की चुस्ती कायम रख सके हैं। उनमें संस्कृत समासो की सी अर्थ दुरूहता नही प्रतीत होती।

बिहारी ने संस्कृत के जो तत्सम शब्द लिये हैं, जैसे अभिसार, सकेत, मिलन

वियोग आदि वे परम्परागत होते हुए भी ब्रजभाषा काव्य-शैली मे एक प्राण प्रतीत होते हैं।

अर्ध-तत्सम शब्दो के विधान मे बिहारी ने संस्कृत के तत्सम शब्दो मे अपनी ओर से मौलिक परिवर्तन करके उन्हे अभिव्यजन के अनुकूल दिशा दे दी है, उनके अर्ध तत्सम शब्दो की ध्वनि गुरुता और लघुता विशेष प्रभावशालिनी प्रतीत होती है। जैसे कुलाहल (कोलाहल), दरपन (दर्पन), नितप्रति (नित्यप्रति) निरमोही (निर्मोही) निस (निशि) आदि। अर्धतत्सम शब्दो के विधान मे बिहारी ने ब्रजभाषा को जहाँ कुछ मौलिकता से समृद्ध किया है वहाँ दोहो मे ध्वनि की नाज़ुकता पैदा की है। 'कुलाहल' शब्द "कौलाहल" से अपेक्षाकृत अधिक चुलबुलाहट पैदा करता है। इसी प्रकार दरपन मे दर्पण की अपेक्षा अधिक ध्वनि सहज है। कहने का तात्पर्य यह है कि अर्धतत्सम शब्दो के प्रयोग मे बिहारी ने सूक्ष्म ध्वनि लालित्य लाने का ध्यान रखा होगा।

बिहारी ने तत्सम शब्दो की गढन की है। ऐसे शब्द सस्कृत शब्दो की विकृति लगते हैं। जैसे पच्छीन (पक्षियो को), बिचच्छनो (विलक्षण होने पर भी), लिलाट (ललाट) आदि। इस प्रकार के तद्भव शब्द विधान के कारण प्राय बिहारी के दोहो मे अर्थदुरूहता आ गई है। किन्तु ऐसी बात अधिकाशत नही है।

फारसी-अरबी के शब्द विधान मे बिहारी को बडे मार्के की सिद्धि हुई है। इस प्रकार के शब्द प्रयोग मे एक ओर वे शाही समय की बादशाही को गुदगुदाते हैं, दूसरी ओर वे ब्रजभाषा की शब्द-रूप समाहारिणी क्षमता को प्रकट करते हैं और सबके अन्त मे सामंती युग की भद्रतापूर्ण शब्दो मे सिमटी विचित्र स्थिति-अभिव्यंजना को भी छेड देते है। इजाफा, गुनही, गुमान, बेजा बहार, हमाम, आदि शब्द इसी बात की पुष्टि मे पेश किये जा सकते हैं।

सतसई के दूसरे दोहे मे इजाफा शब्द 'जोवन-नृपति-प्रवीन' समास और तद्भव शब्द विधान के साथ जुडा हुआ है। यहाँ दोहा दिये बिना काम नही चलेगा—

अपने अंग के जानि कै, जोवन-नृपति प्रबीन।
स्तन, मन, नैन, नितब कौ बडौ इजाफा कीन॥

"इजाफा" शब्द इस दोहे मे अरबी भाषा का है जिसका अर्थ पारिभाषिक है, कि ऐसी वृद्धि जिसे कोई बादशाह खुश होकर किसी को प्रदान करता है और इस दोहे के अनुसार यौवन का बादशाह स्तन, मन, नैन, नितब, का इज़ाफा कर रहा है। इजाफा शब्द यहाँ इस्लामी बादशाहत का सारा ऐश्वर्य बोध लिये है। बिहारी ने

इस एक ही शब्द से तब न जाने कितनी बादशाही लूटी होगी, इसे कौन कहे ? इसी प्रकार बिहारी के विदेशी शब्द-विधान की विशेषता यह है कि वह ब्रजभाषा के साथ पूरी तरह एक मेल है, उसमे सामती युग की अनूठी झाड-फानूसी झिलमिलाहट और वह माला के महत्वपूर्ण दाने-सा भी प्रतीत होता है ।

बिहारी ने बहुत से अप्रचिलित शब्दो का प्रयोग किया है, कुछ गढे भी हैं, और क्रियापद सज्ञा और विशेषण पद भी गढ कर प्रवाह के साथ प्रयुक्त किये हैं। जैसे ब्रज के शब्द 'ऊजरा' के स्थान पर 'उजास' प्रयोग किया है। "उडाना" क्रिया के स्थान पर 'उडायक' आदि। इसी प्रकार साडी के लिए 'सिलवट' शब्द प्रचलिट है किन्तु बिहारी ने 'सलोट' का प्रयोग किया है। 'गठरी' या मोटरी के स्थान पर "मोट" शब्द का अप्रचलित प्रयोग किया है। सलोट और मोट शब्द एक ही दोहे मे आए है देखिये :

> नटि न सीस साबित भई लुटी सुखनु की मोट ।
> चुप करिए चारी करति सारी-परी सलोट ।।

यहाँ "साबित" शब्द विदेशी है जो दोहे मे अपनी सत्ता पूरी तरह दिखाए खपाए हुए है "साबित" के भई का अर्थ है अप्रमाणित के साथ भई ब्रजभाषा की क्रिया लगी है जो उसे विदेशी नही रहने दे रही है ।

'निवाज' शब्द मे 'बौ' प्रत्यय लगाकर बिहारी ने "निवाजिबौ" क्रिया है जो फारसी शब्द को ब्रजभाषा का सा बना देता है ।

इस प्रकार बिहारी का शब्द विधान अपने मे एक महत्वपूर्ण कला प्रयास है। शब्दो के स्वरूप, प्रयोग, उद्योग, परिवर्तन और समाहार मे बिहारी का कौशल हिन्दी के प्राय: सभी कवियो से विशेष है। छायावादी काव्य मे जिस प्रकार अग्रेजी शब्द-शिल्प का जैसा नवोन्मेष प्रधान है। इसी प्रकार रीति कालीन ब्रजभाषा के काव्य मे बिहारी का अपना शब्द-शिल्प नवोन्मेष प्रधान है, और इस विधान के कारण बिहारी ने ब्रजभाषा को जहाँ व्यापक क्षेत्र प्रदान किया है, वहाँ उसमे अभिव्यंजन की क्षमता और और कला को रस-रग से आकर्षक बना दिया है। ब्रजभाषा के अन्य कवियो के काव्य मे ब्रजभाषा की इतनी समाहार शक्ति नहीं आ सकी। यदि बिहारी दोहो के अलावा अन्य छन्दो का प्रयोग भी करते तो उनके शब्द-विधान का और अधिक वैभव देखने को मिलता। अपने शब्द शिल्प विधान मे नि सन्देह बिहारी मध्यकालीन सभी कवियो से अलग तथा अनूठे दिखलाई पडते है। शायद इसलिये वह मध्यकालीन अनेक कवियो की भीड मे सबसे अलग ही पहचाने जाते हैं।

मुक्तक काव्य और बिहारी के दोहे

● स्व० ललित प्रसाद सुकुल,

यदि काव्य-रचना का प्रवाह अजस्र और शाश्वत है तो काव्यानुरागियो का उसके प्रति आकृष्ट होना भी उतना ही शाश्वत मानना पडेगा, किन्तु काव्य-प्रेम एक वस्तु है और काव्यानुशीलन उससे भिन्न दूसरा व्यापार है। इसकी परम्परा भी कम प्राचीन नही। विशेष कर भारतीय काव्य-रचना और काव्य-मीमासा का इतिहास तो और भी अधिक प्राचीन, पुष्ट, परिमार्जित और सुसम्पन्न रहा है। लेकिन दैव-दुर्विपाक से देश की युगो की पराधीनता के क्षणो मे हमारे मानसिक क्षितिज पर कुछ ऐसा गहरा अन्धकार-सा छा गया था और हमारी अनुपम और कलात्मक काव्यनिधियो से हमारा सम्बन्ध ही प्राय छूट सा गया था। इसका यह अर्थ नही कि काव्य सृजन अथवा उसके प्रति हमारे नैसर्गिक अनुराग की ही इतिश्री हो गयी थी। परन्तु मानसिक स्थिति कुछ ऐसी जरूर हो गई थी कि हम अपने काव्य के अनुशीलन और गम्भीर अध्ययन के प्रति उदासीन से हो गये थे।

निश्चय ही जातीय जीवन के लिए वह अत्यन्त शुभ घडी रही होगी जब नागरी प्रचारिणी सभा जैसी सस्था की नींव पडी होगी, क्योकि हमें निस्सकोच कहना पडता है, कि आज के देशव्यापी हिन्दी साहित्य के क्रमबद्ध अनुशीलन और अध्ययन का प्रारम्भ वही से हुआ। लगभग १९२३ या २४ मे बाबू श्यामसुन्दर दास ने "साहित्यालोचन", हिन्दी संसार को भेंट किया था। हम कह सकते हैं कि साहित्यालोचन के प्राचीन और आधुनिक सिद्धान्तो के विवेचन का यह सर्वप्रथम सुन्दर प्रयास था। जिसने हमारे विविध विद्वानो का ध्यान शास्त्रीय अध्ययन की ओर आकृष्ट किया था। उस समय की प्राप्त सामग्री के आधार पर काव्य का जो वर्गीकरण उन्होंने प्रस्तुत किया था वह कुछ इस प्रकार था
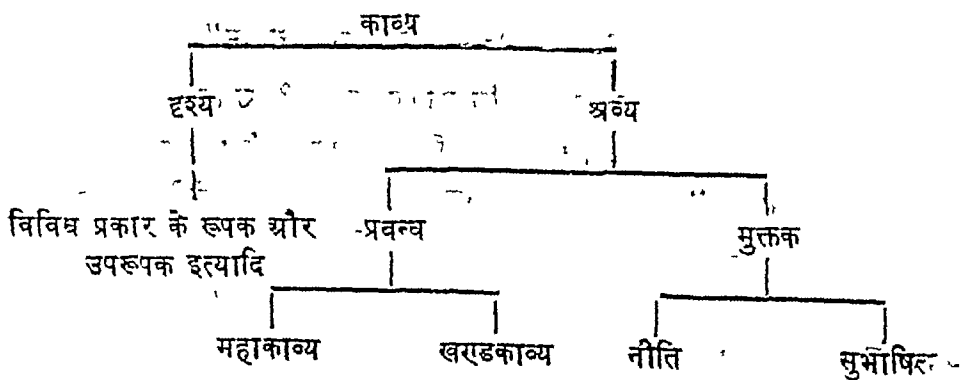
यो तो यह वर्गीकरण भी कई प्राचीन आचार्यों के मत से समर्थित है, किन्तु नागार्जुन और कुवलयानन्द इत्यादि आचार्यों ने काव्य-विवेचन अन्य रूपों में भी किया है, जो कई अंशो में इस उपर्युक्त विवेचन से अधिक पुष्ट और सुव्यवस्थित कहा जा सकता है। उसका उल्लेख आगे चलकर यथास्थान किया जायगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि बाबू श्यामसुन्दर दास जी के द्वारा सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया उपर्युक्त काव्य का वर्गीकरण कुछ इतना अधिक प्रचलित हो गया कि आज के हमारे हिन्दी काव्य के विद्वान और आलोचक इसके आगे और कुछ सोचते नही दीख पडते। इसी वर्गीकरण के आधार पर स्वय बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने "सतसई सप्तक" की भूमिका मे अभिनव गुप्ताचार्य द्वारा दी गई "मुक्तक", की परिभाषा का उल्लेख किया है कि—

"पूर्वापरनिरपेक्षापि हि येन रस-चर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्"

और इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि जिस उक्ति मे पूर्वापर का सम्बन्ध न हो किन्तु काव्य के अन्य आवश्यक गुण वर्तमान हो, वह मुक्तक काव्य कहलाता है। यहाँ तक तो किसी प्रकार की आपत्ति नही हो सकती, किन्तु इसी के बाद बाबू साहब ने यह कहा है कि "मुक्तक मे रस की निष्पत्ति हो ही, यह भी आवश्यक नही, इसमे सुभाषित अथवा वाग्वैदग्ध्य की चमक हो।" अभिनवगुप्ताचार्य की परिभाषा के अनुसार तो बाबू साहब का उपर्युक्त कथन युक्तिसंगत नही उतरता। क्योंकि रस की स्थिति की शर्त स्वयं अभिनवगुप्ताचार्य ने ही 'रस चर्वणा क्रियते' कहकर अपनी परिभाषा में स्वीकृत कर ली है। यो भी हमारे यहाँ के काव्य शास्त्रो मे रस की जो व्यापक सत्ता स्वीकृत है, उसके अनुसार मुक्तक यदि काव्य कहलाने का अधिकारी है तो रस की निष्पत्ति आंशिक ही सही आवश्यक अवश्य है। तब थोडा सा असमंजस जरूर होता है कि समर्थन के रूप मे अभिनवगुप्ताचार्य की परिभाषा देते हुए बाबू साहब ने मुक्तक मे रस-निष्पत्ति को अनावश्यक कैसे माना? इस रहस्य को समझने के लिए मुक्तक की एक दूसरी परिभाषा भी देखनी चाहिए। अग्निपुराण में काव्य मीमासा के प्रसंग में मुक्तक की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है—

"मुक्तक श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षमः सताम्"

इसमे स्पष्ट प्रश्न किया गया है कि मुक्तक क्या है? उत्तर मिला कि उत्तम जनो द्वारा चमत्कार युक्त श्लोकबद्ध एक उक्ति ही मुक्तक है। इस परिभाषा मे अवश्य ही "चमत्कार" को छोड कर मुक्तक के साथ 'रस' की कोई शर्त जुडी हुई नही है। बहुत सम्भव है कि बाबू साहब के ध्यान मे यह परिभाषा भी रही हो। अच्छा होता यदि वे एक ही स्थल पर अभिनवगुप्ताचार्य की परिभाषा के साथ ही इसका उल्लेख भी कर देते।

जो कुछ भी सही, निष्कर्ष यही निकलता है कि मुक्तक भी एक प्रकार का उच्चकोटि का काव्य है; अर्थात् रस, ध्वनि और अलंकार इत्यादि। साथ ही, चूँकि मुक्तक मे प्रत्येक उक्ति की अपनी पृथक् सत्ता होती है, इस लिए वाग्वैदग्ध्य अथवा उक्ति-चमत्कार उसमे होना ही चाहिये। इसी स्थल पर मुक्तक काव्य से सम्बन्ध उक्ति-वैचित्र्य तथा वाग्वैदग्ध्य के मर्म का थोडा सा विस्तृत विवेचन आवश्यक है।

किसी भाषा का चरम-सौष्ठव दीख पडता है उसके काव्य मे। काव्य भी कला है अत. अधिक से अधिक सतुलन उसमे अपेक्षित होना ही चाहिए। विचार और अभिव्यक्ति के माध्यम अर्थात् शब्द-चयन, दोनो पर ही लागू होता है। जहाँ एक ओर सौन्दर्य अभीसिप्त है वही काव्य मे अर्थ-गौरव भी अपेक्षित होता है। काव्य की अलंकार योजना तथा उसमे ध्वनि और व्यंजना इत्यादि का सन्निवेश इसी निमित्त माना गया है कि इनके द्वारा सफलता के साथ रस की निष्पत्ति सम्भव होती है। मुक्तक को छोड कर अन्य प्रकार के स्वीकृत काव्य रूपो मे, जो या तो दृश्य-काव्य के अन्तर्गत हो अथवा प्रबन्ध के अन्तर्गत हो, इतिवृत्तात्मकता के लिए न्यूनाधिक स्थान रहता ही है। इसीलिए उस कोटि के काव्यो मे रस-निर्वाह मे कलाकार को अनायास ही अन्य रूपिणी सुविधाएँ प्राप्त हो जाती है। किन्तु मुक्तक मे ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नही हो सकती इसलिए भाषागत सौष्ठव और वाग्वैदग्ध्य अथवा चमत्कार पर कवि को विशेष ध्यान देना ही पड़ता है। इतिवृत्तात्मक काव्य मे भी भाषा-सौष्ठव का महत्व कम नही है। परन्तु वहाँ वातावरण का वैचित्र्य, घटना-चमत्कार इत्यादि अपने निजी आकर्षण के द्वारा भी रस निर्वाह मे सहायक सिद्ध हो जाते हैं। लेकिन विशुद्ध मुक्तक मे काव्यापेक्षित रस-निष्पत्ति करनी ही पडती है और वह भी विना किन्ही बाह्य सुविधाओ के कवि का सम्बल सीमित रहता है केवल उसके विचार सौन्दय और उक्ति-सौन्दर्य तक। इसीलिए सफल मुक्तक काव्य-साधना अपेक्षाकृत कठिन भी मानी गई है।

काव्य के मुक्तक रूप की साधना के मर्म को समझने के लिए आवश्यक है, कि इसके स्रोत पर थोडा सा विचार कर लिया जाय। किन्तु उसे भली-भाँति समझने के लिए प्रबन्ध तथा इतर कोटि के काव्य स्रोतो को भली-भाँति समझ लेना भी आवश्यक है। घटना विशेष, वातावरण-विशेष अथवा चरित्र विशेष का आकर्षण और उसकी रस-सिक्तता यदि प्रबन्ध काव्य को जन्म देती है तो विचार विशेष का अन्तर्निहित चमत्कार तथा रस-संकेत मुक्तक जो जन्म देता है। मुक्तक की ही कोटि

मे सुभाषित और नीति काव्य भी है। किन्तु नीति-काव्य मे उक्ति की रसात्मकता की अपेक्षा उसकी सर्वग्राही उपादेवता ही उसकी साधना है। परन्तु सुभाषित को ही वास्तव मे विशुद्ध-मुक्तक-काव्य कहना चाहिए। सुभाषित उक्ति को केवल भाषा-चमत्कार तक ही सीमित नही माना जा सकता। क्योकि यदि ऐसी उक्ति की कुछ भी सार्थकता है और उसमे कहने योग्य कुछ ललित भाषा मे कहा गया है तो वह कोई सुन्दर कथनीय और स्मरणीय विचार ही हो सकता है। वह काव्यबद्ध है केवल छन्दबद्ध नही। इसलिए उस उक्ति मे रस विशेष की प्राण प्रतिष्ठा होना भी अनिवार्य है। लेकिन यह तभी सभव है जब कि व्यक्त विचार रसग्राही हो अत निष्कर्ष यह निकला कि विशुद्ध सफल मुक्तक रस-ग्राही विचार होता है जो अपेक्षित और उपर्युक्त भाषा-सौष्ठव से युक्त होकर प्रस्तुत किया जाय। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि आकर्षक घटना विशेष, वातावरण विशेष अथवा चरित्र विशेष मुक्तक काव्य के विषय नही हैं। यदि यह सिद्धान्त मान्य है तब हमे बिहारी की सतसई पर इसी कसौटी को लिए हुए एक बार फिर से विचार करना पडेगा और देखना पडेगा कि बिहारी के द्वारा रचे गए सात सौ दोहे, क्या विशुद्ध अर्थ में मुक्तक कहे जा सकते हैं।

अब तक बिहारी की जितनी भी प्राचीन अथवा नवीन समीक्षाएँ देखने मे आयी प्राय: हर एक विद्वान आलोचक ने एक स्वर से यही माना है कि सतसई का प्रत्येक दोहा मुक्तक काव्य का श्रेष्ठ नमूना है और तर्क भी प्राय सभी के एक से ही हैं कि प्रत्येक दोहा अपनी अलग सत्ता रखता है, उक्ति चमत्कार से युक्त है और अभिनवगुप्ताचार्य के द्वारा दी गई मुक्तक की परिभाषा मे कथित "पूर्वापरनिरपेक्ष" की शर्त को पूरा करता हुआ न्यूनाधिक रसपूर्ण है अत मुक्तक काव्य है। किन्तु यह आलोचना बहुत छिछले स्तर की है।, इसमे आधार लिया गया है प्रधानतया केवल काव्य के बाह्य रूप का, उसकी आत्मा मे प्रवेश करके उसकी समीक्षा नही की गई है।

यदि बिहारी का निम्नलिखित दोहा लिया जाय तो उपर्युक्त कथन की सार्थकता स्पष्ट हो जायगी .

वहु धनु लै, अहसानु कै, पारो देत सराहि।
बैद-बधू, हँसि भेद सौं, रही नाह-मुह चाहि॥

इस दोहे का अर्थ स्पष्ट है कि कवि किसी वैद्य का स्पष्ट-चित्र खीच रहा है और अपनी मर्म भरी वाणी में उसकी विविध उपहासास्पद शारीरिक और मानसिक कमजोरियो का केवल चित्रण ही नही कर रहा है। वरन् उसका उपहास भी कर रहा है। इस दोहे से यह भी प्रत्यक्ष है कि कवि इसे लिखते समय किसी घटना एवं चरित्र विशेष से प्रेरित है। भले ही परिणाम-स्वरूप इस दोहे से, "खुदरा फजीहत दीगरा नसीहत" वाला जीवन सिद्धान्त भी समर्थित होता है। किन्तु यह असदिग्ध है कि इस दोहे को लिखते समय कवि के सामने पहले सिद्धान्त नही था वरन् व्यक्ति विशेष अथवा घटना विशेष ही थी, इसी प्रकार कविवर विहारी लाल का यह दोहा—

> स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि, विहंग, विचारि।
> बाज, पराऐं पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि॥

भी विचारणीय है। यो तो यह अपने काव्य रूप मे एक सुन्दर अन्योक्ति है। इसके सम्बन्ध मे बिहारी सतसई के प्राचीन और प्रसिद्ध टीकाकार माधवेश ने लिखा है कि 'सिन्ध के हिन्दू राजा कर्णबिन्दु पर मुगलो की सेना ने कई वार चढाई की थी किन्तु असफलता ही सदा हाथ लगी थी। अन्त मे मिर्जा राजा जयसिह को मुगल दरबार से चढ़ाई करने का आदेश दिया गया था। स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर जिस समय वे कर्णबिन्दु पर आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत हुए तो इनकी वीरता का कायल सिन्ध-नरेश कातर हो उठा, उसने आपको युद्ध से विरत करने की अनेक चेष्टाएँ की लेकिन उसे निराश होना पडा। अन्त में वह कविवर विहारी लाल की शरण मे आया और माधवेश ने लिखा है कि उपर्युक्त दोहा उसी समय विहारी ने लिखकर जयसिह को दिया था और उन पर इनका कुछ ऐसा प्रभाव पडा कि वे युद्ध से विरत हो गए और उस हिन्दू नरेश की स्वाधीनता सुरक्षित रह गई।'

यदि माधवेश का यह कथन इतिहास सिद्ध है तब तो कहना ही क्या ? किन्तु यदि यह केवल जनश्रुति मात्र ही हो तब भी इतना तो उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट ही है कि वह केवल कोरी सैद्धान्तिक अन्योक्ति का उदाहरण ही नही है। निश्चय ही इस दोहे को लिखने की प्रेरणा कवि को किसी ऐसी ही विचारोद्दीपिनी घटना से मिलनी

चाहिए। ऐसी दशा मे इस दोहे को भी हम विशुद्ध अर्थों मे ऊपर दी गई कसौटी के अनुसार केवल मुक्तक रचना ही नही मान सकते।

इसी प्रकार का बिहारी का एक और प्रसिद्ध दोहा है—

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिकाल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल॥

यह अन्योक्ति भी जनश्रुति के आधार पर महाराज जयसिंह के जीवन की एक प्रसिद्ध घटना से सम्बद्ध मानी जाती है। परन्तु इतिहासवेत्ता डा० राम प्रसाद त्रिपाठी जैसे विद्वान इस दोहे के साथ जुडी हुई जनश्रुति की ऐतिहासिकता को स्वीकार करने मे असमर्थ हैं। भले ही उक्त जनश्रुति अपनी अनैतिहासिकता के कारण जयसिंह के जीवन से सम्बद्ध न हो, किन्तु इस दोहे से जो ध्वनि निकलती है वह निश्चय ही किसी घटना विशेष या प्रसग विशेष से प्रेरित जान पडती है। इसके पीछे भी केवल सैद्धान्तिक उक्ति-चमत्कार मे कवि-उचित उल्लासमात्र नही देख पडता। अतः इसे भी केवल विशुद्ध मुक्तक की कोटि मे नहीं रखा जा सकता।

इसी कोटि मे बिहारी के अन्य भी न जाने कितने दोहे निरख और परख कर रखे जा सकते हैं।

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥
दिन दस आदरु पाइ कै, करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग ! सराध पखु, तौं लगि तौ सनमानु॥
मरतु प्यास पिंजरा-पर्‌यौ, सुवा समै के फेर।
आदरु दै दै बोलियतु, वाइसु बलि की बेर॥
जो सिर धरि महिमा मही, लहियति राजा राइ।
प्रगटत जडता अपनियै, सु मुकुटु पहिरत पाइ॥

बिहारी की इस कोटि की उक्तियों की प्रेरणा प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति विशेष अथवा घटना विशेष मे जान पडती है। ऐसी उक्तियो को हम किसी एक प्रसंग वश उठे हुए रस-सिक्त भाव का चमत्कारित उल्लास मात्र नही कह सकते।

इसी के विपरीत यदि वृन्द या रहीम के दोहो का अध्ययन किया जाय तो उनमे सूक्तियो की प्रेरणा व्यक्ति अथवा घटना से प्राप्त नही देख पडती। वरन् वे बहुत बडे अशो मे रसात्मक विचार और भावो के कवित्वपूर्ण उद्रेक हैं और उक्तियो का प्रधान लक्ष्य है—जीवन-सिद्धान्त-निर्धारण। अत वैसी उक्तियाँ अवश्य ही खरी

मुक्तक कोटि की मानी जा सकती हैं। बिहारी की बहुत सी उक्तिया इस कोटि की है। किन्तु सभी नही।

प्राय. अनुशीलन के क्षेत्र मे ऐसी ही समस्या सूर और अन्य भक्ति-रस-सिक्त पदो के गायको की कृतियो के सम्बन्ध मे भी उठती हैं। संस्कृत काव्य मे "गीतगोविन्द", के साथ भी यही समस्या शुरू हुई है। कथा-प्रवाह की अनुपस्थिति मे अथवा इतिवृत्तात्मकता न होने से ही किसी काव्य मर्मज्ञो ने "निबन्ध काव्य" की कोटि का निर्धारण किया था। उसके निर्धारित लक्षणो के अनुसार इस कोटि की रचनाएँ उसमे अधिक सार्थकता के साथ सन्निविष्ट होती हैं।

बिहारी की सौन्दर्य-सृष्टि

● डा० रमाशंकर तिवारी

सम्पूर्ण रीति-काव्य रूप-रस की चर्वणा का साहित्य है। परुष और कोमल, कर्त्तव्य और कामना, श्रेय और प्रेय—दोनो मौलिक राग-वृत्तियों का जैसा मनोरम मणि-काचन सयोग भक्ति-काव्य मे सम्पन्न हुआ था उसकी स्फूर्तिमयी परम्परा का संवहन रीति-काल मे लगभग असभव ही था। जातीय चेतना के चरम पतन की मनोवैज्ञानिक भूमिका मे जो मादक एव आत्मविस्मृतिशील काव्य रचा गया वह त्रिविध रगो से युक्त, मोहक साध्य-रक्तिमा[1] के समान ललित, मधुर एव आकर्षक है। यह देखकर अवश्य क्षोभ होता है कि इस युग के सिद्ध-सरस्वती के रससिद्ध कवियो ने व्यापक लोक-'सस्कृति' की अंतर्वर्तिनी धारा से सर्वथा असम्पृक्त रहकर, सामन्तीय 'सभ्यता' की वाहरी प्राण-शून्य चकमक की लपेट मे आकर जीवन का खड-चित्र ही उपस्थित किया, तथापि इस सत्य से भी आख नही मूँदी जा सकती कि अपने सीमित-संकीर्ण क्षेत्र मे इन्होंने मानव-हृदय की मधुरतम भूख की जो विशद एव मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की उसे हिन्दी-साहित्य की वैभव-राशि से यदि वहिष्क्रत कर दिया जाय तो स्पष्ट ही हमे अपनी गरीवी और कंगाली का भान हो जायगा। यह सच है कि यह कविता शृगारी है तथा "प्रेम की उच्च भूमि" पर नही पहुँचती; यह भी सच है कि "वासना को उसमे अपने प्राकृतिक रूप मे ग्रहण करते हुए उसी की तुष्टि को निश्छल रीति से प्रेम-रूप मे स्वीकार किया गया है—उसको न आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है, न उदात्त और परिष्कृत करने का।"[२] किन्तु इन नागर-कवियो ने नारी और वाणी का जो अभूतपूर्व शृगार किया है वह हिन्दी-साहित्य की अत्यन्त प्रिय एवं मृदुल सम्पत्ति है। विद्वानो की यह भी शिकायत है कि इस काव्य मे "रोमानी प्रेम की साहसिकता अथवा आदर्शवादी बलिदान-भावना"[३] भी प्राय नही मिलती। इस सम्बन्ध मे ध्यान देने की वात यह है कि रोमाटिक प्रेम का प्रयोग सभवत भारतीय प्रतिभा के प्रतिकूल रहा है—इधर आधुनिक काल मे जिस साहसिक, शौर्य-प्रधान अथवा आत्म-वलिदान-प्रधान प्रेम की चर्चा होने लगी है उसका मूल कारण पाश्चात्य सभ्यता का हमारा सम्पर्क है। "स्वाधीन चिता" का अभाव होने पर भी, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि रीति-काव्य "उस प्राचीन लोक-भाषा के साहित्य का ही विकास था जो कभी संस्कृत साहित्य को अत्यधिक प्रभावित कर सका था।"[४]

अन्तः सौन्दर्य का उन्मीलन :

बिहारी रूप-रस के लालची हैं। अन्त सौन्दर्य के उन्मीलन की कल्पना युग-धर्म के विपरीत पडती थी। काव्य के आस्वादको को, उनकी तत्कालीन मनोवृत्ति मे, नारी के स्थूल, चक्षुग्राह्य सौन्दर्य के प्रत्यक्षीकरण की आवश्यकता थी। कदाचित 'नवल नागरी' की माया-माधुरी का चित्रण उनके लिए एक अपेक्षणीय मानसिक क्षतिपूर्ति ('कम्पेन्सेशन') का विधान था। रसिक कवियो और उनके मौलि-मणि बिहारी ने मानो जीवन की अप्रिय एव कर्कश भूमिका मे से कोमलता और मधुरता की प्रतीक नारी को चुन लिया तथा उसके समस्त रूप-सौन्दर्य को अपनी रगीन कल्पना की माया मे निमज्जित कर एक ऐसे अभिनव रूप-काव्य की सृष्टि की जिसकी तुलना के लिए भारतीय शृगार-साहित्य मे अत्यन्त स्वल्प सामग्री मिलेगी। ऐसा समझा जा सकता है कि "नहिं पराग, नहिं मधुर मधु···" मे बिहारी अपने प्रतिपालक नरेश को उनकी नवल वधू की आसक्ति से विरत करना चाहते थे। किन्तु, इस उपदेश के लिए जिस "कान्तासमिततयोपदेशयुजे" वाली शैली का उन्होने आश्रय लिया वह परिणाम मे और भी मादक और मोहक सिद्ध हुई। बिहारी ने अपने प्रसिद्ध दोहे[५] मे अपने युग की सम्पूर्ण प्रवृत्ति का ही निर्वचन कर दिया है—"सगीत, कवित्व और कामिनी, तीनो अपने उपासको का पूर्ण आत्मसमर्पण चाहते हैं। अतएव, इनमे आ-प्राण डूब जाना ही आनन्ददायक हो सकता है।" जातीय जीवन के गर्व और गौरव के प्रतिनिधि-अंगो को जो गहरी चोटे लगी थी उसके लिए मधुर अवलेह और अंगूरी आसव की अपेक्षा थी। बिहारी के दोहो ने अनगिनत सौन्दर्य-चित्रो से यही कार्य सम्पन्न किया है।

सौन्दर्य अनिर्वचनीय है जिसकी सम्यक् व्याख्या अभी तक नही हो सकी है। वस्तुत मनुष्य के शरीर मे से वह उसी प्रकार प्रस्फुटित होता है जैसे एक परिपक्व सेव के फल में मधुर लाली। कहा गया है कि सौन्दर्य वह है जिसके दर्शन से मन को शान्ति मिले और आनन्द का उद्रेक हो। मानव-शिशु, या किसी दिव्य-भावापन्न रमणी की नव-कान्ति के दर्शन से शान्ति-मूलक आनन्द का प्रादुर्भाव होता है, किन्तु प्रणय-मूलक शृगार-क्षेत्र में 'रूप-पर्व' की आयोजना मूलत इस उद्देश्य से की जाती है कि दो प्राणियों का पारस्परिक आकर्षण घनीभूत एवं तीव्रतर होवे। यद्यपि बिहारी के रूप-चित्रो मे कामुकता की गध प्राय गहरी-सी लगने लगती है, तो भी कतिपय स्थलो मे रूप-आभा की नितान्त स्फूर्तिवर्द्धक व्यंजना हुई है। वास्तव मे, बिहारी द्वारा कल्पित अमल-वर्णा, अनिंद्य सुन्दरिया किसी भी साहित्य का शृंगार वन सकती हैं। उनके दोहो के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि उन्होने रूप-रग का भले-भाँति निरीक्षण किया था। एकाध प्रसगो के अतिरिक्त, बिहारी ने साँवलियो का मानो तिरस्कार ही किया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि संस्कृत-

काव्य मे स्त्री-शरीर का वर्णन साधारणत. श्यामल रूप मे नही मिलता। लोक मे भी नारियो की गुराई की ही अभ्यर्थना की जाती है। पुरुष श्यामल हो सकते हैं, किन्तु नारी—जिसके संसर्ग से समग्र जीवन और जगत् ही रूपवान्, आलोकमान् बन जाते हैं[६] का गौर-वर्ण होना भारतीय सौन्दर्य-दृष्टि आवश्यक मानती है। बिहारी ने भी इसी सौन्दर्य परम्परा का पालन किया है। यही क्यो, रोमांटिक काव्य-क्रान्ति के मूर्धन्य कवि 'प्रसाद' जी भी कामायनी को श्यामल नही बना सके।

बिहारी, जैसा अभी कहा गया है, रूप-कान्ति का यथेष्ट निरीक्षण कर चुके थे। यह सर्व विदित तथ्य है कि गुराई तीन प्रकार की लोक-प्रसिद्ध है—श्वेत, पीत और लाल। आ० द्विवेदी ने एक जगह लिखा है कि पीत और रक्त को तथा श्वेत और गौर को एक ही रंग मान लिया जाता है।[७] किन्तु, लोक स्पष्ट ही इन रंगो की पृथक्-पृथक् प्रतीति से अनुप्राणित है। श्वेत गुराई, पीली गुराई, लाल गुराई—इनका परिज्ञान, व्याख्यातीत होने पर भी, साधारण रूप-पारखी निश्चयमेव कर ही लेते हैं। बिहारी की श्वेत-वर्णा नायिका की निष्कलंक प्रभा अपनी उज्ज्वलता से प्रेक्षक के नयनो को भी उज्ज्वल बना देती है :

> "कहा कुसुम, कह कौमुदी, कितक आरसी-जोति।
> जाकी उजराई लखै, आँखि ऊजरी होति॥"

—तन-द्युति की उज्ज्वलता के प्रभाव से आँख भी उज्ज्वल हो गई! ऐसा जान पडता है, मानो सुन्दरी की प्रभा से दर्शक के नेत्रो मे, नायिका के रूप-रस के प्यासे होने के कारण जो कुछ कल्मष सचित था, वह भी धुल गया! ऐसे स्थलो मे, यह सौन्दर्य कामोद्दीपन नही करता अपितु श्वेत गौरता की एक अभिनव मूर्ति हमारे समक्ष उपस्थित कर देता है।

बिहारी ने प्रेमिका की इस गुराई-गौरव के स्वारस्य का निर्मल चन्द्रिका के साहचर्य मे अनुभव किया है। वस्तुतः नायिका की "जगर-मगर द्युति" का प्रतिस्पर्द्धी स्थावर जगत् मे कोई हो सकता है तो वह चाँदनी ही है जो रसिक-हृदय कवि तथा स्नेह-सुधा से आप्लावित प्रेयसी की अन्तरात्मा मे मनोरम स्वप्नो की सृष्टि कर देती है। चाँदनी के अभाव मे "नेह-नगर" के व्यवसायी प्रेमी-प्रेमिका को आनन्द-सृष्टि अवश्य ही धूमिल बन जाती है। कवि ने शुक्लाभिसारिका का एक अत्यन्त मनोरम चित्र अंकित किया है :

> "जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैक न होति लखाइ।
> सौंधे कैं डोरैं लगी, अली चली संग जाइ॥"

—नभोमंडल से विकीर्ण होने वाली रजत-धवल ज्योत्स्ना की नयनाभिराम धारा मार्ग को आप्लावित किये है। उसमे श्वेत रंग वाली, धवल-वसना प्रेमिका, गम्भीर गति से, पति-मिलन का उल्लास लिये, संचरण कर रही है। वह युवती—

पार्थिव जगत् का एक अभिनव आश्चर्य (miracle) घटित हो रहा है—चाँदनी मे मिल जाती है, दोनो एक-रूप, या यो कहें कि एक-मन, हो जाते हैं। कवि-प्रसिद्धि है कि पद्मिनी नारियो के शरीर मे से एक सुगन्ध निकलती है; उसी सुगन्ध के डोरे के सहारे सखी उस अभिसारिका की प्रतीति रखती चली जाती है। युवती को ज्योत्स्ना मे विलीन करने के लिए कवि को रूढि का आश्रय लेना पडता है, किन्तु श्वेत गुराई, जो नेत्रो को उज्ज्वल बना देने मे समर्थ है, ज्योत्स्ना मे 'एकमेक' घुल-मिल भी सकती है। जो लौकिक अनुभव-जगत् मे होता है उसे तो सभी ग्रहण कर सकते है, किन्तु जो कल्पना के लोक मे भी घटित हो सकता है अथवा होना चाहिए, उसकी स्फुट कल्पना एवं आह्लादमयी व्यजना सहृदय कवि ही कर सकते हैं। डा० श्यामसुन्दरदास का कथन है कि कवि-कल्पना के प्रति पाठक की "आस्तिक-बुद्धि" रहती है। वास्तव मे, जो समीक्षक यह मानते हैं कि कवियो का काम "मनुष्य की दुर्बलताओ को दुलराना"[८] नही, अपितु उन पर "निर्मम प्रहार" करना है, वे ऐसी 'आस्तिक-बुद्धि' की धारणा नही कर सकते। स्थावर और जगम (static और dynamic) का यह संमिलन—जो उक्त दोहे मे सम्पन्न हुआ है—प्रेम-लोक मे ही सभाव्य है तथा कवि की रूपवर्णा,भूति की मनोरमता का द्योतन करता है।

कल्पना और अनुभूति .

चमत्कार की प्रवृत्ति बिहारी की उर्वर कल्पना से यत्र-तत्र क्रीडा भी करवाती है। वहाँ उनकी सौन्दर्य-मूर्ति हमारी सहृदयता को उद्‌बुद्ध नही करती। एक दोहे मे[९] रात को एक-साथ जाने वाले श्रीकृष्ण और राधिका ऐसे घुलमिल जाते हैं कि चाँदनी से पृथक् उनके अस्तित्व की प्रतीति नही होती। राधा का गौर शरीर ज्योत्स्ना मे तथा कृष्ण का श्यामल शरीर राधा की परछाँही मे लुप्त हो गया है। यहाँ कवि ने, दो के बदले, तीन का परस्पर विलीनीकरण दिखलाने का उद्योग किया और सहृदय की 'आस्तिक-बुद्धि' का अवलम्ब छूट गया फलत उसकी कल्पना क्रीडा-कुतूहल की वस्तु बन गई है। प० रामनरेश त्रिपाठी का कथन है कि कविता मे मस्तिष्क हृदय का मजदूर है, वस्तुत यह भी जोडा जा सकता है कि कल्पना—जो मूलतः रूप-सृष्टि मे सहायक होती है—हृदय की सेविका है। कविता मे मस्तिष्क और कल्पना, उचित अनुपात मे मिश्रित होकर, जब हृदय-रस का उद्रेचन करते हैं तभी काव्य-द्राक्षासव की निष्पत्ति होती है।

डा० रामरतन भटनागर का कथन है कि बिहारी 'तारुण्य का सम्बन्ध स्वर्ण-वर्ण से जोडते हैं और गौर-वर्ण का कौमार्य से।'[१०] यह कथन सही नही है। ऊपर के उदाहरणो मे नायिकाएँ तरुणी हैं, कुमारी नही। तीन रगो वाली गुराई की लोकानुमोदित कल्पना जो बिहारी को अनुप्राणित करती है, उसे बिना समझे हम भ्रान्तिपूर्ण धारणा बना लेंगे। यद्यपि स्वयं बिहारी ने श्वेत-वर्ण को गौर-वर्ण कहा है, तथापि

उनके द्वारा चित्रित पीत वर्ण तथा रक्त वर्ण भी गुराई की समृद्ध पराम्परा के ही घटक तत्त्व हैं।

इन त्रिविध वर्णों मे से कनक-वर्ण (पीत वर्ण) बिहारी को सर्वाधिक प्रिय है। कदाचित् कनक-वर्ण के ही प्रति उनका अनुराग विशेष उद्बुद्ध हुआ है। कनक-वर्ण श्वेत-वर्ण के सान्निध्य मे अत्यधिक नयनाभिराम प्रतीत होता है। श्वेत रग की साडी पहने एक पीत-वर्णी युवती का चित्र देखिए

"सोहति धोती सेत मैं, कनक-बरन-तन बाल।
सारद-बारद-बीजुरी-भा-रद कीजत, लाल ॥"

—'हे लाल! श्वेत धोती मे सुवर्ण-रग वाली वह प्रेमिका ऐसी शोभती है कि उसके सामने शरद् ऋतु के बादल की बिजली की प्रभा भी व्यर्थ हो जाती है।' 'कनक-वर्ण' मे काव्य-रूढि हो सकती है, किन्तु यह समझना साहस का काम होगा कि कवि ने यह चित्त लोक से न लेकर शास्त्र से लिया है। कनक-रग वाली युवतियाँ आज भी सफेद साडी मे सहृदयो का चित्त हरण करती है, अतएव बिहारी ने स्वय इस रूप-रस की चर्वणा नही की थी—ऐसा नही कहा जा सकता।

जब यह कनक-वर्णा रूपसी कनक के आभूषण भी पहन लेती है तब, या तो शरीर का कनक-रग वास्तविक कनक की चमकीली द्युति से 'एकमेक' हो जायगा या अपने प्रतिस्पर्द्धी पदार्थ की चमक का हरण कर लेगा। एक जगह तो कवि की दृष्टि मे सवर्ण के आभूषण दर्पण के मोर्चे-जैसे हीन हेय प्रतीत हो रहे हैं। वह सुन्दरी को सलाह देता है कि तू 'कनक के भूषण' मत पहन, क्योकि इससे तेरे शरीर की नैसर्गिक प्रभा मे उत्कर्ष तो आता नही, उलटे तेरे लावण्य मे धब्बे-जैसी विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। अलकार के बिना भी नारी का नैसर्गिक सौन्दर्य कम स्पृहणीय वस्तु नही है—इस मार्मिक हृदय-सम्मत सत्य की अनुभूति कवि को हुई है। सेनापति की प्रेमिका शृङ्गार-सज्जा से विहीन, ताल, गीत आदि बधनो से रहित गायक की कमनीय अलाप-जैसी हृदयाकर्षक लग रही है।[११] स्नानोपरात सघन, श्यामल चिकुर-राशि सुखाने वाली "लाल मनरजन" से मिलने की प्रतीक्षा मे बैठी हुई नायिका की परिस्थिति का चित्रण कर सेनापति ने एक स्पष्ट मूर्ति हमारे समक्ष रख दी है। यह बात बिहारी की समास-पद्धति के अन्तर्गत लगभग असम्भव-सी ही है। किन्तु मूर्त्त के लिए अमूर्त्त की योजना कर जहाँ सेनापति ने निश्चित ही उस चित्र की 'अपील' कम कर दी है (क्योकि सगीत-मर्मज्ञ व्यक्ति ही प्रारम्भिक अलाप के सौन्दर्य का अनुभव कर सकते है), वहाँ बिहारी ने स्पष्ट शब्दो मे कनक-भूषणो की व्यर्थता व्यजित कर दी है:

"पहिरि न भूषन कनक के, कहि आवत इहि हेत।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत ॥"

जहाँ प्रेमिका का कनक-रग तथा भूषणो का स्वर्ण-रग परस्पर मिल जाते है, वहाँ तो कवि को एक विशेष रस मिलने लगता है:

"डीठि न परतु समान-दुति, कनकु कनकु सैं गात ।
भूषन कर करकस लगत, परसि पिछाने जात ।।"

कनक-वर्णा कामिनी की नैसर्गिक प्रभा तथा स्वर्णाभूषणो की पीत आभा दोनो इस प्रकार मिल गये है कि गहनो का भान स्पर्श की कर्कशता से ही होता है। कवि के इस रूप-चित्र मे आंख को ही तृप्ति नही मिलती, अपितु स्पर्शेन्द्रिय भी तृप्त हो जाती है। रूप-गौरव की अनुभूति के लिए करागुलियो का प्रयोग कवि की प्रकृत रसिकता का परिचायक है। इससे नायिका की शरीरकाति की निर्मलता का ही उन्मीलन नही होता, अपितु यह भी लक्षित हो जाता है कि उसका रूपाधायक चर्मावरण कितना मुलायम, कितना स्निग्ध भी है।[१२]

इस कनक-वर्ण का उद्योतन बिहारी ने पीत चमेली की उपमा देकर भी किया है। नायिका फूली हुई पीली चमेली के वन मे कौतुकवश छिप गई है। वर्ण-साम्य के कारण वह लक्षित न हो सकी—पुष्पित चमेली-वृक्षो की झुरमुट मे बैठी वह प्रेमिका स्वय कुसुमित चमेली का वृक्ष बन गई। ऐसी अवस्था मे कोई उसे कैसे लक्षित कर सकता था। केवल उसकी नैसर्गिक श्रेष्ठतर सुगन्ध ही उसके विज्ञापन का कारण बनी :

"कहि, लहि कौनु सकै दुरी सौनजाइ मैं जाइ ।
तन की सहज सुबास बन देती जौ न बताइ ।।"

प्रकृत सौन्दर्य-स्रष्टा के लिए रगो की मिलनमाया के प्रति जागरूक होना नितान्त अपेक्षणीय है। कीट्स, शेली, ब्राउनिंग प्रभृति प्रेम-कवियो ने रग-वैभव का मजुल चित्रण किया है। बिहारी की रगीन कल्पना भी रगो के विलास मे प्रचुर आनन्द लेती है। "अधर धरत हरि कैं परत..." वाले दोहे में "हरित बाँस की बाँसुरी" के इन्द्रधनुषीय रग धारण कर लेने की कल्पना पर मुग्ध होकर मिश्रबन्धुओ ने लिखा है कि "इन्होंने रगो और उनके मिलाव का बडा श्लाघ्य वर्णन किया है।" एक दोहे में नायिका के शरीर की सुनहरी आभा उसकी कुसुभी रग वाली लाल कचुकी को यो प्रभावित करती है .

"सोनजुही सी जगमगति, अँग-अंग जोबन-जोति ।
सुरँग, कसुंभी कंचुकी दुरँग देह-दुति होति ।।"

—कामिनी के अग-प्रत्यग मे नव-प्रस्फुटित यौवन की ज्योति जगमगा रही है तथा कुसुभ के रग मे रगी हुई लाल कचुकी उसकी स्वर्णिम-द्युति से मिल कर दुरंगी —रक्त-पीत मिश्रित—बन जाती है। इस मूर्ति की रमणीयता मे कवि की अपनी अन्तरात्मा की रगीनी मिल कर किस माया-माधुरी का जनन करती है, यह सहृदयो-द्वारा उपेक्षणीय नही। इस चित्र मे केवल चमत्कार नहीं है, बल्कि वास्तविकता तो यह है कि यहाँ चमत्कार केवल "बाइ-प्रॉडक्ट"—आ० द्विवेदी के शब्दों मे, 'फोकट का माल' है। प्रधान वस्तु है कवि की रस-लिप्सु सहृदयता। जिसकी निष्ठा ('सिन्सि-

यरिटी') का प्रमाण तब तक नही मिलता जब तक नवल-प्रेमिका की नवल यौवन-ज्योति कञ्चुकी के भौतिक रग मे परिवर्तन नही उत्पन्न कर देती । अतएव, यहाँ मूल-महत्व है कवि की सहृदयता का और यदि उसकी अभिव्यंजना मे चमत्कार की चकमक भी आ गई है तो वास्तविक कवित्व का प्रस्फुटन हो गया समझना चाहिए ।

कही-कही कवि की कल्पना क्रीडा भी करने लगती है । ऐसे स्थलो पर यद्यपि हृदय की रूप-रस की भूख पूर्णतया तृप्त नही होती, तथापि एकाध चित्रो मे पर्याप्त राग-मूलक रमणीयता एवं स्फूर्तिजनक आह्लाद का आविर्भाव होता है । निम्नस्थ दोहे मे जल-क्रीडा के लिए अधीर पीत-द्युति वाली कामिनी का एक गत्यात्मक चित्र देखिए :

"लै चुभकी चलि जाति नित जित जल-केलि-अधीर ।
कीजत केसरि-नीर से तित तित के सरि-नीर ।।"

—पीत-प्रभा वाली नायिका जल-केलि करती हुई, अत्यन्त अधीरता पूर्वक जिधर-जिधर नदी मे जाती है, इधर-उधर का पानी उसकी तन-द्युति के पीलेपन से केशर घोले जल के समान पीला होता जाता है । चित्र की सजीवता उपेक्षणीय नही है । जल-केलि की अधीरता मे वह क्रीडनशील चुलबुली युवती पानी मे दौडती हुई 'चुभकी' लगाती फिरती है । जिधर-जिधर वह हाथ-पाँव फेकती-सचरण करती है, इधर-उधर का जलप्रान्त मानो केशर में घुल जाता और पीला हो जाता है । प्रथम चित्र मे प्रेमिका की शरीर-प्रभा रक्तवर्ण कञ्चुकी मे नयी द्युति उत्पन्न कर देती है और साथ-ही अपने रूप की चकमक मे भी वृद्धि करती है ; प्रस्तुत चित्र मे जल-विहार करने वाली कामिनी एक विस्तृत जल-खड मे ही नवीन छवि और नवीन प्रभा के आविर्भाव मे समर्थ हो गई है । वस्तुत. "बाधक बुद्धि" (Meddling intellect'—Wordsworth) को नमस्कार कर, तनिक सहृदयता से कल्पना करने पर इस जल-केलि प्रवीण अप्सरा (Water-nymph) की आह्लाद-दायिनी मूर्ति हमारे सम्मुख नाचने लगती है । कीट्स की आग्ल-साहित्य मे चित्राकन प्रतिभा के लिए बडी प्रशसा की जाती है, किन्तु हमारा, व्यक्तिगत अध्ययन के आधार पर दृढ मत है कि बिहारी की रूप-सृष्टि-शील चित्रमयी प्रतिभा की होड मे कीट्स आसानी से ठहर नही सकता । कीट्स का विश्वास था कि कविता मे 'सूक्ष्म चित्रण की एक रमणीय अधिकता' होनी चाहिये । यह विश्वास उसके 'ईव आफ सेट ऐग्नीज', 'इजाबेला' प्रभृति प्रेमाख्यानो मे चारुता-पूर्वक प्रतिफलित हुआ है । बिहारी ने भी यद्यपि "कवित्त-रस" मे डूबने का सकेत किया है, किन्तु उन्हे अनेक कारणो से, 'प्रबन्ध-काव्य की विस्तृत वनस्थली' को त्यागकर मुक्तको का रमणीय 'गुलदस्ता' चुनना पडा जिसमे 'हृदय-कलिका को थोडी देर तक खिलने के' ध्येय से कल्पना की समाहार-शक्ति' तथा 'भाषा की समास-शक्ति' [13] को समन्वित करने का कलात्मक उद्योग नितान्त अपेक्षणीय सिद्ध हुआ । कीट्स के लिए केवल एक वास्तविक बाधा

थी—उसके अन्तर्मन में 'दर्शन-प्रेम' तथा एक 'परम रसीली विलास चेतना[१४] के बीच द्वन्द्व चला करता था। किन्तु सौभाग्यवश उसकी ऐन्द्रिकता विजय-लाभ कर जाती थी जिसके फलस्वरूप वह अपने राष्ट्रीय-काव्य का अभिनव श्रृगार कर सका। बिहारी जैसी मुक्तक-वरण की आवश्यकता कीट्स के लिए बाधक नही थी। इस प्रकार भाषा-सहृति और छद के कसाव को ध्यान मे रखते हुए बिहारी की मूर्ति-विधायनी प्रतिभा की कल्पना कर हम विस्मय-विमुग्ध हुए बिना नही रहेगे। 'जल केलि-अधीर', मौजी और चुलबुली युवतियाँ हिन्दी साहित्य मे—'विश्व-साहित्य' कहने मे तो गुरुजनो का भय लगता है—अन्यत्र कठिनाई से उपलब्ध होगी[१५]।

रक्तिम गुराई वाली रूपसियो का वर्णन अधिक नही मिलता है। कर, चरण और अगुलियो की रक्तिमा का ही चित्रण कुछ दोहो मे प्राप्त है।

रूप-सृष्टि :

बिहारी की रूप-सृष्टि के विषय मे एक बात ध्यान देने की यह है कि उन्होंने (और अन्य बदनाम रीति-कवियो ने भी), भारतीय गार्हस्थिक परम्परा के अनुकूल, नारी को श्वेत अथवा नीली साडी पहिना कर उसके सलज्ज सौन्दर्य की रमणीय मूर्ति चित्रित की है। इस सम्बन्ध मे कवि की बारीक दृष्टि नितान्त प्रशसनीय है। उसने सदैव शरीर-दीप्ति के आलोक मे 'तरल-धर्मिता' की प्रतिष्ठा की है। वह सौन्दर्य जिसमे 'गतिमयता' का आभास होगा, निश्चय ही उस सौन्दर्य से अधिक हृदयग्राही होगा, जिसमे स्थिरता है। निम्नलिखित एक चित्र से कवि की कला-दृष्टि पर मनोरम आलोक पडता है। यो तो बिहारी 'नवनागरियो' के उपासक नागरी-विलास के कवि समझे गये हैं, किन्तु यह देखकर किंचित् प्रसन्नता होती है कि उन्होंने भारतीय कौटुम्बिक जीवन से भी रमणीय चित्रो का आकलन किया है। भोजन कक्ष मे रसोई बनाती हुई एक नवयुवती की मूर्ति देखिये

"टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख-जोति।
लसति रसोई कैं बगर, जगर-मगर दुति होति॥"

भोजन बनाती हुई टटकी धुली हुई साडी पहने प्रेमिका के मुख की ज्योति अग्नि की चमक से और भी चटकीली हो रही है, वह रसोई घर मे इस प्रकार विराजती है तथा उसकी दीप्ति 'जगमग-जगमग' कर रही है। इस "जगर-मगर" की ध्वनि पर तनिक विचार कर लेना उस ग्राम्य बाला की सुषमा मे चार-चाँद लगा देता है। "जगर-मगर" से यह कल्पना जागृत होती है कि चूल्हे मे जलने वाली अग्नि की शिखाएँ जिस प्रकार एक नृत्य-सा करती प्रतीत होती हैं, उसी प्रकार उस सुन्दरी की मुख-ज्योति भी, मानो लपटो की प्रतिस्पर्द्धा मे, नाच-सी रही है। ज्योति मे वैसे भी गतिमयता की अवस्थित रहती ही है। युवती की शरीर-द्युति की तरलधर्मिता में जैसे उसकी अन्तरात्मा का हलका स्पदन भी दृष्टिगोचर हो रहा है।

शारीरिक आभा की 'जगर-मगर' सुषमा की व्यजना के हेतु बिहारी ने साडी

को किसी-न-किसी जल-खड से उपमित किया है। जल के भीतर पडी हुई वस्तु मे एक प्रकार का स्पंदन-सा दिखाई देता है—चाहे जल स्वय स्थिर हो या क्षीण उर्मियो म तरंगायित हो। नीचे के दोहे मे कवि ने एक सर्वथा नवीन उपमान की योजना कर एक नितान्त मंजुल रमणी-मूर्ति का अकन किया है .

"सहज सेत पचतारिया पहिरत अति छबि होति।
जलचादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ॥"

—नायिका अत्यन्त महीन, अत्यन्त हलकी, 'पंचतोलिया' (वजन मे पाँच तोले वाली) श्वेत साडी धारण किये हैं। उस निर्मल-धवल परिधान के भीतर उसका शरीर ऐसा दीप्तिमान हो रहा है मानो 'जलचादर' के पीछे दीपकावली जगमगा रही हो। ऊपर से गिरने वाले स्वच्छ जलप्रवाह के पीछे दीपराशि जैसी जगमग करती है वैसे ही श्वेत साडी के भीतर उस सुन्दरी की शरीर-ज्योति जगमग-जगमग कर रही है! इस जगमगाने मे प्रेक्षक अथवा भावक की अन्तरात्मा मे भी जगमगाहट, एक स्फूर्तिमय उल्लास की सृष्टि नही हो जाती—ऐसा वही कह सकता है जिसको लक्ष करके सस्कृत के रस-जीवी कवि ने "शिरसि मा लिख, मा लिख" की अभ्यर्थना की थी।

नीली साडी के झीने अचल पट मे छिपे रमणी-मुख की 'झलमलाहट' मे कवि ने कुछ ऐसे ही सौन्दर्य का दर्शन किया है :

"छिप्यौ छबीलौ मुंह लसै, नीलैं अचर-चीर।
मनौ कलानिधि झलमलैं, कालिंदी कैं नीर ॥"

—नदी के नीर मे झलमलाते हुए चन्द्र-बिंब का जिसने दर्शन किया है वही इस प्रेमिका के झलमलाहट भरे ललित मुख-बिंब के स्वारस्य की चर्वणा कर सकता है। वैसे ही, बिहारी ने झीने पट मे 'झुलमुल' करती हुई रूपसी की 'अपार ओप' को समुद्र में विलसित्ती हुई कल्पवृक्ष की पल्लवयुक्त डाल से [१६] तथा झीने घूघट-पट मे छिपे चमचमाते चचल नयनो को नदी के निर्मल जल मे उछलते मीनो से, [१७] उपमित किया है। कहने की अपेक्षा नही कि कवि ने ऐसे स्थलो पर वैयक्तिक अन्वेक्षण के सहारे सौन्दर्य की गतिमयता किंवा नृत्यशीलता के प्रति सहृदयो का ध्यान आकर्षित किया है। हमे भय है कि काव्य-रूढि के तर्क पर हिन्दी-काव्य की एक प्रभूत एव समृद्ध सौन्दर्य सृष्टि सुधी समीक्षको की मार्मिक दृष्टि से वचित रह जायगी।

'प्रसाद' जी ने कामायनी की जो रमणीय मूर्ति चित्रित की है, उसकी तनिक चर्चा कर लेना अप्रासगिक नही होगा। गाधार देश के चिकने नीले रोम वाले भेडो के चर्म-खड से ढँका कामायनी का सुन्दर शरीर इस प्रकार शोभित हो रहा था जैसे बादलो के वन मे गुलाबी रग का बिजली का फूल खिला हो :

'नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;

खिला हो ज्यो बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रग ।।"

डा० किरण कुमारी गुप्ता, का कथन है कि[१८] 'प्रसाद' जी के इस "सौन्दर्य-विलास" मे बिहारी की उपरिलिखित "छिप्यो छबीलो...." की स्पष्ट छाप है । यहा हमारा विनम्र निवेदन है कि दोनो ही कलाकारो ने अपने-अपने आदर्शों तथा दृष्टिकोणो के अनुरूप सौन्दर्याभिव्यक्ति मे समान सफलता पाई है । बिहारी की सौन्दर्यानुभूति सरल, स्पष्ट एवं लोकग्राह्य है । कौटुम्बिक मनोवृत्ति के कारण उनकी नायिका का मुख-बिंब नीले अचल-पट मे से मधुर झलमलाहट छोड रहा है । 'प्रसाद' की मनोवृत्ति रोमांटिक है, अत: उनकी कल्पित मूर्ति मे अधिक चकमक है, सभवत थोडी 'अस्पष्टता' भी । बिहारी की मूर्ति का साधारणीकरण घटित हो जाता है जब कि 'प्रसाद' की श्रद्धा, रागात्मक 'अनुभूति' से अधिक, हमारी 'कल्पना को जागृत करती है । बिहारी ने प्रत्यक्ष अनुभव से अपनी मूर्ति अकित की है जब कि 'प्रसाद' ने कल्पना के सुनहले, रगीन पखो पर चढ कर प्रथम मानवी की रूप-सृष्टि की है । रमणी-मूर्ति के आकलन के लिए भिन्न-भिन्न स्रोतो से प्रेरणा ग्रहण करने के कारण 'प्रसाद' और बिहारी, दोनो की अभिव्यक्तियो में भी अन्तर पड गया है । श्रद्धा का 'मृदुल अधखुला अग' 'बिजली का फूल' है—किन्तु बिजली के फूल मे सम्भवत चमक की 'प्रखरता' होगी, इसलिए 'प्रसाद' ने उस चकमक को 'मृदुल' बनाने के लिए बिजली के फूल को 'गुलाबी रग' से रग दिया । बिहारी ने "जल-चादर के दीप लौं" कह कर अपनी सूत्र-शैली मे जो रूप-दीप्ति व्यजित की है उसे ही व्यक्त करने के लिए 'प्रसाद' को गुलाबी रग मे रगे बिजली के फूल की कल्पना करनी पडी है । उसी प्रसग मे 'प्रसाद' ने कामायनी के देदीप्यमान मुख को ज्वालामुखी की धधकती लपटो से उपमित किया है । इस चित्र को देख कर शेक्सपीयर की रोमांटिक प्रेमिका जूलियट का स्मरण हो जाता है जिसकी मौखिक काति की व्यंजना मे वह कहता है कि जूलियट एक कोडी 'चोर-बत्तियो' (टॉर्च) की संमिलित चमक से भी अधिक चमकती थी ।[१९] 'प्रसाद' जैसे रोमांटिक सौन्दर्य-द्रष्टा कल्पना द्वारा सृष्ट रूप की अभिव्यक्ति मे जितने सफल हुए हैं, निश्चय ही उतने ही सफल, अपनी सीमा मे बिहारी भी हुए हैं । यदि 'प्रसाद' की नायिका अनेक लोकोत्तर उपमानो की रगीनी मे वेष्टित हो हमे विस्मय मे डाल देती है, तो बिहारी का जगर-मगर दीप्ति-वाली लजीली प्रेमिका हमे, अपने घर मे ही, अपनी दिन-रात की दुनियाँ मे ही, सहज-स्निग्ध सौन्दर्य की खोज करने के लिए अनुप्राणित करती है ।

नख-शिख परिपाटी के अन्तर्गत बिहारी ने गठनात्मक सौष्ठव के बदले विभिन्न अगो की मसृणता एव दीप्ति का ही विशेष वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त भाला

बिन्दी, कर्णफूल, बिछिया, मेंहदी, महावर इत्यादि सौन्दर्य-विधायक उपकरणो के नितान्त मंजुल और मनोहर चित्रो से 'सतसई' जगमगा रही है। नवीन-प्लैटॉनिस्ट (Neo-platonist) प्रसिद्ध दार्शनिक प्लौटिनश (Piotinus) ने बाह्य रूप वा आकृति मे सौन्दर्य की अवस्थिति का प्रत्याख्यान करते हुए कहा है कि "सौन्दर्य एक प्रकार की ज्योति है जो किसी पदार्थ या शरीर की सममातृता ('सिमेट्री') से 'प्रस्फुटित' होती है, किन्तु जो स्वयं सममातृत्व नही है; इसी 'ज्योति' मे सौन्दर्य निवास करता है।"[20] रस-जीवी कलाकारो के लिए इसी 'ज्योति' मे अनिर्वचनीय आकर्षण रहता है। यही कारण है कि बिहारी ने नायिका के विभिन्न अंगो या अवयवो की दीप्ति का ही मनोरम उन्मीलन किया है। पुन:, पडितो ने बताया है, और अनेक विख्यात प्रेमियो ने निर्दशित किया है, कि वस्तुतः सौन्दर्य, जिसका प्रधान गुण है प्रसादन, आकर्षण तथा अभिभूत-क्षमता, वस्तुगत न होकर विषयगत है। विदेशी साहित्य को छोड दें, तब भी कृष्ण का कुब्जा-विषयक प्रेम विषयिगत सौन्दर्य से ही निष्पन्न माना जायगा। इस कोटि की सौन्दर्यानुभूति मे विषयी की व्यक्तिगत रुचि वा मन स्थिति ही निर्णायक होती है—"भिन्नरुचिर्हि लोक:"।[21] बिहारी सौन्दर्यानुभव के इस सूक्ष्म परिपार्श्व से भी अवगत हैं·

"समै-समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ।।"

सुकुमारता अथवा कोमलता और माधुर्य का नितात स्तुत्य एवं स्पृहणीय प्रत्यक्षीकरण कवि की अभिराम रूप-सृष्टि मे निष्पन्न हुआ है। सुकुमारता की बडी ...यग्राही व्यंजना निम्नाकित दोहो मे हुई है.

(१) "भूषन-भारु सम्हारियै क्यौं यह तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं सोभा ही कैं भार।।"

(२) "अरुन बरुन तरुनी चरन अँगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरँग रँगु सी मनौ चपि बिछियनु कैं भार।।"

(३) "यौं दलमलियतु निरदई, दई कुसुम सौं गातु।
करु धरि देखौ धरधरा उर कौं अजौं न जातु।।"

—प्रथम चित्र मे, अत्युक्ति की छाप हाने पर भी, शारीरिक सुकुमारता की भावना के साधारणीकरण में किसी प्रकार की बाधा नही पडती। द्वितीय चित्र मे अरुण-दीप्ति-मती तरुणी की कोमल पादागुलियो से, बिछियो के दबाव के कारण, इंगुर के रग चूने की कल्पना मे उस तन्वगी सुकुमारी की स्पष्ट मूर्ति सामने खडी हो जाती है। तीसरे चित्र मे, हृदय की धडकन को कुसुम-कोमल गात्र से सम्बद्ध करके सुकुमारता की मृदुल, मोहक कल्पना का मूर्तीकरण हुआ है। शुद्ध चमत्कार-पूर्ण चित्रण भी, कोमलता की व्यजना मे, 'सतसई' मे उपलब्ध है, किन्तु वैसे स्थलो को प्राधान्य

देकर कवि की वास्तविक रागमूलक रमणीयता पर पर्दा डाल देना उसके साथ घोरतम अन्याय होगा। वास्तव मे युग-प्रवृत्ति के तुष्ट्यर्थ "वैदग्ध्यभगी-भणिति" का तिरस्कार करना बिहारी के लिए असभव ही था।

सौन्दर्य के तीसरे प्रमुख तत्त्व 'माधुर्य' की अत्यन्त मोहक एव निसर्गसिद्ध व्यजना 'सतसई' के रूप-लोक मे निष्पन्न हुई है। वस्तुत: सौन्दर्य मे यदि मिठास न हो, तो उसकी चर्वणा क्योकर हो सकती है? रूप-माधुरी को आस्वाद्य बनाने मे कला की पूर्ण महिमा प्रस्फुटित होती है। ऐसे चित्रो मे नेत्र और स्पर्श से आगे बढ कर, भावुक की रसनेन्द्रिय भी परितृप्त होती है। कीट्स की इस जाति की ऐन्द्रिकता की भूरि-भूरि स्तुति की गयी है। हमारा विश्वास है कि बिहारी की इन्द्रिय-तृप्ति-मूलक कला कीट्स की कला से कथमपि हीन नही है।

यौवन का मूल्याकन :

वय. सधि का चित्रण शृगार-काव्य का एक परम-प्रिय विषय रहा है। हिन्दी काव्य-गगा मे शृगार-धारा के प्रथम मान्य प्रवर्त्तक 'मैथिल-कोकिल' विद्यापति ने शैशव एव यौवन के मध्य, नव बाला के शरीर-राज्य पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए, एक कुतूहल-जनक सघर्ष की उद्भावना की है। सेनापति ने शैशव-निशा के अवसान और यौवन-दिन के उदय की मध्यवर्ती "प्रभात की झाईं" के रूप मे सुषुप्त महाराज अनगदेव के नव-जागरण का दर्शन किया है :

"काम-भूप सोवत सो जागत है।"

'यौवन-नृपति' अथवा मदन-महिपाल की कल्पना तो जैसे शृगार-काव्य की आधार-शिला ही है, तथापि वय सधि के चित्रण मे बिहारी ने जो मार्मिक दृष्टि और मौलिक उद्भावना दिखाई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। जैसा ऊपर कहा गया है, बिहारी रूप-दीप्ति से बडे प्रभावित थे। नीचे दिये गये उदाहरण मे शैशव की 'झलक' और यौवन की 'झलक', परस्पर आँख-मिचौनी करती हुई, चित्रित की गई हैं

"छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता-रग॥"

—धूपछाँह कपडे मे अरुण-श्यामल रंगो का कुछ ऐसा अनूठा मिलाव रहता है कि बडी से बडी सूक्ष्म दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए भी यह बताना मुश्किल हो जाता है कि अमुक स्थल पर, अमुक क्षण मे, श्यामल-रंग दीख पडता है और अमुक स्थल पर, अमुक क्षण मे, अरुण-रंग का अलोक चमकता है। उस मुग्धा नवयौवना के शरीर मे कौमार्य एवं तारुण्य, धूपछाँह कपडे की अनिर्वचनीय दीप्ति के समान, अपनी-अपनी झलमलाहटे छोड रहे हैं। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि शिशुता एवं यौवन की, एक अत्यन्त तथा जटिल ढंग से, 'धप्-धप्' चमकने वाली दीप्तियो के निदर्शन मे कवि ने उस नव-बाला की मानसिक-दीप्तियों की, उसकी क्षणे-क्षणे बदलती आन्तरिक चेतनाओ की मोहक मिलावट की ओर भी कलात्मक सकेत किया है। यहाँ कवि

को रूप-सृष्टि करने वाली कल्पना उसके हृदय की परिचारिका बन गयी है। काव्य द्राक्षासव की ऐसी मधुर कनक-कटोरियों की 'सतसई'-सागर में निश्चयमेव कोई कमी नहीं है।

इस नव-प्रस्फुटित-यौवना के क्रमिक विकास का भी बिहारी ने, सूक्ष्म अवेक्षण के आधार पर, नितांत मनोरम चित्रण किया है। कवि इस सत्य से परिचित है कि नेत्र, उरोज, नितम्ब प्रभृति अवयवों के विकास के साथ-साथ नव-बाला का मानसिक (Psychological) विकास भी सम्पन्न हो रहा है :

"अर तैं टरत न बर-परे, दई मरक मनु मैन।
होडा-होडी बढि चले चितु, चतुराई, नैन॥"

मनोविज्ञान बतलाता है कि 'वय सधि' अत्यंत जटिल 'मन -सधि' की अवस्था का द्योतक है। इसमे बालक या बलिका की अतरात्मा मे शतश., सहस्रशः अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन घटित होते हैं जिनकी यथातथ्य, सही-सही व्याख्या करना लगभग असम्भव-सा हो जाता है। आन्तरिक विकास के एक निश्चित सोपान की व्यंजना कवि ने .

"होडा-होडी बढि चले चितु, चतुराई, नैन।"

मे अत्यन्त विदग्धता-पूर्वक की है। 'चित्त', 'चतुराई' और 'नयन'—इन तीनो का विकास ही तो कैशोरावस्था—"प्री-ऐडोलेसेन्स"—से यौवनावस्था"—ऐडोलेसेन्स"—मे होने वाले सक्रमण ('ट्रांजिशन') की मूल-भित्ति है। इन तीनो तत्वो मे ही सक्रमणकालीन समस्त शारीरिक और मानसिक, 'फिजियोलौजिकल' और 'साइकोलौजिकल' परिवर्तनो को कवि ने सूत्र-रूप मे समाहित कर दिया है। पुनः "होडा-होडी बढि चले" मे चित्त, चतुराई और नेत्रो की जिस प्रतिस्पर्धा की विज्ञप्ति की गयी है, वह सर्वथा सत्य निरीक्षण की पीठिका पर आधारित होने के साथ-साथ, शास्त्रीय दृष्टि से भी अनुमोदित है। वास्तव मे, बिहारी का अवेक्षण तथा अनुभव, आधुनिक मनोवैज्ञानिक पडित के प्रयोगशाला-जन्य ज्ञान से कम महत्त्व का नहीं है। वय.-सधि की सीमा का अतिक्रमण करते ही, यौवन के सिंहद्वार पर पदार्पण करने वाली निरन्तर-विकसनशील बाला की अन्तरात्मा अनेक, अनिर्वचनीय तथा पकड मे न आने वाली 'इल्यूसिव' (Elusive) भावनाओ और चेतनाओं की रंगस्थली बन जाती है। आधुनिक शरीर-शास्त्रियो का कथन है कि मानसिक प्रतिक्रियाओ वा चेतनाओ का प्रभाव मनुष्य की बाह्य आकृति, विशेषत उसके मुखमंडल, पर पडता है। हृदय के भीतर होने वाला, क्षणे-क्षणे नवता को प्राप्त होने[२२] वाला भाव-नाट्य नव-यौवना की बाह्य रूप-दीप्ति मे भी सूक्ष्मतया प्रतिबिंबित होगा। हमको और आपको, बिजली की कौंध के समान चमक कर विलीन होने वाली और फिर चमकने वाली इन नव-कांतियो के अवलोकन और आस्वादन के लिए न अवकाश है, न अभिरुचि। किन्तु, जो कलाकार नारी और वाणी, दोनो का शृंगार करने का अभिलाषी है, उससे

तो हम यह आकाक्षा करेगे ही कि वह अपनी विकसित-यौवना नव-नायिका की नव्य-नव्य छवियो का कलात्मक उन्मीलन करे। विहारी ने निम्नलिखित दोहे मे विकसन-शील यौवन का मंजुल मूल्यांकन किया है :

"लिखनि वैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥"

चित्रकार केवल अगो और अवयवो का ही चित्र नही उतारता है। वस्तुत. उसकी समस्त कला का नियोजन इस ध्येय से होता है कि उन अवयवो के माध्यम से जो काति प्रस्फुटित होती है, जो भावी-वीचियो का मधुर एव सूक्ष्म नृत्य प्रतिफलित होता है, उसे नयनगोचर बना कर, प्रेक्षक के हृदय को उसका बिम्ब-ग्रहण कराया जाय। वस्तुत. भावो को सवेद्य बनाना ही चित्रकला, सगीत और काव्य का प्रधान धर्म है। उक्त दोहे मे प्रति-क्षण विकसित होने वाली नवयौवना की नव-नव कातियो तथा नव-नव भाव-छायाओ को पकडने और रग तथा तूलिका की माया मे बांध देने की असमर्थता के कारण अनेक चतुर चित्रकार हतबुद्धि, हतदर्प हो गये हैं। कवि ने हमे वह छटा दिखाई है जिसकी, जीवन की घिसघिस मे, हमे अनुभूति नही होती अथवा जिसके अनुभव का अवकाश नही मिलता।

सौन्दर्यानुभूति की व्यापकता·

विहारी ने अपने चुने क्षेत्र मे सौन्दर्य की प्रत्येक सभव स्थिति, प्रत्येक आकर्षक 'पोज' का रसोन्मीलन किया है। हाव-भावो की व्यजना करने मे तो वे परम निपुण हैं ही।[२३] यह सच है कि कतिपय स्थलो मे उन्होने परिष्कृत रुचि का ध्यान नही रखा है—कही तो ठेठ ग्राम्यत्व या भदेसपन की सीमा को स्पर्श करने लग गये हैं और कही नव-नागरी की व्याख्यापन मे शुद्ध विलास की "रुग्ण मनोवृत्ति" को खनखनाने-झनझनाने लग गये है। तथापि, ऐसे चित्रो के बावजूद 'सतसई' में, यथेष्ट सख्या मे ऐसी सौन्दर्य-मूर्तियाँ उपलब्ध हैं जिनमे कला-रस और हृदय-रस का मनोरम मिश्रण हुआ है। सबसे बडी बात यह है कि उन्होने ग्राम्य नारियो की ओर भी सौन्दर्य-चयन की दृष्टि दौडाई है। सरोवर मे स्नान करते समय, स्नानोपरात सरोवर से निकलते समय, जूडा बांधते समय, ऊँची डाल से फूल तोडते समय, चरखा कातते समय, दहेडी धरते समय,—जब-जब इन्होंने ग्राम्याओ के निश्छल, नैसर्गिक सौन्दर्य की झाँकी पायी है, तब-तब चतुर चितेरे की भाँति, शब्द और छन्द मे बांधकर, उन्होने उन भोली सुन्दरियो को काव्य की अमर सम्पत्ति बना दिया है। यह अवश्य है कि उन्होने नाग-रिको को गँवारिनो से अलग रहने की सलाह दी है, किन्तु इसका कारण यह है कि उनके काव्य के लक्ष्यीभूत पाठक वा आस्वादक नागर-जन थे जो नागरी अगूर चखने के बाद ग्राम्य निबौरी के रचमात्र स्पर्श से भी घबरा जाते थे.

"तो रस-रांच्यौ, आन-बस, कहौ कुटिल-मति कूर।
जीभ निबौरी क्यौ लगै, बौरी चाखि अँगूर॥"

'सतसई' के सौन्दर्य-लोक में सरस, मनोरम चित्रो की एक चटकीली 'गैलरी' की अवतारणा हुई है जो 'नव-नागरी' के 'नवल-नेह' की सीमाग्रो से मर्यादित होने पर भी, बिहारी की सौन्दर्यानुभूति की व्यापकता, विशदता, सूक्ष्मता एवं मार्मिकता का मजुल साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। वास्तव मे, कविता और कामिनी का शृगार बिहारी से बढकर दूसरा कोई कलाकार नहीं कर सका।

संदर्भ-संकेत

(१) "सायक सम मायक नयन, रगे त्रिबिध रँग गात।"—बिहारी।

(२) डा० नगेन्द्र . 'रीति-काव्य की भूमिका।'

(३) वही।

(४) डा० ह० प्र० द्विवेदी : 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका'।

(५) "तत्रीनाद, कवित्त-रस, सरस-राग रति-रँग।
अनवूडे बूडे तिरे जे बूडे सब अग॥"

(६) "प्रेयसी किसके सहज ससर्ग से, दीखते हैं प्राणियो को स्वर्ग से ?
'साकेत', प्रथम सर्ग।

(७) 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका'—पृ० २५४।

(८) डा० सुधीन्द्र . 'हिन्दी कविता मे युगान्तर'।

(९) "मिलि परछाही जोन्ह सौ, रहे दुहुनि के गात।
हरि राधा इक संग ही, चले गली महि जात॥"

(१०) 'बिहारी—एक अध्ययन'।

(११) "ताल गीत विन, एक रूप कै हरति मन,
परवीन गायन को ज्यों अलापचारी है।"—'क०-र०'।

(१२) अलंकार इत्यादि प्रसाधनो की व्यर्थता निम्नाकित दोहो मे व्यक्त की गयी है—

(अ) मानहुँ विधि तन-अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबै काज।
दृग-पग-पोछन कौं करे, भूषन पायदाज॥

(आ) करतु मलिन आछी छबिहि, हरतु जु सहजु बिकासु।
अगरागु अगनु लगै, ज्यौं आरसी उसासु॥

(१३) आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी-साहित्य का इतिहास'।

(१४) i 'Poetry should surprise us by a fine excess.'
ii 'An exquisite sense of the luxurious.'

(१५) पीत-द्युति वाली नायिकाओं का चित्रण निम्नलिखित दोहो मे भी हुआ है। 'दीपशिखा' स्त्री-कांति के लिए डॉ० द्विवेदी के मतानुसार रूढ उपमान है, किन्तु

इसमे हमारः इस कल्पना मे बाधा नही पडती कि बिहारी ने लोक-प्रसिद्ध त्रिविध गुराई का चित्रण किया है।

(अ) "अंग-अंग नग जगमगत, दीपसिखा-सी देह।
दिया बढाए हूँ रहै, बडौ उज्यारौ गेह॥"

(आ) "दीप-उजेरे हू पतिहिं हरत बसनु रति-काज।
रही लपटि छबि की छटनु, नैकौं छुटी न लाज॥"

(इ) "कंचन-तन धन बरन बर, रह्यौ रंग मिलि रंग।
जानी जाति सुबास ही केसरि लाई अंग॥"

(१६) "झीनैं पटमैं झुलमुली, झलकति ओप अपार।
सुर-तरु की मनु सिंधु मैं, लसति सपल्लव डार॥"

(१७) "चमचमात चचल नयन बिच घूघट-पट झीन।
मनौ कलानिधि झलमलैं, कालिंदी कैं नीर॥"

(१८) 'साहित्य-सन्देश', आलोचनाक, १९५१ "हिन्दी साहित्य को रीतिकाल की देन"।

(१९) "Taught twenty torches to burn bright"

(२०) Beauty is rather a light that plays over the symmetry of things, than the symmetry itself, and in this consists its charm."

—बोसांके 'सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास'।

(२१) रवीन्द्रनाथ टैगोर ने नारी के लिए कहा है—

"O woman! Thou art half dream and half reality,"

—'अर्द्ध-स्वप्न' मे विषयगत तत्व और 'अर्द्ध-तथ्य' मे विषयिगत तत्व की स्वीकृति निहित हैं, वास्तव मे सौन्दर्यानुभव का यही सही निरूपण है।—दे० 'सिद्धान्त और अध्ययन' (बाबू गुलाबराय)।

(२२) "क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया"।

(२३) "बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, दैंन कहै, नटि जाइ॥"
"नासा मोरि, नचाइ दृग, करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकै हिए, गडी कँटीली भौंह॥"
"ललन-चलन सुनि पलन मैं अँसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिन्ह हूँ झूठै ही जमुहाइ॥"

बिहारी और सतसई विषयक प्रकाशित लेखों की सूची

अग्रगामी (जयपुर)

बिहारी कृत सतसई मे विदेशी शब्द, ले० व्लादमिर मिल्टनर, जनवरी १९६१

अवन्तिका

महावरी का मर्म, ले० श्री मणिशंकर, मार्च १९५४

,, ,, ले० डा० रामानन्द तिवारी, जुलाई १९५४

आर्य महिला

सतसईकार बिहारीलाल जी की भक्तिमयी सूक्तियाँ

ले० प० लोकनाथ शिलाकारी, मई १९३४

आर्किव ओरियन्टल्नी

ओल्ड ब्रज मार्फोलॉजी इन दि बिहारी सतसई, ले० व्लादमिर मिल्टनर प्राहा ३०, १९६२

दि म्यूजिकल कैरेक्टर आफ दि वर्सेज़ आफ बिहारी लाल, ले० व्लादिमिर मिल्टनर प्राहा, ३१, १९६३

आलोचना

बिहारी सतसई, ले० श्री विश्वम्भर मानव, अक्टूबर १९५२

कादम्बिनी

बिहारी और गुलाब, ले० रतनलाल मिश्र, अगस्त १९६५

जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी

अरबिक एण्ड पर्शियन वर्ड्स इन सतसई

ले० आर० पी० ड्यूहर्स्ट, सन् १९१५

टाइम्स आफ इण्डिया एनुअल

काँगडा पेंटिंग्स आफ दि बिहारी सतसई ले० एम० एस० रधावा, १९६४

(छ) नागरी प्रचारिणी पत्रिका

बिहारी का आत्मपरिचय, जनवरी १९१९ : पृ० १५१ .

महाकवि बिहारीदास की जीवनी, ले० रत्नाकर जी, स० १९८४ : पृ० ८७

हिन्दी साहित्य मे बिहारी, ले० प० ललिता प्रसाद शुक्ल, सं० १९८४ : पृ० ४२१ :

विहारी सतसई सम्बन्वित साहित्य, ले० रत्नाकर जी, सन् १६२६ ई० : खड ६, १० :

विहारी रत्नाकर की पाठ समस्या, ले० श्री कन्हैया सिंह अक २, सं० २०१७

प्रभा

देव और विहारी ले० गंगाधर मिश्र, फरवरी, १६२२

विहारो और प्राचीन सस्कृत कवि, फरवरी, १६२४

प्रसाद

विहारी की काव्य चर्चा ले० श्री करुणापति त्रिपाठी, (सितम्बर से दिसम्बर तक धारावाहिक) १६६२

(ञ) ब्रज भारती

विहारी की वाग्विभूति, ले० डा० राकेश गुप्त,
चैत्र-वैसाख, सं० २००८।

व्रज भापा मे सतमई की परम्परा—ले० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, चैत्र-ज्येष्ठ २००६

विहारी सतसई की एक नई टीका, ले० श्री उदयशकर शास्त्री, फाल्गुन, सं० २०११

विहारी के प्रति : कविता ले० श्री रामलला, ज्येष्ठ २०१४ वि०

विहारी का शब्द विधान, ले० जीवनप्रकाश जोशी, ज्येष्ठ, सम्वत् २०१६

महाकवि विहारीलाल का साहित्यतीर्थ, ले० वालमुकुन्द चतुर्वेदी, भाद्रपद स० २०२२

'विहारी रत्नाकर मे शब्दार्थ सवधी भूले' श्री रामस्वरूप विशारद, फाल्गुन २०२५

विहारी की भक्ति भावना, प्रो० सुरेश चन्द्र दुवे, फाल्गुन २०२५

भारतेन्दु

कविवर विहारी का इतवृत्त ले० राधाचरण गोस्वामी, जनवरी, सन् १८८६

माधुरी

विहारी के एक दोहे की टीका, ले० रत्नाकर जी, नवम्बर, १६२२

विहारी और सौन्दर्य विज्ञान, ले० वावू गुलावराय, दिसम्बर १६२२

विहारी सतसई के पहले दोहे की टीका, ले० आ० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी जनवरी, १६२३

सजीवन भाष्य के कुछ अश की सक्षिप्त आलोचना ले० लक्ष्मणसिंह, जुलाई १६२३

देव और बिहारी, ले० रामस्वरूप शर्मा शार्दूल, दिसम्बर १६२३

बिहारी रत्नाकर, ले० डा० गंगानाथ झा, नवम्बर १६२६

दास और बिहारी, ले० प्रेमी, दिसम्बर १६२६

बिहारी बोधिनी, ले० कृष्णबिहारी मिश्र सितम्बर, १६२८

बिहारी की सतसई और उसके टीकाकार, ले० किशोरीदास वाजपेयी आश्विन तथा कार्तिक, स० १६८

संस्कृत मे महाकवि बिहारी, ले० भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, मार्च १६३१

बिहारी का साहित्य बिहार, ले० कालीकुमार मुखोपाध्याय, स० १६६०. (पृ० ६०७)

सतसई सप्तक, ले० मायाशकर याज्ञिक, आश्विन, सं० १६६१

रसवन्ती

बिहारी की काव्यकला, ले० डा० विजयेन्द्र स्नातक, फरवरी, १६६०

राजस्थान भारती

बिहारी सतसई की सबसे प्राचीन प्रति, ले० दीनानाथ खत्री, जुलाई-अक्टूबर १६६४

राष्ट्रवाणी

बिहारी का सौन्दर्य बोध, ले० बाबू गुलाबराय, अगस्त १६६०

बिहारी सतसई के अध्ययन की कुछ नई दृष्टियाँ, ले० डा० भागीरथ मिश्र, सितम्बर १६६०

विक्रम

बिहारी का भाषा सौन्दर्य, ले० आ० दुर्गाशंकर मिश्र, सितम्बर १६५१

(द) श्री शारदा

बिहारी और देव, ले० लाला भगवानदीन अक्टूबर, सन् १६२१ से मई सन् १६२२ तक

सजीवन भाष्य के कुछ अंशो की प्रत्यालोचना, ले० समदर्शी, भाद्रप्रद १६८०

सम्मेलन पत्रिका

मुक्तक काव्य और बिहारी के दोहे, ले० ललिता प्रसाद शुक्ल, पौष शुक्ल स० २०११ एम० ए०

विहारी की सौन्दर्य सृष्टि, ले० रमाशंकर तिवारी, स० ३ स० २०११

(ध) साहित्य समालोचक

बिहारी की मौलिकता

(१) अमरूशतक और विहारी सतसई, ले० श्री रामसेवक पाण्डेय, शिशिर वसत, सम्वत् १६८२-८३

(२) गोवर्द्धनाचार्य और बिहारी, ले० लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय

विहारी का अपहरणदोष, ले० वैद्य मधुसूदन शास्त्री, पृ० ११७

बिहारी के दुर्लभ दोहे, जनवरी, १६२५

(न) सरस्वती

'विहारी और फारसी कवि सादी' ले० पद्मसिंह शर्मा, जुलाई १६०७

सतसई सहार, ले० पद्मसिंह शर्मा, १ जनवरी, १६१० से पृ० २६ से ४४६ तक

सतसई सहार की कुछ उक्तियो पर एतराज, मार्च, १६११

कविवर विहारी कौन थे, ले० बनारसीदास चतुर्वेदी, अक्टूबर १६२६

कविवर बिहारी कौन थे, ले० अमृतलालशील, फरवरी १६२७

सतसई का दोप परिहार, ले० किशोरीदास वाजपेयी, मार्च १६२७

बिहारी सतसई मे फारसी और अरबी, ले० डा० अमरनाथ भा, मई १६४०

विहारी का वियोग शृगार, ले० प्रो० ससारचन्द्र, नवम्बर १६५५

सस्कृत साहित्य का कविवर विहारी पर प्रभाव, ले० श्यामनन्दन शास्त्री फरवरी १६५७

विहारी का काव्य और युग, ले० प्रो० आनन्द नारायण शर्मा, जनवरी १६६५

(प) सरस्वती सम्वाद

विहारी की काव्य प्रतिभा, ले० डा० सुधीन्द्र, जून १६५३

(फ) साहित्य

केशव और विहारी, ले० पाण्डेय वेचन शर्मा उग्र, कार्तिक और मार्गशीर्ष स० १६६७

विहारी की राष्ट्रीयता, ले० ठाकुर नन्दकिशोर सिंह, कार्तिक सम्वत् १६६५

(ब) साहित्य सन्देश

विहारी की वाग्विभूति और वहुज्ञता, ले० प्रो० अम्वाप्रसाद सुमन, मई १६५५

विहारी रत्नाकर मे शब्दार्थ सम्वन्धी भूले ले० श्री रसिकेचन्द्र, जनवरी, १६५७

विहारी सतसई की प्राचीन टीकाएँ, ले० श्री अम्वाप्रसाद श्रीवास्तव मई १६५७

देव और विहारी, ले० श्री मतिराम ले० डा० गोपीनाथ तिवारी, जून १६५६

कविवर विहारी की नवीन रचना, ले० डा० शिवगोपाल मिश्र सितम्वर, १६६२

(भ) सुधा

बिहारी-रत्नाकर, ले० जी० ए० ग्रियर्सन, सितम्वर १६२६

श्रृंगारी बिहारी, ले० आ० परशुराम चतुर्वेदी, अगस्त-सितम्बर १९२७
महाकवि बिहारी और देव, ले० प० लोकनाथ द्विवेदी शिलाकारी, दिसम्बर १९३३
बिहारीलाल के चार राजनीतिक दोहे, ले० प० लोकनाथ द्विवेदी शिलाकारी मई सन् १९३४

(म) हरिऔध

बिहारी सतसई का आजमशाही क्रम, अक्टूबर १९५८

(य) हिन्दी अनुशीलन

बिहारी सतसई मे समाज चित्रण, ले० डा० रामशंकर तिवारी, अप्रैल-जून १९५७

बिहारी के कवित्त सवैये,ले० अम्बाशकर नागर, जनवरी-जून १९६४

बिहारी का स्थिति काल-ले० हरिप्रसाद नायक जुलाई-सितम्बर १९६५

बिहारी सतसई मे काव्य रूढियाँ एव प्रयोग वैचित्र्य डा० योगेन्द्र सिंह जुलाई दिसम्बर १९६६

(र) हिन्दुस्तानी

बिहारी सतसई के टीकाकार कृष्णकवि, ले० सदाशिव लक्ष्मीधर कात्रे, एम० ए० जनवरी-मार्च १९४७

कविवर बिहारी दास की जीवनी पर पुनर्विचार, ले० हरिमोहन मालवीय भाग २७ अंक १-२

बिहारी-सतसई संबंधित कुछ अन्य प्रकाशित ग्रंथ

कांगडा पेन्टिंग्ज आफ दि बिहारी सतसई, ले० श्री एम० एस० रधावा

बिहारी सतसई एक वैज्ञानिक समीक्षा, ले० डा० गणपति चन्द्र गुप्त

बिहारी और उनकी सतसई, ले० डा० राजकिशोर सिंह

बिहारी-भाष्य, ले० डा० देशराजसिंह भाटी